'ज्ञानपीठ' लोकोदय ग्रंथमाला हिन्दी ग्रंथांक—१२

उत्तरप्रदेश राज्यद्वारा पुरस्कृत

श्री लक्ष्मीशंकर व्यास, एम० ए०, आनर्स

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन एम ए

प्रकाशक
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मंत्री भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड बनारस

प्रथम संस्करण
१९५४
मूल्य चार रुपया

मुद्रक
जे के शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद
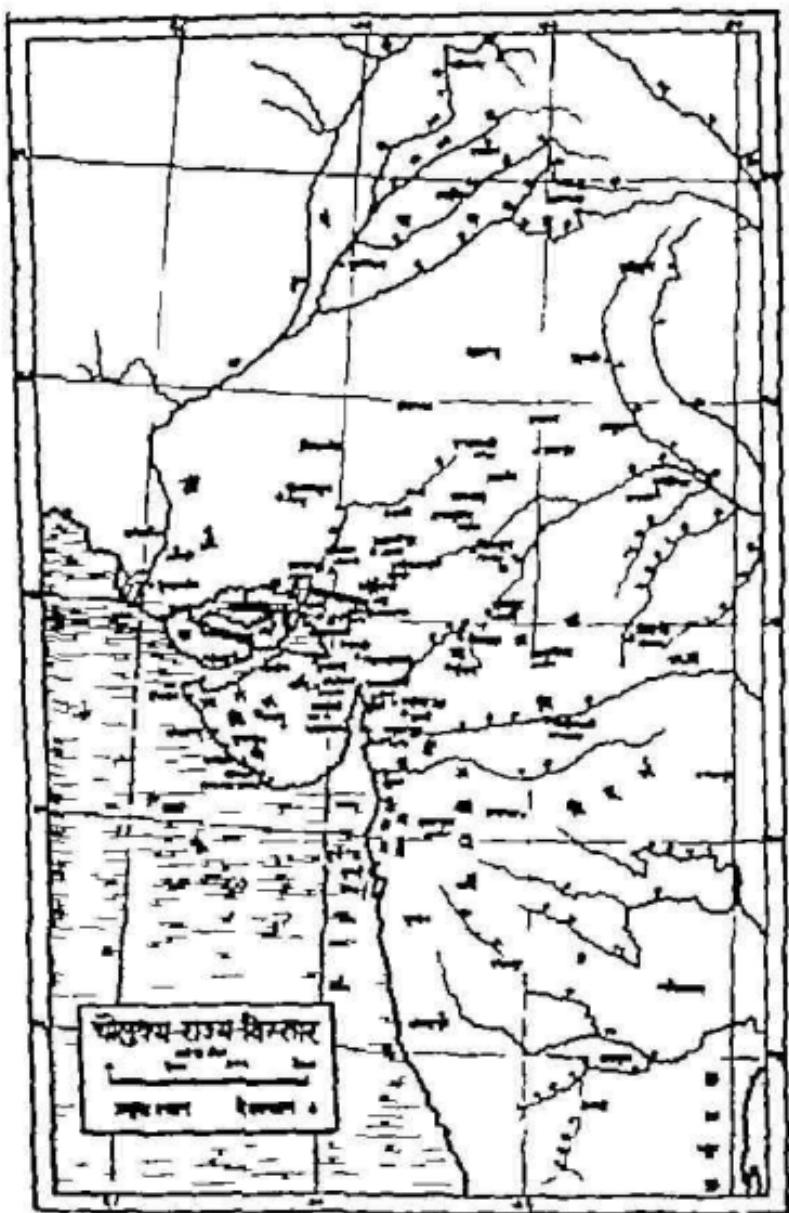
राज्य विस्तार

- जिनकी कभी सेवा-शुश्रूषा न कर सका—
- बचपनके नटखटपनके कारण जिन्हें सदा दुखी किया—
- जिनका चित्र हृदय पटलपर अंकित किया करता हूँ—
- जिनके प्यार-पुचकारके लिए जी मचल उठता है—
- जिनके अन्तिम दर्शन और आशीर्वादसे वंचित रहा—

उन्हीं पूजनीया स्वर्गीय माताजीके
श्रीचरणोंमें यह कृति
श्रद्धया समर्पित है

•

—लक्ष्मीशंकर व्यास

प्रास्ताविक

इतिहासके प्रतिभावान अध्येता, उदीयमान साहित्यिक और अनुभवी पत्रकार श्री लक्ष्मीशंकर व्यास एम० ए० (ऑनर्स)का प्रस्तुत ग्रन्थ 'चौलुक्य कुमारपाल' एक ख्याति-प्राप्त रचना है। क्योंकि उत्तर प्रदेशीय सरकारने इस रचनाको इतना महत्त्वपूर्ण माना है कि पाण्डुलिपिके आधार पर ही इसे पुरस्कृत किया है।

पुस्तककी मुख्य उपादेयता इस बातमें है कि यह भारतीय इतिहासके एक ऐसे महिमावान व्यक्तिके कार्यकलापका अध्ययन प्रस्तुत करती है जिसकी गणना हमारे देशके महानतम सम्राटों और राष्ट्र-निर्माताओंमें होती है। चौलुक्य कुमारपाल अपनी महानताओंके आधारपर चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक और हर्षवर्द्धनके समकक्ष हैं। चौलुक्य कुमारपाल सम्बन्धी इतिवृत्तको आकलित और व्यवस्थित करनेके लिए श्री लक्ष्मीशंकर व्यासने इतिहासके सभी प्रासंगिक मूल आधारों और उपादानोंका विधिवत् गहन अध्ययन किया है—संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंशके दर्जनों ग्रन्थ, बीसियों शिलापट्ट और उत्कीर्ण लेख, देशी-विदेशी विद्वानों द्वारा लिखित पचासों ग्रन्थ और अनेकों मन्दिरों तथा विहारोंके प्रामाणिक भग्नावशेष। जिन जिन विद्वानोंने इस ग्रन्थको देखा है वे भी व्यासके परिश्रम, प्रबुद्ध अवलोकन, निष्पक्ष आकलन और वैज्ञानिक पद्धतिसे प्रभावित हुए हैं। इसके अतिरिक्त विचारोंकी क्रम-बद्धता और शैलीकी सरसता पाठकको उस बोझसे बचाती है जो तथ्यकी पुस्तकोंमें आप-अनायास आ पैठती है।

मध्यकालीन भारतीय इतिहासके ग्रन्थोंमें प्रायः इस मान्यतापर बल दिया जाता रहा है कि हिन्दू साम्राज्यकी एक छत्र बड़ी इमारतका अन्तिम स्वामी सम्राट् हर्षवर्द्धन था जिसकी मृत्यु सन् ६४७ ई०में हुई। हर्षवर्द्धनके बाद भारतीय राष्ट्रका झंडा सामन्तीय बेरहमीसे जो गिरा तो गिरा ही रहा। उसके बाद दूसरे विदेशी दल और वंश आए-गये तथा हमारी धरा और ध्वजको रौंदते रहे—अरब, तुर्क, पठान, मुगल, अंग्रेज। लगभग ११ शताब्दियों बाद १५ अगस्त १९४७को ही हमारा राष्ट्रध्वज फिर एक बार स्वतन्त्रताके वातावरणमें लहरा पाया है।

पराधीनताकी इन ११ शताब्दियोंके लम्बे व्यवधानमें क्या सचमुच ही हमारा राष्ट्र पराश्रयी होकर अचेत पड़ा रहा? क्या यह कल्पना सच है? 'चौलुक्य कुमारपाल' पुस्तक शताब्दियोंकी लम्बी खाईको कुछ इस तरह भरती है कि हम इसके बादकी ६ शताब्दियोंके ध्वंसपर निर्मित नई खोज और नई प्रतीतिके ठोस धरातलपर पहुँच जाते हैं। यहाँ हमें १२वीं शताब्दीकी उस गरिमासे साक्षात्कार होता है जो हमारे राष्ट्रकी सतत प्रवाहमयी जीवनी शक्तिका ज्वलन्त प्रमाण है।

जब हम सोचते हैं कि चौलुक्य कुमारपालने देशके ह्रासोन्मुख वातावरणकी तमसावृत छायामें अपने ३ वर्षके शासनकालमें साम्राज्यका इतना विस्तार किया कि तुर्किस्तानसे मालवदेश तक तथा काठियावाड़से कन्नौज तकके प्रदेश उसके आधीन हो गये तो हम उसकी शासन-योग्यता और अद्भुत पराक्रमसे प्रभावित होते हैं। कुमारपालकी साम्राज्य-परिधिमें कोंकण कर्नाटक लाट, गुर्जर, सौराष्ट्र कच्छ सिन्धु, उच्चा भम्भेरी मारवाड़ मालवा मेवाड़ कीर, जांगल सपादलक्ष दिल्ली जालन्धर महाराष्ट्र इत्यादि १८ प्रदेश सम्मिलित थे। और जब हमें इस बातका बोध होता है कि कुमारपालका ३ वर्षका शासनकाल उस समय प्रारम्भ हुआ, जब वह ५ वर्षका हो चुका था तो हमें उसकी अप्रतिम क्षमतापर आश्चर्य-चकित हो जाना पड़ता है। वास्तविक विस्मयकी बात तो इस महाप्राण मानवका सारे-का-सारा जीवन ही है जो दुर्धर्ष संघर्ष अप्रतिहत प्रेरणा और अजय आस्थासे ओतप्रोत है। अग्नि और प्रभंजनका यह दीप्तिपुंज कहाँसे उठा कहाँ-कहाँ पहुँचा और कहाँ-कहाँ मँडराया! किस प्रकार इसकी प्रतिभाके निर्माणकारी विस्फोटने विध्वंसनाको आगत अनागतकी सुदूरवर्ती सीमाओं तक आलोकित कर दिया है! उड़ती हुई विहगम दृष्टि डालकर देखें।

कुमारपाल राजकीय कुलमें जन्मा तो किन्तु इस अभिशापके साथ कि उसके प्रपितामह भीमदेवने जिस बकुलादेवीको वरण करके कुमारपालके वंशकी परम्परा डाली थी वह बकुलादेवी एक नर्तकी थी। कुमारपालके ताऊ सिद्धराज जयसिंहके सन्तान न थी। अतः स्पष्ट था कि जयसिंहके उपरान्त राज्य कुमारपालको मिलेगा। जयसिंहको यह अनुकूल नहीं जँचा कि उसका राज्य ऐसे नर्तकीके हाथमें जाये जिसकी शिराओंमें नर्तकी

था रहता है। लिखित परम्परा साक्षी है कि जयसिंह यहाँतक चाहता कि कुमारपालकी जीवन-बत्ति सदाके लिए निर्मूल कर दी जाये। कुमारपाल अपने भविष्यके प्रति सतर्क हो गया और अपने बहनोई कृष्णदेवकी सहायता से वह अनहिलवाड़ा छोड़कर भाग खड़ा हुआ। जयसिंहकी इसी दुरभिसन्धिकी भूमिकामेंसे कालान्तरमें कुमारपालकी अभिवृद्धिकी कथा फूटी। पलायनके इसी क्षण कुमारपालने जगत् और जीवनकी खुली पोथीसे ज्ञानसंचय प्रारम्भ कर दिया। बड़ौदा भड़ौंच कम्बापुर, कल्याण दक्षिणस्थ प्रतिष्ठान मालवा आदि नाना देशों और नाना ग्राम घूम फिरकर कुमारपालने अनेक ज्ञानियों साधुओं राजाओं, मन्त्रियों और सैनिक वर्गसे सम्पर्क स्थापित कर लिया। कष्ट भी उनका अन्त क्योंकि सिद्धराज जयसिंहके गुप्तचर बराबर पीछा कर रहे थे। कुमारपालने प्रवासमें रहते हुए अपनी जन्मभूमिसे भी बराबर सम्पर्क बनाये रखनेका प्रयत्न किया। यहाँतक कि एक बार जब वह स्वयं साधुवेशमें अनहिलपुर पहुँचा तो जयसिंहको गुप्तचरों-द्वारा सूचना मिल गई। उस दिन जयसिंहके पिता कर्णदेवका श्राद्ध-दिवस था। जयसिंहकी आज्ञा हुई कि नगर-देहातके समस्त साधुओंको तत्काल निमन्त्रित किया जाय कोई छूटने न पाये। कुमारपालको भी साधुओंकी पंक्तिमें आ खड़ा होना पड़ा। जयसिंह बारी-बारीसे सबके चरण धोता और हाथपर दक्षिणा रखता। जब कुमारपालके पास पहुँचा तो चरणोंकी कोमलता और चरणकी रेखाओंने कुमारपालका आभिजात्य व्यक्त कर दिया। संकेत हो गया कि अनुष्ठानकी समाप्तिपर इस साधुको 'अतिथि' बना लिया जाये। कुमारपाल भी सजग थे। अब सोचिये उस साहसको और प्रत्युत्पन्न बुद्धिको जिसके द्वारा कुमारपाल उस भयानक संकटसे बच भागे होंगे।

कुमारपालके जीवनमें ऐसी अनेक घटनाएँ हैं जहाँ साथियोंकी संकटमय स्थिति प्राप्त होनेपर उसने अपने अपराजित शौर्य तथा युक्तिमत्तासे ऐसी स्थितियोंका निराकरण किया है। इस प्रकारकी संकटमय स्थिति एक बार उस समय आई जब कुमारपालने शासनका श्रीगणेश ही किया था। राज्य प्राप्त होते ही कुमारपालने सारी सत्ताको अपने व्यक्तित्वसे इतना प्रभावित कर दिया कि सामन्तोंकी स्वेच्छा-चारिताको प्रतिबन्धोंसे सीमित होना पड़ा। योजना बनी कि जिस समय राजाकी सवारी निर्दिष्ट द्वारपर

मार्गमें नियुक्त हत्यारे उसपर टूट पड़ें। पर हत्यारोंको यह अवसर न मिल पाया क्योंकि मालूम नहीं किस प्रेरणा या किस चर-व्यवस्थासे प्रभावित होकर कुमारपालने हाथीका मुँह दूसरे द्वारकी ओर उन्मुख कर दिया था। कुमारपालका प्रतापोद्दत व्यक्तित्व अनेक समकालीन राजाओंके लिए भी ईर्ष्याका कारण बन गया था और भारी हो गया था। एक ओर सपादलक्षके चौहान राजा अर्णोराजने वर्तमान मारवाड़की ओरसे चढ़ाई की तो दूसरी ओरसे उज्जैनके राजा बल्लालने और तीसरी ओरसे चन्द्रावतीके अधिपति विक्रमसिंहने आक्रमण कर दिया। इस षड्यंत्रमें कुमारपालका प्रधान सैनिक बाहड़ भी सम्मिलित हो गया जिसकी धूर्तताका एक विशिष्ट अंग यह था कि उसकी दहाड़से हाथी विचलित हो जाते थे। यहाँ तक कि कुमारपालका निजी हाथी कलहपंचानन भी उस दहाड़से विकल हो उठता था। बाहड़ने कुमारपालके महावत कलिंगको भी लोभ देकर फोड़ लिया। योजना निश्चित हुई कि युद्धक्षेत्रमें बाहड़की दहाड़ सुनकर जब कुमारपाल-का हाथी कलहपंचानन रोषसे आगे बढ़ेगा तो महावत कलिंग ऐसी स्थितिमें हाथीको ले जायेगा कि बाहड़ अपने हाथीपरसे कूदकर कुमारपालके हाथीपर चढ़ जाये और कुमारपालका वध आसानीसे संभव हो जाये। पर, यह सब संभव न हो पाया क्योंकि जब युद्धक्षेत्रमें बाहड़का हाथी कुमारपालके हाथीके मुकाबलेमें आया और बाहड़ने ज्योंही छलांग मारकर कुमारपालके हाथीपर आना चाहा तो पाया कि कुमारपालका हाथी पीछे हटा लिया गया था क्योंकि कलिंगका स्थान किसी दूसरे महावतने ले लिया था और बाहड़की दहाड़को लक्ष्य करके प्रतिरक्षा रूपमें हाथीके कानोंपर पट्टी बँधी हुई थी। बाहड़ तो हाथियोंके बीच आकर कुचला गया और कुमारपालकी विजय हुई।

वीरत्व तो मानो कुमारपालकी धमनियोंमें प्रवाहित था। जयसिंह की मृत्युके बाद जब राजसिंहासनके दो प्रतिद्वन्द्वियोंमेंसे एकका चुनाव होना था तो परिषद्के संचालक-द्वारा यह प्रश्न पूछे जानेपर कि राज्यकी रक्षा किस नीति-द्वारा होगी जहाँ कुमारपालके प्रतिद्वन्द्वीने विनीत भावसे यह कहा था कि 'जिस प्रकार आप नीति-निपुण महानुभाव मार्ग-दर्शन करेंगे' वहाँ तेजस्वी कुमारपालने स्फूर्तिसे खड़े होकर, छाती तानकर, उक्त प्रश्नके उत्तरमें अपनी तलवार ऊँचे उठा दी थी और कहा था 'राज्य-की रक्षा मेरी भुजाओंके बलपर आश्रित यह तलवार करेगी।' इसी

वीरत्वका दूसरा पहलू था आत्मसम्मान जो कभी-कभी अत्यन्त कठोर रूपमें व्यक्त होता था। कुमारपालका वीरत्व राज्यके प्रति अपमान जानेको तो क्या व्यंग्य को भी नहीं सहन कर पाता था। कुमारपालके बहनोई जिस कृष्णदेवने उसकी पग-पगपर सहायता की थी यहाँ तक कि उसे राजगद्दी दिलवाई थी उस कृष्णदेवका कुमारपालने इसलिए प्राण दण्ड दे दिया कि वह कुमारपालको बार-बार व्यंग्य वाणोंसे आहत करता था और उसकी पूर्वावस्थाकी खिल्ली उड़ाया करता था। 'दीपकको मैंने जलाया है इसलिए क्या उसमें मुझे अपनी उँगली दे देनेकी धृष्टता करनी चाहिए?' यह तथ्य कृष्णदेवने न समझा इसीलिए दीपककी ज्वालाने उसे भस्म कर दिया। एक और घटना लीजिए। कुमारपाल-द्वारा बार-बार वर्जन करनेपर भी कोंकणका राजा मल्लिकार्जुन अपने लिए 'राज्यपितामह'की उपाधि प्रयुक्त करता रहा। अन्तमें एक दिन यह होकर ही रहा कि कुमारपालके सेनापति अम्बडने मल्लिकार्जुनका छिन्न सिरको स्वर्णपत्रमें लपेटकर भेंटकी भाँति कुमारपालकी सेवामें उस समय प्रस्तुत किया जब ७२ राजा राजसभामें उपस्थित थे। कुमारपालकी दृष्टि इतनी तल-स्पर्शी थी और न्यायबुद्धि इतनी कठोर कि शासनके अंग-उपांगोंको सदा ही स्वस्थ और तत्पर रहना पड़ता था। कोई भी कहीं चूका और कुमारपालकी कठोर दृष्टि उसपर पड़ी। 'राजघरट्ट' चाहड इसका उदाहरण है। जिस बाहडका ऊपर उल्लेख हो चुका है उसका छोटा भाई चाहड सदा ही कुमारपालका आज्ञानुवर्ती रहा। चाहडके सेनापतित्वमें सांभरपर इसलिए चढ़ाई की गई कि सांभर राज्यकी सेनाएँ कुमारपालके प्रतिपक्षियोंकी सहायता करती थीं। चाहडने सांभरको जीत तो लिया किन्तु अपरिमित व्ययके उपरान्त। कुमारपालका आदेश हुआ कि चाहडको 'राजघरट्ट'की उपाधि दी जाय! दण्डविधानके इतिहासमें कुमारपालकी यह सूझ भी अविस्मरणीय होनी चाहिए।

महान् व्यक्तियोंका चरित्र एकांगी नहीं होता। कुमारपाल कूट नीतिके क्षेत्रमें जितना कठोर था जीवनके धरातलपर वह उतना ही सहृदय और कोमल भी! कुमारपालके वैविध्यपूर्ण चरित्रका अनुमान इस बातसे लग जायगा कि जिस 'पितामह'की उपाधि प्रयोगकी उद्दण्डताके फल-स्वरूप

मल्लिकार्जुनको प्रयाससे हाथ धोना पड़ा वही 'पितामह'-उपाधि कुमारपालने उस वणिक सुभट धम्बड़को प्रदान कर दी जिसकी समरशाली तल-वारने मल्लिकार्जुनके सिरको कमल-पुष्पकी भाँति काट दिया था। शासन संचालनकी सुव्यवस्था और राजकीय संगठनकी दृढ़ताके लिए कुमारपालने जो व्यवस्था की थी वह इतनी पूर्ण व्यापक तथा निर्दोष है कि उसमें आजकी गणतंत्रात्मक आधुनिकताका आभास मिलता है। पुस्तकमें यथास्थान इसका विस्तृत विवरण मिलेगा।

कुमारपालके जीवनमें यदि हमने संघर्ष पराक्रम कूटनीति शासकीय योग्यता और विजय ही देखी तो मानना चाहिए कि हमने उसकी महानता और सफलताका अधिकांश उपेक्षित कर दिया। कुमारपालकी महानता इस बातमें है कि उसने राजनीतिकी कठोर वस्तुस्थिति और यथार्थके आधारपर संचालित करते हुए भी प्रजाके व्यावहारिक जीवनको सामूहिक अहिंसा जीवदया करुणा और चरित्र-गत निर्मलताके आधारपर स्थापित किया। स्वयं जैन-धर्मावलम्बी होते हुए भी अपने राज्यमें इतनी उदार सहिष्णुता बरती कि प्रजाका मन मोह लिया। यही कारण है कि उसके नामके साथ जहाँ एक ओर जैन-धर्म-सूचक 'परम-भट्टारक' और 'आर्हत' उपाधियोंका प्रयोग हुआ है वहाँ दूसरी ओर अनेक शिला-लेखोंमें उसे 'उमापति-वरलब्ध'की उपाधिसे भी स्मरण किया गया है। वास्तवमें गुजरातकी सांस्कृतिक परम्परामें यह बात सहज-सिद्ध हो गई थी कि वहाँ जैन-धर्म और शैव-धर्म साथ-साथ रहते थे और फलते-फूलते थे। यों तो शिव और शैव-धर्म अपने प्राचीन-तम मूल रूपमें 'जिन' और 'जिन धर्म'के ही परिवर्तित रूप हैं किन्तु कालान्तरके अति परिवर्तित रूपमें भी और दक्षिण-भारतके रक्त-रंजित धार्मिक संघर्षोंके दिनोंमें भी गुजरातने दोनों धर्मोंकी पारस्परिक सहिष्णुताको प्राय अक्षुण्ण रखा है।

हमारे कालके युगमें महात्मा गांधी-जैसी सर्व-धर्म सहिष्णु, अहिंसो-पासक विभूतिका गुजरातमें ही प्रादुर्भाव होना कोई आकस्मिक घटना नहीं। ऐसे प्रयोग मानवतावादी राजनीति-नियंता व्यक्तिको जन्म देनेकी क्षमता गुजरातकी ही संस्कृति-पूत गौरवमयी धरामें विशेष रूपसे थी। प्रागैतिहासिक कालके कर्मयोगी कृष्ण और तीर्थंकर नेमिनाथ १२वीं शताब्दीके राजर्षि कुमारपाल और २ वीं शताब्दीके महात्मा गांधी

एक ही विशिष्ट सांस्कृतिक परम्पराके अविच्छिन्न अंग हैं।

यद्यपि यह ग्रन्थ कुमारपालकी ऐतिहासिक महत्ता और उसके जीवनकी गौरव-गरिमाका बखान करता है किन्तु वास्तव बात यह है कि कुमारपाल स्वयं एक महत्तर ज्योतिपुंजकी छाया मात्र है। वह तो एक कण है जो किसी प्रचण्ड प्रतिभाके लीला-विलाससे धरापर छिटक पड़ा है। उस ज्योतिपुंज और मूर्त प्रतिभाका नाम है—आचार्य हेमचन्द्र जिन्हें 'कलिकाल सर्वज्ञ' कहा गया है। इनके सम्बन्धमें कहा गया है —

"क्लृप्तं व्याकरणं नवं विरचितं छन्दो नवं द्व्याश्रया-
लङ्कारौ प्रथितौ नवौ प्रकटितं श्रीयोगशास्त्रं नवम्।
तर्कः संजनितो नवो जिनवरादीनां चरित्रं नवं
बद्धं येन न केन केन विधिना मोहः कृतो दूरतः॥"

आचार्य हेमचन्द्रकी जिस विलक्षण प्रतिभा द्वारा प्रसूत नये-नये ग्रन्थरत्नोंका संकेत ऊपरके श्लोकमें दिया गया है उसकी संक्षिप्त सूची इस प्रकार है —

व्याकरणग्रन्थ —सिद्ध हैम व्याकरण सिद्ध हैम लिंगानुशासन धातुपारायण।
शब्दकोश—अभिधानचिन्तामणि अनेकार्थसंग्रह निघंटुकोष देशी नाममाला
अलंकारग्रन्थ—काव्यानुशासन छन्दग्रन्थ—छन्दोनुशासन
काव्यग्रन्थ—संस्कृत प्राकृत द्व्याश्रयकाव्य
जीवनचरित्र—त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र
दर्शन-योग ग्रन्थ—प्रमाणमीमांसा योगशास्त्र

इतना ही नहीं। आचार्य हेमचन्द्रकी गणना भारतके महानतम ज्योतिर्विदोंमें होती है। राजनीति और कूटनीतिके तत्त्वोंका ज्ञान भी उनका इतना विशाल और उन तत्त्वोंके सफल प्रयोगकी जन्मजात प्रतिभा भी इतनी अद्भुत थी कि देखकर चकित हो जाना पड़ता है। उनका जीवन सर्वथा अकिंचन निःस्व तपपूत और कल्याण-विधायक था ही। मनमें एक कल्पना उठती है। आचार्य चाणक्यकी प्रतिभाको धर्मकी प्रेरणासे परिचालित करके अपार ज्ञान और दर्शनकी बहुमुखी उपलब्धियोंसे पूरित करके एवं अद्भुत अध्यात्मके आलोकसे परिवेष्टित करके जिस अप्रतिम पुरुषकी कल्पना हम करेंगे वह सम्भवतया आचार्य हेमचन्द्रके व्यक्तित्वकी झलक दिखा सके। इन्हीं आचार्य हेमचन्द्रका वरदहस्त

कुमारपालके जीवनपर प्रभाव पड़ा है। इन्हींके उपदेशोंसे प्रभावित होकर कुमारपालने अपने राज्यमें हिंसाका निषेध किया, द्यूत, मांसाहार, मृगया आदि व्यसनोंसे पराङ्मुख होनेकी प्रेरणा प्रजाको दी। निःसन्तान पुरुषकी मृत्युके बाद उसका धन-धाम राजकोषमें चले जानेकी परम्परागत नीतिके कारण विधवाओंकी जो दुर्दशा होती थी उससे द्रवित होकर कुमारपालने उस प्रथाको बन्द करवाया। कुमारपालने प्रजाकी शिक्षा दीक्षाका समुचित प्रबन्ध किया, औषधालयों देवालयों पाठशालाओं और कूप-तड़ागोंका निर्माण करवाकर जनताको अनेक प्रकारकी सुख-सुविधाएँ प्रदान कीं। कुमारपालके शासनमें न कभी दुर्भिक्ष पड़ा न कोई महामारी संघातक रूपसे फैली। अभिनव साहित्य-सृजन कलात्मक निर्माण सांस्कृतिक अभ्युत्थान आर्थिक संवर्धन धार्मिक सहिष्णुता प्रजारंजन आदि सभी दिशाओंमें कुमारपालके शासनकी सफलता परिलक्षित होती है।

विद्वान् लेखकने समस्त इतिवृत्तको अधिक-से-अधिक प्रामाणिक बनानेका प्रयास किया है। यदि परम्परागत प्रन्थ-सन्दर्भों एवं प्रचलित जन-श्रुतियोंके आधारपर कहीं किसी ऐसी प्रतीतिका समावेश हो गया हो जो इतिहासके शुष्क तथ्यनको बाधक बनाता हो तो लेखक और ग्रन्थमाला-सम्पादक आलोचकोंकी सहानुभूति चाहेंगे। इतिहासकी नई लीक डालनेवालोंके लिए जो व्यक्ति अभिकोंके प्रतिम दलकी भाँति रास्ता साफ करनेका काम करे, उनपर उतना ही तो उत्तरदायित्व डाला जा सकता है जितनी उनकी क्षमता हो।

इतनेपर भी हम आश्वस्त हैं कि भारतीय ज्ञानपीठका यह प्रकाशन इतिहासवेत्ताओं और साधारण पाठकोंकी दृष्टिमें उसी प्रकार समादृत होगा, जिस प्रकार उत्तरप्रदेशीय सरकारकी दृष्टिमें हुआ है।

लखनऊ
शरद् पूर्णिमा
१९६४

लक्ष्मीचन्द्र जैन
सम्पादक
लोकोदय ग्रन्थ माला

विषय-क्रम

तृतीय अध्याय

चौथा अध्याय

पाँचवाँ अध्याय

छठां अध्याय

तृतीय अध्याय

चौथा अध्याय

पाँचवाँ अध्याय

छठाँ अध्याय

तृतीय अध्याय

चौथा अध्याय

पाँचवाँ अध्याय

छठा अध्याय

ग्रंथमें व्यवहृत संक्षिप्त नाम

ए के के॰ एंटीक्यूटीज आव कच्छ एंड काठियावाड़।
ए ए के आइन-ए-अकबरी।
ए एस आई डब्लू सी आर्कआलजिकल सर्वे इंडिया वेस्टर्न सर्कल।
बी॰ एच जी बेली हिस्ट्री आव गुजरात।
बी जी बम्बई गजेटियर।
बी पी एस आई प्राकृत एंड संस्कृत इन्सक्रिपशन्स।
डी एच एन आई डाइनेस्टिक हिस्ट्री आव नादर्न इंडिया।
आर॰ ए आर बी पी रिवाइज्ड एंटीक्वेरियन रिमैन्स बाम्बे प्रसि।
एच एम एच आई हिस्ट्री आव मेडिवियल हिन्दू इण्डिया।

आमुख

भारतीय इतिहासके समुचित निर्माणके लिये दो बातें बहुत ही आवश्यक हैं—(१) विभिन्न प्रदेशों और स्थानोंके इतिहासमें विस्तृत और प्रामाणिक अनुसंधान और खोज तथा (२) भारतीय इतिहासके प्रमुख महापुरुषों और व्यक्तियोंके चरित तथा इतिहासका विशद वर्णन और विवेचन। इन दोनों क्षेत्रोंमें जितना ही अधिक कार्य होगा उसका इतिहास उतना ही पूर्ण और विश्वसनीय लिखा जा सकेगा। चौलुक्य कुमारपाल का इतिहास इस दिशामें एक महत्त्वपूर्ण प्रयत्न है। विशेषकर हिन्दी भाषामें इस प्रकारके ग्रन्थोंकी अभी तक कमी है और प्रस्तुत ग्रंथ इस अभाव की पूर्ति करता है।

इतिहास-लेखनमें दृष्टि और पद्धतिका प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण है। इतिहासके उद्देश्य क्षेत्र सीमा और परिधिमें इधर बहुतसे परिवर्तन हुए हैं। जागरूक लेखक ही सफल इतिहासकार हो सकता है। प्रस्तुत लेखक की चेतना इस दिशामें जागृत है। उन्होंने इतिहासके मूल उद्देश्य—मानवका सच्चा चित्रण आकलन तथा मूल्यांकन—को सामने रखकर तथ्योंका संकलन चयन और परीक्षण करते हुए कलात्मक ढंगसे अपने विषयका प्रतिपादन किया है। इतिहासका कलापक्ष ही उसे मानवके लिए अधिक आकर्षक और उपयोगी बनाता है। कला-पक्षके निर्वाहके साथ इस ग्रन्थमें वैज्ञानिक पद्धतिका अवलम्बन किया गया है। सभी उपलब्ध सामग्रियोंका संकलन चयन और परीक्षण निष्पक्ष भावसे हुआ है। वास्तवमें इतिहासकी यही प्रामाणिकता है जिसके ऊपर उसकी विशाल कलात्मक अट्टालिकाका निर्माण संभव है। लेखकने अपने इस दायित्वको भी सफलताके साथ निभाया है।

चौलुक्य कुमारपाल भारतके मध्यकालीन शासकोंमें प्रमुख थे।

उत्तराधिकारियोंने गोरीके पुत्रपरपर आक्रमणका सफलतापूर्वक प्रतिरोध कर उसे पराजित किया। इस काममें केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारोंका सुव्यवस्थित संगठन था तथा प्रशासनके विविध अंगोंकी समुचित व्यवस्था विद्यमान थी।

धर्म और संस्कृतिके अभ्युत्थानकी दृष्टिसे भी इस समयका कुछ कम महत्त्व नहीं। जैन धर्मका अभिनव प्रवर्तन और प्रचार इस युगकी विशेष घटना है। जैनधर्मका यह उत्कर्ष किसी कटु भावनाके साथ नहीं अपितु अद्भुत एवं असाधारण धार्मिक सहिष्णुता और सद्भावना-सहित हुआ। गुजरातमें इस समय जैनधर्मके साथ शैव तथा अन्य सम्प्रदायोंकी भी उन्नति होती रही। जैनधर्म भारतीय संस्कृतिका अभिन्न अंग हो गया। इसने देशके कोटि-कोटि जनोंके संस्कारों-विचारोंको शताब्दियों पर्यन्त प्रभावित किया। छः सौ वर्षोंके पश्चात् पश्चिमी भारतके इसी भूखण्डमें महात्मा गान्धी जैसी युगावतार आत्म-विभूतिका प्रादुर्भाव हुआ जिसने देशमें अपने अहिंसा सिद्धान्तसे अभिनव क्रान्तिकी और राष्ट्रका कायापलट कर दिया। देखा जाय तो राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिमें अहिंसा-सिद्धान्तके इस नूतन प्रयोग एवं विकास-परम्पराका बहुत कुछ श्रेय बारहवी शताब्दीमें हुए इस धार्मिक-सांस्कृतिक अभ्युत्थानको ही है।

सामाजिक नवजागरणमें चौलुक्य कुमारपालका शासनकाल एक नवीन सन्देशका वाहक रहा है। इस समय समाजमें प्रचलित हिंसा मद्यपान मांसाहार, द्यूत आदि व्यसनोंपर कठोर नियम बनाकर निवारण एवं प्रतिबन्ध लगाये गये जो आधुनिक जनसत्तात्मक सरकारों जैसे प्रगतिशील विधानासे अद्भुत साम्य रखते हैं। कुमारपालने मृतधनापहरण नियमका निषेध किया जिसके द्वारा निःसन्तान मरनेवालोंकी सम्पत्तिपर राज्यका अधिकार हो जाता था। आर्थिक दृष्टिसे यह काल वैभव सम्पन्नता और समृद्धताका युग था। गुजरात काठियावाड और कच्छके बन्दरगाहोंमें आयात-निर्यात व्यापारके निमित्त देश-विदेशके व्यापारिक पोत माल

थे। चौलुक्य साम्राज्यकी राजधानी इस समय संसारके व्यापारका केन्द्र बनी हुई थी। देशमें शान्ति और सम्पन्नताके फलस्वरूप इस समय भव्य मन्दिरों तथा विशाल जैन विहारोंके प्रचुर संख्यामें निर्माण हुए, जिनके अवशेष आज भी स्थापत्य और शिल्पकलाके उत्कृष्ट निदर्शन हैं। आबूके संसार-प्रसिद्ध जैन मन्दिर इसी युगकी निर्माणकलाके नमूने हैं। विमलशाह (सन् १०३२ ई०) और तेजपाल (सन् १२३१ ई) द्वारा निर्मित आबू पहाड़पर श्वेत संगमरमरके मन्दिर चौलुक्यकालीन शिल्प-सौन्दर्य और स्थापत्य-कलाके चरम विकासके सजीव उदाहरण हैं। आबू पर्वतपर इन मन्दिरोंके निर्माणके लिए शिलाखण्डों तथा अन्यान्य साधनोंका एकत्रीकरण और निर्माण इस युगकी असाधारण निर्माण-क्षमता तथा शिल्प-कौशलके परिचायक हैं।

कुमारपालने सैकड़ों मन्दिरों तथा विशाल विहारोंका निर्माण कराया जिनमेंसे अनेक आज भी विद्यमान हैं। इतिहास-प्रसिद्ध सोमनाथ मन्दिर का पुनर्निर्माण कुमारपालके शासनकालकी चिरस्मरणीय घटना है। इसके भग्नावशेष आज भी उस कालकी कलाका स्मरण दिलाते हैं जो राष्ट्रके गर्व और गौरवकी वस्तु हैं। चौलुक्यकालीन गुजरात तथा पश्चिमोत्तर भारतकी विभिन्न कलाकृतियाँ बहुत दिनों तक उपेक्षा और उदासीनताके फलस्वरूप अनादृत पड़ी हुई थीं। हर्षका विषय है कि अब इनकी सुरक्षा और अध्ययनका महत्त्व समझा जाने लगा है। जैन भण्डारोंमें पड़ी अमूल्य तथा दुर्लभ सामग्री अब प्रकाशमें आने लगी है। इस युगकी कला कृतियाँ केवल गुजरातमें ही नहीं अपितु राजस्थान मण्डलमें भी विस्तृत एवं विकीर्ण हैं। गुजरात मालवा मेवाड़ एवं खानदेश आदिके व्यापक क्षेत्रमें इस युगकी कला रचनाएं पायी जाती हैं। सिद्धपुर स्थित रुद्र महालयके ध्वंसावशेषमें विद्यमान मूल्य कटी हुई मूर्तियोंके समान ही आकृतियाँ आबूके निकट देलवाड़ाके स्तम्भोंपर भी निर्मित हैं। तारंगा पहाड़ीपर कुमारपाल द्वारा बनवाये विशाल अजितनाथ मन्दिरका पृष्ठ-

भागमें बनी समवसरणकी जालियां शिल्पकला और कौशलकी उत्कृष्टतम निदर्शन हैं। इसी प्रकारकी संगमरमरकी जालियां अनेक शताब्दियोंके पश्चात् मुसलमानोंके कालमें बनी मसजिदोंमें भी पायी जाती हैं। इससे चौलुक्यकालीन शिल्पकलाकी श्रेष्ठताका सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

साहित्यके क्षेत्रमें महान् आचार्य हेमचन्द्र सोमप्रभाचार्य यशपाल जयसिंह सूरि आदिकी सतत साधनाने एक नवीन साहित्यिक चेतना और जागृतिके अध्यायका समारम्भ किया। आचार्य हेमचन्द्रके नेतृत्व एवं निर्देशनमें इस समय साहित्य-निर्माणके महान् यज्ञका अनुष्ठान हुआ। इस समय लिखे प्रभूत ग्रंथोंकी ताड़पत्रीय प्रति तथा पाण्डुलिपियां पाटन तथा अन्य जैन भण्डारोंमें भरी पड़ी हैं। अब इनकी सहेज-संभाल हो रही है और अनेक ग्रंथोंका प्रकाशन भी हो रहा है। संस्कृत और प्राकृत भाषामें प्रभूत साहित्य निर्माणके साथ इसी समय नागरीका जन्म एवं विकास भी हुआ। इस समय व्याकरण नाटक काव्य दर्शन वेदान्त इतिहास आदि के ग्रन्थोंके प्रणयन हुए। इनमें आचार्य हेमचन्द्रके व्याकरणका अत्यधिक महत्त्व है।

जैन भण्डारोंसे प्राप्त ताड़पत्रीय प्रतियों तथा पाण्डुलिपियोंसे इस कालमें हुई महत्त्वपूर्ण साहित्य रचना तथा चित्रकलाके विकासका भली प्रकार परिचय प्राप्त होता है। इन्हीं ताड़पत्रीय प्रतियामें चौलुक्य कुमार पाल तथा आचार्य हेमचन्द्रके चित्र प्राप्त हुए हैं। पाटनके संघवीना भण्डारसे प्राप्त महावीरचरित्रकी ताड़पत्रीय प्रति (वि सं० १२९४)में चौलुक्य कुमारपाल तथा जैन महापण्डित आचार्य हेमचन्द्रके लघु प्रतिकृति चित्र मिले हैं। इसी प्रकार शान्तिनाथ भण्डारसे प्राप्त दशवैकालिका लघुवृत्तिकी सन् ११६३ ई०की ताड़पत्रीय प्रतिमें चौलुक्य कुमारपाल तथा हेमचन्द्राचार्यके लघुचित्र अंकित हैं। महावीरचरित्रकी प्रतिमें हेमचन्द्राचार्य अपने शिष्योंके मध्य सिंहासनासीन हैं। उनके पीछे एक

शिष्य हाथमें वस्त्र लिये हुए आचार्यकी अभ्यर्थनामें खड़ा है। आचार्यके सम्मुख एक शिष्य पुस्तक लेकर शिक्षा ग्रहण कर रहा है। चौलुक्य कुमारपालका चित्र भी इसी ताड़पत्रीय प्रतिमें अंकित है। इसमें कुमार पाल हेमचन्द्राचार्यके सम्मुख अभ्यर्थनाकी मुद्रामें बैठे हैं। वह आचार्य हेमचन्द्रसे उपदेश ग्रहण कर रहे हैं। वस्त्रयुक्त उनके दोनों हाथ उठे हुए हैं। दाहिना पैर भूमिपर स्थित है बायाँ भूमिसे कुछ उठा हुआ है। वह नीचे वर्णका धारीदार वस्त्र धारण किये हुए हैं। इसी युगकी चित्रकलाकी परम्परामें कल्पसूत्र भी आते हैं। इनकी कलात्मकता और श्रेष्ठता सर्वविदित है। वस्तुतः साहित्य और विभिन्न कलाओंका इस युगमें सर्वतो-मुखी अभ्युदय एवं उत्कर्ष हुआ।

इन विवरणों तथा तथ्योंसे स्पष्ट है कि बारहवीं शताब्दीके भारतीय इतिहासमें गुजरातके चौलुक्य महान् शक्तिशाली और प्रभुसत्ता सम्पन्न शासक थे। इनमें सिद्धराज जयसिंह और कुमारपालके शासनकाल सर्वाधिक महत्त्वके हैं। कुमारपालने तो अपनी राज्यसीमा पूर्वमें गंगा तक विस्तृत-विस्तीर्ण कर ली थी। ऐसे शक्तिशाली साम्राज्यके निर्माता और ऐतिहासिक महापुरुषका शिलालेखों तथा नवीन ऐतिहासिक अनु सन्धानोंके आधारपर, वैज्ञानिक पद्धतिके अनुसार विस्तृत एवं व्यवस्थित इतिहास-लेखन युगकी मांग है। भारतीय इतिहासके उज्ज्वल नक्षत्रों और महान् राष्ट्र-निर्माताओंका स्वरूप अब भी अज्ञात तथा रहस्यमय बना रहे यह उचित नहीं। राष्ट्रीय पुनर्जागरणके इस युगमें आवश्यक है कि भारतके गौरवशाली अतीतके राष्ट्रनिर्माताओंके इतिहास अनुशीलन और शोधके अनन्तर वैज्ञानिक पद्धतिपर लिखे जायें। प्रस्तुत ग्रन्थका प्रणयन इसी दिशामें एक प्रयत्न है। इसके प्रणयनमें मेरुतुंग हेमचन्द्र सोमप्रभाचार्य यशपाल तथा जयसिंहके संस्कृत प्राकृत भाषामें रचित ग्रंथोंके अतिरिक्त कुमारपालसे सम्बन्धित उन बाईस शिलालेखोंकी भी सहायता ली गयी है जिससे इस इतिहासपर सर्वथा नवीन प्रकाश पड़ता

है। इसके साथ ही तत्कालीन स्मारकों मन्दिरों और विहारोंके अवशेष भी मिले है, जिनसे कुमारपाल और उसके युगके इतिहास-अंकनमें बड़ी सहायता प्राप्त हुई है। अनेक मुसलिम लेखकोंके विवरणोंमें भी कुमार पाल और उसके समकालीन इतिहासका उल्लेख मिलता है। चौलुक्य शासकोंके सिक्के दुर्लभ और अप्राप्य है। उत्तरप्रदेशमें एक स्वर्णमुद्रा प्राप्त हुई है जो जयसिंह सिद्धराजकी बतायी जाती है। कुमारपालीय मुद्राका भी उल्लेख मिलता है। इस सम्बन्धमें पाटन सहस्त्रलिंग तालाब आदिके निकट उत्खननसे नवीन प्रकाशकी आशा की जाती है।

यह तो हुई पुस्तकके अंतरंगकी बात। अब इसके बहिरंगपर भी संक्षेपमें चर्चा हो जानी चाहिए। चौलुक्य कुमारपालके इतिहासको सहज और रसमय बनानेके लिए तत्कालीन कलाके अवशेषोंकी अनुकृति चित्र प्रत्येक अध्यायके प्रारम्भमें दिये गये हैं। ये चित्र उस अध्यायमें वर्णित विषयके द्योतक तो है ही तत्कालीन कलाकी झांकी भी प्रस्तुत करते है। प्रथम अध्यायमें सोमनाथ मन्दिर तथा तत्कालीन पाण्डुलिपिका अंकन है तो द्वितीयमें समुद्र चन्द्रमा और कुमुदिनी प्रतीकात्मक रूपसे चौलुक्योंके चन्द्रवंशी होनेका परिचय देते हुए उनकी उत्पत्तिका संकेत करते है। तृतीय अध्यायके प्रारम्भका चित्र तत्कालीन समाजमें शिक्षाके स्वरूप और पद्धतिका परिचायक है। जैनमुनि किस प्रकार उस समय अध्यापन करते थे इसका अंकन इसमें हुआ है। चतुर्थ अध्यायका चित्र कुमारपालके समयके राजदरबार तथा वेश-भूषाके वर्णनके आधार पर प्रस्तुत किया गया है। इसकी पृष्ठभूमिमें देलवाड़ा मन्दिरके कलापूर्ण स्तम्भोंकी अनुकृति प्रदर्शित है। पांचवें अध्यायमें चौलुक्यकालीन चित्रोंके आधारपर सैनिक अभियानका स्वरूप अंकित है और तत्कालीन अस्त्र शस्त्र चित्रित किये गये हैं। छठें अध्यायके चित्रांकनमें छत्र सिंहासनके साथ राजमुकुट और राजशक्तिकी प्रतीक तलवार अंकित है। इस चित्रमें अलंकरण और वेशभूषा तत्कालीन वर्णनके आधारपर है। सातवें

अध्यायमें व्यापारिक पोत, ध्वजा-पताका युक्त भवनोंका चित्रण कर जहाँ उस कालकी आर्थिक सम्पन्नताका संकेत किया गया है, वहीं एक ओर तत्कालीन साहित्यमें वर्णित स्त्रियोंकी वेशभूषा वस्त्र-सज्जा तथा अलंकारोंकी रूपरेखा अंकित है। आठवें अध्यायका चित्र विश्वप्रसिद्ध देलवाड़ा मन्दिरके श्वेत संगमरमरकी कलापूर्ण भीतरी छतकी अनुकृति है। साहित्य और कलाके नौवें अध्यायका प्रारम्भ वीणा पुस्तकधारिणी सरस्वतीके चित्रसे हुआ है। अन्तिम और दसवें अध्यायके प्रारम्भमें आबू पहाड़ स्थित जैन मन्दिरमें श्वेत संगमरमरकी अलंकृत मेहराब है, जो चौलुक्यकालीन शिल्पकौशलका उत्कृष्ट निदर्शन है।

अन्तमें जिन विद्वानों और महानुभावोंकी प्रेरणा निर्देश तथा परामर्शसे इस ग्रंथको प्रस्तुत करनेमें मुझे सहायता मिली है उनके प्रति मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूं। उत्तरप्रदेश राज्य सरकार तथा उसकी हिन्दी समितिने सन् १९५२ ई०में इस ग्रंथकी पाण्डुलिपिपर ७००)का पुरस्कार प्रदान कर जो प्रोत्साहन दिया है उससे मुझे बड़ा बल मिला है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके इण्डोलाजी कालेजके प्रिन्सिपल तथा प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृतिके प्रधान अध्यक्ष डाक्टर राजबली पाण्डेय एम० ए०, डी० लिट्०ने आमुख लिखने तथा ग्रंथ-लेखनके समय सतत निर्देश देनेकी जो महती कृपा की है उसके लिए मैं उनका परम कृतज्ञ हूं। आचार्य पण्डित विश्वनाथप्रसादजी मिश्र हेमचन्द्रके तथा कुमारपाल सम्बन्धी अन्य संस्कृत प्राकृत ग्रंथोंका वाचन न कराया होता तो यह ग्रंथ इस रूपमें प्रस्तुत हो पाता कहना कठिन है। लोकोदय ग्रंथमालाके विद्वान् और यशस्वी सम्पादक बन्धुवर श्री लक्ष्मीचन्द्रजी जैन एम० ए०ने इसे सुन्दर, सुगम्य और उपयुक्त बनानेके लिए जिस तन्मयता और श्रमसे इसकी पाण्डुलिपिका अध्ययन कर परामर्श दिया तथा भारतीय ज्ञानपीठके मन्त्री साहित्य-मर्मज्ञ मान्यवर श्री गोयलीयजीने इस ग्रंथमें तत्कालीन कलाके चित्रोंको सम्मिलित करनेकी सुयोग-सुविधा प्रदान कर, पुस्तकके सुन्दर

मुद्रणकी व्यवस्था की—इसके लिए मैं इन दोनों महानुभावोंके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। चित्रकार श्री अम्बिका प्रसाद दुबे तथा कलाकार मुहम्मद इस्माइल साहबने क्रमशः इस ग्रंथके दस अध्यायोंके चित्र तथा आवरण पृष्ठकी कलात्मक रूपरेखा प्रस्तुत की है एतदर्थ वे हार्दिक धन्यवादके पात्र हैं। पुस्तक जैसी बन पड़ी है, सामने है। इसकी त्रुटियोंसे परिचित होना मैं अपना अहोभाग्य समझूँगा।

रथयात्रा २०११ वि
व्यास-निवास काशी

लक्ष्मीशङ्कर व्यास

इतिहास की
सामग्री

पत्र, मुद्राएं तथा विदेशी यात्रियोंके ऐसे विवरण भी हैं, जो कुमारपाल तथा उसके समकालीन इतिहासका स्पष्ट चित्र हमारे समक्ष उपस्थित करते हैं। तत्कालीन स्मारक तथा भवन जिनके अवशेष अब तक प्राप्य हैं कुमारपालके इतिहास निर्माणमें पर्याप्त सहायता प्रदान करते हैं।

संस्कृत तथा प्राकृत साहित्य

(१) प्राकृत द्वयाश्रय काव्य (कुमारपाल चरित) : यह कुमारपालके धर्मगुरु हेमचन्द्र द्वारा लिखित है। इसका नाम द्वयाश्रय इसलिए पड़ा कि ग्रन्थकर्त्ताका उक्त काव्य प्रणयनमें दो लक्ष्य था। प्रथम तो संस्कृत व्याकरण-के लक्षणका प्रतिपादन और दूसरा सिद्धराजके वंशका कथावर्णन। कुमार पालचरित वास्तविक अर्थमें पूर्ण काव्य नहीं अपितु सम्पूर्ण काव्यका एक भाग है। इसके अतिरिक्त अट्ठाइसवीं कविताएं हैं जिनमें द्वयाश्रय महाकाव्य सम्पूर्ण हुआ है। इस काव्यके प्रथम सात सर्गोंमें कुमारपाल तथा अणहिल-पुरके राजकुमारोंका वर्णन है। इस महाकाव्यके अट्ठाइस सर्गोंमें प्रथम बीस संस्कृतमें हैं तथा अन्तिम आठ प्राकृतमें। काव्यके प्रारम्भमें राजधानी पाटनका वर्णन है और कुमारपालके सिंहासनारूढ़ होनेके साथही उसके राज दरबारमें विभिन्न प्रान्तोंके प्रशासकोंके प्रतिनिधियोंके उपस्थित होनेका भी विवरण है। प्रथम पांच तथा षष्ठ सर्गके कुछ भागमें अणहिल-पुर, महाराजकी विशाल सम्पत्ति तथा राजकीय जिन मन्दिरोंके वैभवका विशद वर्णन है। चौलुक्य शासक इन मन्दिरोंमें प्रतिष्ठित मूर्तियोंकी किस श्रद्धा तथा उदार भावनासे युक्त हो अर्चना करते थे इन सर्गोंमें उसका भी उल्लेख है। चौलुक्य नरेशोंके उपवनों तथा वर्ष पर्यन्त राजा और प्रजाके आमोद प्रमोदोंका भी उक्त सर्गोंमें हृदयग्राही वर्णन मिलता है। षष्ठ सर्गके उत्तरार्धमें कुमारपालकी सेना तथा कोंकण नरेश मल्लिकार्जुनके मध्य हुए युद्धका वर्णन है जिसमें मल्लिकार्जुनकी पराजय तथा अन्त हुआ। इसी सर्गमें कुमारपाल तथा उसके समकालीन नरेशोंके

साथ उसके वंशवृक्षका भी संक्षिप्त वर्णन है। दो सर्गोंमें नैतिक तथा धार्मिक चिन्तनकी विवेचना है। सप्तम सर्गमें स्वयं कुमारपालके मुखसे आध्यात्मिक चर्चा करायी गयी है और अष्टममें श्रुतदेवी कुमारपालको मार्गानुसार उपदेश करती है। हेमचन्द्रका जन्म विक्रम संवत् ११४५ (सन् १०८८ ११७२ ईस्वी)में हुआ और निधन विक्रम संवत् १२२९में। हेमचन्द्रका यह ग्रन्थ चौलुक्य नरेश कुमारपालके जीवन सम्बन्धी इतिवृत्त की प्रामाणिक कृति है। इसमें ऐतिहासिक घटनाओंका उल्लेख नहीं तथापि उसके राजजीवनका रेखांकन करनेके लिए इसमें पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है।[1]

(२) महावीर चरित्र यह ग्रन्थ भी हेमचन्द्रका लिखा हुआ है। इसमें कुमारपालके जीवनकी बहुतसी बातोंका विवरण मिलता है। महावीर चरित्रमें हेमचन्द्रने कुमारपालकी महत्ताका उल्लेख करते हुए राजा तथा जैन धर्मके भक्त रूपमें उसके अनेकानेक गुणोंका बखान किया है। कुमारपालके इतिहासके सम्बन्धमें इस पुस्तकका महत्त्व इसलिए विशेष है कि इसमें वर्णित बातोंका पता अन्य किसी साधनसे नहीं लगता। हेमचन्द्र कुमारपालका समसामयिक था और अपने आश्रयदाता महाराज था इसलिए उसके कथनोंपर अविश्वास या सन्देह नहीं किया जा सकता। यह हेमचन्द्रके जीवनकी अन्तिम कृति है। जैनधर्म स्वीकार करनेके बाद कुमारपालका संक्षिप्त किन्तु सारभूत वर्णन इस ग्रन्थमें है।

(३) कुमारपाल प्रतिबोध प्रसिद्ध जैन साहित्यकार सोमप्रभाचार्य कुमारपाल प्रतिबोधका प्रणेता है। इस ग्रन्थका प्रणयन उसने विक्रम संवत् १२४१ (सन् ११८५)में कुमारपालके निधनके ग्यारह वर्ष उपरान्त किया। इससे स्पष्ट है कि सोमप्रभाचार्य कुमारपाल तथा उसके गुरु हेमचन्द्रका समकालीन था। कुमारपाल प्रतिबोधकी रचना उसने [illegible]

[1]मुनि श्री जिनविजयजी : राजर्षि कुमारपाल पृष्ठ २।

धमाट श्रीपालके पुत्र कविसिद्धपालके निवासमें रहकर की। इस ग्रन्थमें समय समयपर गुजरातके प्रख्यात चौलुक्यवंशी राजा कुमारपालको हेमचन्द्र द्वारा दी गयी जैन शिक्षाओंका भी वर्णन है। इसमें इस बातका भी उल्लेख मिलता है कि किसप्रकार क्रमशः कुमारपाल उक्त उपदेशोंको ग्रहणकर जैन धर्ममें पूर्णरूपेण दीक्षित हो गया। इस ग्रन्थका नामकरण प्रधानतः 'जिनधर्म प्रतिबोध' किया है किन्तु पुस्तकका दूसरा शीर्षक उसने "कुमारपाल प्रतिबोध' रखा है। यह ग्रन्थ मुख्यतः प्राकृत भाषामें लिखा गया है किन्तु अन्तिम अध्यायमें कतिपय कथाएं संस्कृत भाषामें हैं। इसका कुछ अंश अपभ्रंशमें भी है। इस ग्रन्थके प्रणयनका मुख्य उद्देश्य कुमारपालका आदिका इतिहास लिखना नहीं रहा है अपितु जैनधर्मके उपदेशोंका वर्णन करना रहा है किन्तु उसके साथ ही ऐतिहासिक व्यक्तियों-की कथाएं भी सम्मिलित कर दी गयी हैं। इस सम्बन्धमें सोमप्रभाचार्यका कथन दृष्टव्य है—'यद्यपि कुमारपाल तथा हेमाचार्यका जीवनवृत्त अन्य दृष्टिकोणसे अत्यन्त रुचिकर है पर मेरी अभिरुचि केवल जैनधर्मसे सम्बद्ध शिक्षाओंके वर्णन तक ही सीमित रखना चाहती है। क्या वह व्यक्ति जो विभिन्न सुस्वादुपूर्ण पदार्थोंसे भरे पात्रमेंसे केवल अपनी विशेष रुचिकी ही वस्तुएं ग्रहण करता है दोषी ठहराया जा सकता है?'[1] यद्यपि इस ग्रन्थसे बहुत सीमित अंशमें ही ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त होती है तथापि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इसके द्वारा जो कुछ भी ज्ञातव्य प्राप्त होती है वह अत्यन्त प्रामाणिक एवं विश्वसनीय है। सोमप्रभाचार्य

---

[1] 'जइ वि चरियं इमाणं मणोहरं अत्थि बहुयमन्नं पि
तह वि जिणधम्म पडिबोह बंधुरं किं पि जंपेमि
बहु भक्ख जुयाइ वि रसवईए मज्झमो किंचि भुंजंतो
निय इच्छा—अणुरूवं पुरिसोकिं होइ वयणिज्जो
—कुमारपाल प्रतिबोध पृ० ३, श्लोक १०-११।

कुमारपालका केवल समकालीन ही न था अपितु उसके व्यक्तिगत जीवन का भी विशेष ज्ञाता था। इस विचारसे 'कुमारपाल प्रतिबोध'का कुछ कम महत्त्व नहीं। इसमें लगभग बारह हजार श्लोक हैं किन्तु ऐतिहासिक सामग्री मुश्किल २००-२५० श्लोकोंमें ही मिलती है।

(४) प्रबन्ध चिन्तामणि : प्रबन्ध चिन्तामणिका रचयिता प्रख्यात जैन पंडित मेरुतुंग है। इस ग्रन्थमें विभिन्न ऐतिहासिक व्यक्तियोंपर प्रबन्ध हैं। सम्पूर्ण पुस्तक पांच प्रकाशोंमें विभक्त है। सर्वप्रथम विक्रम प्रबन्धमें सातवाहन शिलादित्य भूयराज वनराज मूलराज तथा मुंजराज सम्बन्धी प्रबन्ध हैं। द्वितीय प्रकाशमें भोज भीम प्रबन्धका वर्णन है तृतीयमें सिद्धराज प्रबन्ध है और चतुर्थमें कुमारपाल प्रबन्ध है जिसमें वस्तुपाल तेजपाल प्रबन्ध भी सम्मिलित है। अन्तिम पंचम प्रकाशमें प्रकीर्ण प्रबन्ध हैं। मेरुतुंगसे कुमारपालके प्रारम्भिक जीवन राज्यारोहण चौहानों और अन्य राजाओंसे युद्ध उसके जैनधर्ममें दीक्षित होने आदि विषयकी बहुतसी महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। वस्तुतः प्रबन्ध चिन्तामणि उन महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक साधनोंमें एक है जिनकी सहायतासे चौलुक्योंका इतिहास प्रामाणिक आधारपर प्रस्तुत किया जा सकता है। विक्रम संवत् १३६१ (१३०५ ईस्वी)की वैशाखी पूर्णिमाको यह ग्रन्थ वर्धमानपुर (आधुनिक वढ़वाण)में सम्पूर्ण हुआ।[1] इसी कालका एक ग्रन्थ अथवा सम्भवतः उक्त ग्रन्थका ही प्रारम्भ भी गुणचन्द्र आचार्य "पंचर्षि मणिमाला" द्वारा हुआ था। मेरुतुंगने इस सम्बन्धमें स्वयं लिखा है कि प्राचीन पाठाओंके श्रवणसे ही सन्तोष नहीं होता इसलिए मैंने अपनी पुस्तक प्रबन्ध-चिन्तामणिमें ठोस प्रमाण सामग्रीका निरूपण किया है। मेरुतुंगने यह भी लिखा है 'इस ग्रन्थमें यद्यपि पाण्डित्यसे तो नहीं तथापि परिश्रमसे कार्य किया गया है।

---

[1] रासमाला, ११ अध्याय पृष्ठ ३२९।

(५) थेरावली : थेरावली यह महत्त्वपूर्ण रचना है जिसमें चौलुक्य नरेशोंकी नामावलीके अतिरिक्त उनकी तिथि तथा शासन अवधिके विवरण भी हैं। इस ग्रन्थके प्रणेता भी जैन पण्डित मेरुतुंग ही हैं। इस कृतिमें मुख्यतः संस्कृत भाषामें वंशावली है तथा उत्तराधिकारियोंकी नामावली है। यद्यपि प्रबन्ध चिन्तामणि ऐतिहासिक ग्रन्थ है और थेरावली नरेशों और उनके समयकी सूची मात्र है तथापि यह अधिक प्रामाणिक मानी जाती है।[1]

(६) प्रभावकचरित्र इसका प्रणयन श्री प्रभाचन्द्राचार्य द्वारा हुआ। ये जैन पण्डित थे और इसकी गणना भी जैन ग्रन्थोंमें है। यह कृति द्वादश अध्यायोंमें है। इसके अन्तिम अध्याय "हेमचन्द्रसूरी चरितम्"में चौलुक्य नरेश कुमारपालका इतिहास है। इस अध्यायसे कुमारपालके प्रारम्भिक जीवन उसका विभिन्न देशोंमें पर्यटन राज्यारोहण सैनिक अभियान तथा विजयके प्रसंगोंका सुस्पष्ट वर्णन प्राप्त होता है।

(७) पुरातन प्रबन्ध संग्रह यह रचना प्रबन्ध चिन्तामणिका अवशिष्ट अंश है। इसके अनेक प्रबन्ध प्रबन्धचिन्तामणिके समान ही हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि इस कृतिमें प्रबन्धचिन्तामणिसे सम्बन्ध अथवा उसीके समान मिलते जुलते बहुत प्राचीन प्रबन्धोंका संग्रह है। इस संग्रहमें विभिन्न व्यक्तियोंपर कुल मिलाकर ६० प्रबन्ध हैं इनमेंसे अनेक प्रबन्ध कुमारपालके इतिहासपर भी बहुत प्रकाश डालते हैं।

(८) मोहराजपराजय : यह पाँच अंकोंका नाटक है और इसके रचयिता हैं श्रीयशपाल। इसमें गुर्जर नरेश कुमारपालके हेमचन्द्र द्वारा जैनधर्ममें दीक्षित होने पशुहिंसापर प्रतिबन्ध लगाने तथा निःसन्तान मरनेवालोंकी सम्पत्ति हस्तगत कर लेनेकी राज्य प्रथाको उठा देनेका वर्णन है। यह रूपक है। विषय तथा वर्णनके विचारसे यह मध्यकालीन

---

[1]रासमाला : परिशिष्ट पृष्ठ ५५२ ।

यूरोपके ईसाई नाटकोंसे समता रखता है। संस्कृत साहित्यमें भी इस प्रकारके अन्य नाटक हैं जिनमें श्रीकृष्णमिश्रके प्रबोध-चन्द्रोदय नाटकका नाम अत्यधिक प्रसिद्ध है। नरेश उसके विदूषक तथा हेमचन्द्रके अतिरिक्त नाटकके सभी पात्र सत् अथवा असत् भावोंमें विभक्त हैं।

नाटककार यशपाल मोढ़ बनिया जातिका था और उसके माता पिताका नाम था रुक्मिणी तथा धनदेव। धनदेवका वर्णन मन्त्रि रूपमें हुआ है तथा स्वयं नाटककारने अपनेको चक्रवर्ती अजयदेवके चरण कमलों-का हंस कहा है। अजयदेवका राज्यकाल १२२९से १२३२ पर्यन्त है। इसलिए नाटकका रचनाकाल इसी अवधिके मध्यमें निश्चित करना होगा। यह नाटक केवल लिखा ही नहीं गया था वरन् इसका अभिनय भी हुआ था। रंगमंचपर इस नाटकका अभिनय कुमार विहारमें (कुमारपाल द्वारा निर्मित) भगवान महावीरकी मूर्ति स्थापन समारोहके अवसरपर सर्व प्रथम हुआ था। यह स्थान थारापद्र (आधुनिक पल्हणपुर एजेन्सी थराद गुजरात मारवाड़की सीमापर स्थित) में है। ऐसा प्रतीत होता है कि नाटककार इसी स्थानका राज्यपाल अथवा निवासी था।

(९) उपर्युक्त ग्रन्थोंके अतिरिक्त चौलुक्य नरेश कुमारपालके इतिहासका परिचय करानेवाली अन्य अनेक साहित्यिक और ऐतिहासिक कृतियाँ भी हैं। इनमें विक्रमांकदेव चरितम् सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी कीर्ति कौमुदी वसन्त विलास हम्मीरमदमर्दन चरित्रसुन्दरगणि कुमारपाल चरित जिनमण्डनका कुमारपाल प्रबन्ध जयसिंह प्रणीत कुमारपाल चरित तथा क्षेमम् द्वारा सम्पादित रासमाला मुख्य हैं।

इन ग्रन्थ समूहमें सर्वाधिक महत्वकी रचना महाकवि श्री बिल्हण का "विक्रमांकदेव चरितम्" है। इस महाकाव्यकी रचना बारहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें हुई थी। इसमें अठारह सर्ग हैं तथा इसका नायक चालुक्य विक्रमादित्य है। इसके सत्रहवें सर्गमें नायकका वर्णन है तथा अन्तमें कविने अपना ऐतिहासिक विवरण देते हुए कश्मीरका वर्णन किया

है। प्रथम सर्गमें चालुक्योंकी उत्पत्तिका विवरण है और कविने बताया। कि वे किस प्रकार अयोध्यासे दक्षिण दिशाकी ओर गये।

कुमारपाल प्रबन्धके रचयिता जिन मण्डनगणिने कुमारपाल प्रतिबोधमें अनेक ऐतिहासिक उद्धरण लिये है। जयसिंह सूरिने कुमारपाल प्रतिबोध की रचना शैलीका रचना सादृश्य अपने कुमारपाल चरित्रमें किया है इसी प्रकार अन्य ग्रन्थोंसे भी कुमारपालके इतिहासकी रूपरेखाके निर्माणमें सहायता मिलती है।

उत्कीर्ण लेख

आधुनिक इतिहासज्ञ उत्कीर्ण लेखोंको किसी ऐतिहासिक कालके प्रामाणिक विवरणके लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मानते है। सौभाग्यसे कुमारपालके समयके एक दो नहीं बाइस उत्कीर्ण लेख मिलते है। इनसे कुमारपालके इतिहासकी बहुतसी बातोंका पता चलता है। इन उत्कीर्ण लेखोंमेंसे कुछ उसके अधीनस्थोंके आदेश है कतिपयमें राजकीय आज्ञाकी घोषणाएं है तथा अन्य दान लेख है।

(१) मंगरोल शिलालेख (विक्रम संवत् १२ २ या सन् ११४५)—यह शिलालेख दक्षिणी काठियावाड जूनागढ़के अन्तर्गत मंगरोलके मस्जिद द्वारके निकट एक वापी (कूप)के श्याम प्रस्तरमें उत्कीर्ण है। यह शिलालेख पचीस पंक्तियोंका है और इसमें गुर्जर नरेश कुमारपालकी प्रशस्ति है। इसमें गुहिलवंशके सौराष्ट्र नायक मूलक द्वारा सहजीगेश्वरके मन्दिरका निर्माण तथा दानका विवरण अंकित है।[1]

(२) बोझुद शिलालेख (विक्रम सवत् १२०२ या सन् ११४५)—यह भोजाइतके महामंडलेश्वर नयनदेवके समयका है। इसमें महामंडलेश्वरकी असीम कृपा द्वारा राजा धवलसिंहके उत्कर्षका उल्लेख

[1] भावनगर इन्सक्रिपशन्स पृष्ठ १५८-६०।

है और जिसने ईश्वराधनके निमित्त तीन हल चलाने योग्य भूमि का दान किया।[1]

(३) किराडू शिलालेख (वि० सं० १२०२)—किराडू जोधपुर राज्य आधुनिक राजस्थानमें स्थित है। यह शिलालेख किराडू परमार सोमेश्वर के समयका है जो कुमारपालके अधीनस्थ था।[2]

(४) चित्तौरगढ शिलालेख (वि० सं० १२०७)—यह लेख चित्तौर स्थित मोकलजी मन्दिरमें उत्कीर्ण है। इसमें कुमारपालके चित्रकौट (चित्तौर) आगमन तथा समीद्धेश्वर मन्दिरमें भेंट चढ़ानेका उल्लेख भी है।[3]

(५) आबू पर्वत शिलालेख—यह महामंडलेश्वर यशोधवलके समयका है।

(६) चित्तौरका प्रस्तर लेख—इस प्रकीर्ण लेखमें मूलराजसे कुमारपाल तककी वंशावलीका विवरण है। इसमें कहा गया है यह चौलुक्य वंशमें उत्पन्न हुआ जिस वंशका उदय ब्रह्माके हस्तमें हुआ बताया गया है। इसके पश्चात् इसमें मूलराजसे जयसिंह तककी वंशावली दी गयी है। उसके अनन्तर त्रिभुवनपालका पुत्र कुमारपाल हुआ।

(७) बडनगर प्रशस्ति (वि० सं० १२०८)—गुजरातके बडनगरमें सामेत ताल्लुके निम्ट अर्जुनबाड़ीमें एक प्रस्तर खंडपर यह लेख उत्कीर्ण है। इसमें चौलुक्योंकी उत्पत्तिका विवरण है तथा कुमारपाल तककी

---

[1] इंडि० एंटी० खंड १ पृष्ठ १५९।
[2] इंडि० एंटी० खंड १० पृष्ठ १५९।
[3] सूची क्रम संख्या २७४।
[4] इंडि० एंटी० खंड २, पृ० ४२१ २४।
[5] सूची, क्रम संख्या २८ ।

वंशावली अंकित है। ११२० श्लोक नागर अथवा आनन्दपुर में प्राचीन ब्राह्मण बस्तीकी प्रशंसामें है। उसी प्रसंगमें इस बातका भी उल्लेख मिलता है कि कुमारपालने अपने कालमें उक्त प्राचीन ऐतिहासिक नगरके चतुर्दिक घेरा बनवाया था। १०वें श्लोकमें प्रशस्तिकार श्रीपालका नामोल्लेख है जिससे सिद्धराजने अपना भ्रातृत्व सम्बन्ध स्वीकार किया था और जिसकी उपाधि कवि चक्रवर्तीकी थी।[1]

(८) पाली शिलालेख (वि० सं० १२०९)—यह जोधपुर राज्यके पाली नामक स्थानमें सोमनाथ मन्दिर सभामंडपमें अंकित है। यह लेख कुमारपालके समयका है।[2] इस शिलालेखमें कुमारपालका शाकम्भरी भीमके विजेता रूपमें उल्लेख है। प्रधान मन्त्री महादेवका नाम भी इसमें अंकित है तथा लेखकी छठीं पंक्तिमें इस बातका स्पष्ट उल्लेख है कि आशुक राज पल्लिका शासन कर रहे थे।

(९) किराडू शिलालेख (वि सं० १२०९)—यह लेख कुमारपालके समयका है। इसमें शिवरात्रि आदि पर्वोपर पशुओंकी हिंसा करनेकी निषेधाज्ञा है। इसमें कहा गया है कि राज परिवारके सदस्य द्रव्य दंड देकर ही पशु हिंसा कर सकते थे और अन्य लोगोंके लिए तो इस अपराधके लिए प्राणदंडकी व्यवस्था थी।

---

[1]आधुनिक बडनगर (विसनगर) बड़ौदा राज्यके कड़ी जिलेके खेरल तब डिविजनमें है। इस स्थानकी प्राचीनताके लिए देखिये इंडि० एंटी० खंड १ पृ० २९५।

[2]इंडि एंटी० खंड १, पृ० २९३-३०५ तथा आई० ए खंड १०, पृ० १६०।

[3]पु० एस आई० डब्लू० सी० पृ० ४४-४५, १९०७-८, इंडि० एंटी० खंड ११, पृ ७।

[4]इंडि० एंटी खंड ११ पृ० ४४।

(१०) रत्नपुर प्रस्तर लेख—जोधपुरके रत्नपुरके बाहरी भागमें एक प्राचीन शिव मन्दिरके मण्डपमें उक्त लेख उत्कीर्ण है। यह कुमार पालके शासनकालका है। इसमें गिरिजादेवीकी वह आज्ञा अंकित की गयी है जिसमें कहा गया है कि निर्दिष्ट दिवस तिथियोंको पशुओंका वध करना निषिद्ध है।

(११) अर्बुद प्रस्तर लेख (वि० सं० १२१०)—यह आबुर राज्यके अर्बुद नामक स्थानके अचलेश्वर मन्दिरमें है। शिलालेख उक्त मन्दिरके सभामण्डपके एक स्तम्भमें उत्कीर्ण है। यह कुमारपालके शासन कालमें खुदवाया गया है। इसमें दण्डनायक वैजाकका भी उल्लेख आया है जो नाडोल जिसका कार्याधिकारी था।

(१२) नाडोलका दानपत्र (वि० सं० १२१३)—यह कुमारपालके समयका है। इसका प्राप्ति स्थान आबूके समीप देसूर जिलारा नाडोल है। इसमें जैन मन्दिरोंको दान देनेका उल्लेख है। इसमें बन्दरके प्रधान मन्त्री महामण्डलिक प्रतापसिंह तथा बदारीके भूमी मूह (मर्दालिका) का विवरण है।[1]

(१३) बाली शिलालेख (वि० सं० १२१६)—जोधपुर बालीके बहुगुण मन्दिरके द्वारके सिरपर यह शिलालेख उत्कीर्ण है। इसमें कुमार पालके शासनकालमें प्रदत्त भूमिके दानका उल्लेख है। इस लेखमें नाडोलके चाहमान तथा बुम्मसी (आधुनिक बाली) के जागीरदार वैजल्लदेवका नाम अंकित है।

(१४) किराडू शिलालेख (वि० सं० १२१८)—जोधपुर राज्यके

---

[1] इंडि० एंटी० खंड २० परिशिष्ट पृ० २ १।
[2] ए० एस० आई० इयू० रो० १९०८ पृ० ५१-५२।
[3] इंडि० एंटी खंड ४१ पृ० २०२-२०३।
[4] ए० एस० आई० इयू० सी० १९०७-१९०८ पृ० ५४-५५।

किराड़ू स्थित एक शिवमन्दिरमें यह लेख अंकित है। इसका समय कुमारपालका शासनकाल ही है। इसमें कुमारपालके अधीनस्थ किराड़ू परमार सोमेश्वरका उल्लेख है।[1]

(१५) उदयपुर प्रस्तर लेख—यह ग्वालियर राज्यमें है। ग्वालियरके अन्तर्गत उदयपुरके विशाल उदयेश्वर मन्दिरके प्रवेश स्थलपर ही यह लेख उत्कीर्ण है। यह कुमारपालके समयका है और इसे उसके एक अधीनस्थ अधिकारीने उत्कीर्ण कराया था। इसकी तिथि लेखमें सुस्पष्ट नहीं है।[2]

(१६) उदयपुर प्रस्तर स्तम्भ लेख (वि सं १२२२)—यह उक्त मन्दिरके एक प्रस्तर स्तम्भमें उत्कीर्ण है। इसमें ठाकुर वाहड़ द्वारा इसी मन्दिरको प्रदत्त भृङ्गारिकाके अन्तर्गत सामगावताके आधे गाँव दान स्वरूप देनेका उल्लेख है।[3]

(१७) जालौर प्रस्तर शिलालेख (वि० स १२२१)—जोधपुर राज्यके अन्तर्गत जालौर नामक स्थानमें एक मस्जिदके दूसरे खंडके द्वारके ऊपर यह लेख उत्कीर्ण है। इस मस्जिदका उपयोग बादमें तोपखानेके रूपमें होता रहा है। इसमें कुमारपाल द्वारा निर्मित प्रसिद्ध जैन मन्दिर कुमार विहारके निर्माणका विवरण है। पार्श्वनाथका यह प्रसिद्ध जैन विहार जवाली पुर (जालौर) के कञ्चनगिरि किलेपर बना हुआ है। इस विवरणके अतिरिक्त इसमें यह भी लिखा है कि कुमारपाल प्रभु हेमसूरि द्वारा दीक्षित हुआ।

(१८) शिरिमार शिलालेख (वि सं० १२२२ २३)—यह शिलालेख कुमारपालके समयका है।[4]

---

[1] ई० इंडि खंड २० परिशिष्ट पृ ४७।
[2] इंडि० एंटी खंड १७, पृ० ३४१।
[3] इंडि० एंटी० खंड १७ पृ० ३४१।
[4] इंडि एंटी, खंड ११, पृ० ५४-५५।
आर० एस० ए० आर डी० पी०, १५९।

(१९) जूनागढ़ शिलालेख (वल्लभी संवत् ८५० (?) सिंह ९)—यह जूनागढ़के भूतनाथ मन्दिरमें उत्कीर्ण है। यह लेख कुमारपालके समयका है। इसमें अनहिल्लपाटनपुरके[1] धवलकी पत्नी द्वारा दो मन्दिरोंके निर्माणके विवरण है। दंडनायक गुमदेवका नामोल्लेख भी इसमें आया है।

(२०) नदलाई प्रस्तर लेख (वि० सं० १२२८)—यह शिलालेख जोधपुर राज्यके नदलाई नामक स्थानके दक्षिण-पश्चिम एक महादेवके मन्दिरमें मिला है। यह भी कुमारपालके समयका है।[2]

(२१) प्रभासपाटन शिलालेख (वल्लभी संवत् ८५०)—यह शिलालेख प्रभासपाटन अथवा सोमनाथपाटनमें भद्रकाली मन्दिरके निकट एक प्रस्तर पर उत्कीर्ण है। इसके अंकनका समय कुमारपालका शासनकाल है। इसमें कुमारपाल द्वारा सोमनाथ मन्दिरके पुनर्निर्माणका विवरण है।[3]

(२२) गाला शिलालेख—काठियावाड़के ध्रांगध्रा राज्यके गाला नामक ग्राममें एक देवीके ध्वस्त मन्दिरके प्रवेशद्वारपर यह शिलालेख खुदा हुआ है। यह पूर्णरूपेण कुमारपालके कालका है। इसमें प्रधान मन्त्री महादेवके अतिरिक्त राज्यके अनेक अधिकारियोंका भी नामोल्लेख है।

स्मारक

कुमारपाल जैनधर्ममें दीक्षित हो गया था और जैनधर्मके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करनेके निमित्त उसने विभिन्न स्थानोंमें जैन मन्दिरोंका निर्माण कराना प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम उसने पाटनमें अपने मन्त्री वाहड़के

---

[1]बी० सी० खंड १ १९३६ ई० द्वितीय खंड, पृ० ३९।
[2]इंडि० एंटी० खंड ११ पृ० ४७-४८।
[3]बो० पी० एस० आई०, १८६, सूची क्रम संख्या १६८०।
[4]पी० ओ० खंड १ पार्ट २, पृ० ४०।

निरीक्षणमें कुमारविहार नामक मन्दिर बनवाया। इस विहारके मुख्य मन्दिरमें उसने श्वेत संगमरमरकी पार्श्वनाथकी विशाल मूर्तिकी प्रतिष्ठा करायी। इसके पार्श्वके चौबिस मन्दिरोंमें उसने चौबिस तीर्थंकरोंकी सुवर्ण रजत तथा पीतलकी मूर्तियाँ स्थापित करायीं।

इसके पश्चात् कुमारपालने त्रिभुवनविहार[1] नामक और भी विशाल तथा उच्चशिखरोंसे युक्त जैन मन्दिरका निर्माण कराया। इसके चतुर्दिक विभिन्न तीर्थंकरोंके लिए बहत्तर मन्दिर बने थे। इन मन्दिरोंके विभिन्न विशेष भाग सुवर्णके बने हुए थे। मुख्य मन्दिरमें तीर्थंकर नेमिनाथकी विराट तथा भव्यमूर्ति बनी थी तथा अन्य उपमन्दिरोंमें विभिन्न तीर्थंकरोंकी मूर्तिया स्थापित थी।

इनके अतिरिक्त कमारपालने केवल पाटनमें ही चौबिस तीर्थंकरोंके लिए चौबिस जैनमन्दिर बनवाये जिनमें त्रिविहारका मन्दिर प्रसिद्ध था। पाटनके बाहर राज्यके विभिन्न स्थानोंमें उसने इतने अधिक जैन मन्दिरोंका निर्माण कराया कि उनकी निश्चित संख्याका अनुमान करना भी कठिन है। इनमेंसे वाग्भट पुत्र सुबेदार अभयके निरीक्षणमें तरंग पहाड़ीपर बना अजितनाथका विशाल मन्दिर उल्लेख्य है। यद्यपि आज ये स्मारक अपने पूर्व रूपमें अवस्थित नहीं तथापि ध्वंसावशेष भी अपने समयके बीते कालके अवशेष हैं तथा कुमारपालके इतिहास निर्माणमें बहुत सहायक हैं।

मुद्राएं

सिक्कोंका जहाँ तक सम्बन्ध है पूर्व-मध्यकाल तथा उत्तरार्ध मध्य-काल दोनोंमें ही कुछ विचित्र स्थिति है। यह आश्चर्यकी बात है कि वल्लभीके मैत्रिकोंके अतिरिक्त किसी वंशकी मुद्राएं गुजरातमें नहीं प्राप्त होती।

---

[1] पी० मौ०, खंड १, भाग २, पृ० ४०।

जो प्राप्त हुई हैं वे भी गिनतीकी हैं। ये मुद्राएं ब्रिटिश म्यूजियममें रखी हैं। इनमें कोई स्वरूप साम्य नहीं है। इनके एक ओर वृषभका आकार बना हुआ है। यह और भी आश्चर्यकी बात है कि अणहिलवाड़के चौलुक्यों-की कोई मुद्राएं नहीं प्राप्त होती हैं। गुजरात तथा पाटनके लोग इस बातका गम्भीरतासे अनुभव ही नहीं करते। पुरातत्त्ववेत्ता श्री एच० डी० सांकलिया जब अपने अनुसन्धानके दौरेपर गये थे और जब उन्होंने पाटनके लोगोंसे चौलुक्योंके सिक्कोंके सम्बन्धमें प्रश्न किया तो लोग आश्चर्य करते थे।[1] कई वर्ष पहले सहस्रलिंग तालाबके निकट, नगरकी सीमाओंके बाहर जब एक सड़कका निर्माण हो रहा था तो सागर मध्यराके श्री मुनि पुण्य विजयजीको कुछ मुद्राओंका पता लगा था। दुर्भाग्यवश किसी मुद्रा विशेषज्ञको ये सिक्के नहीं दिखाये गये और बादमें उनका कोई पता न चला।[2] चौलुक्योंने अवश्य ही मुद्राएं अंकित करायी होंगी तथा उनका पर्याप्त प्रचलन होगा इस तथ्यके समर्थनमें उत्तरप्रदेशसे प्राप्त एक सुवर्ण मुद्रासे यह धारणा और भी पुष्ट हो जाती है। उत्तरप्रदेशमें मिली उक्त सुवर्ण मुद्रा सिद्धराज जयसिंहकी बतायी जाती है। इतने सुसम्पन्न कालमें चौलुक्योंने अपनी मुद्राएं न प्रचलित की होंगी ऐसा स्वीकार करना समुचित नहीं प्रतीत होता है। इसलिए इस धारणाको बल मिलता है कि यदि उचित रूपसे खनन तथा अनुसन्धानका कार्य किया जाय—विशेषकर सहस्रलिंग तालाबके निकट तो मुद्राओंके अतिरिक्त चौलुक्य कालीन अन्य बहुमूल्य सामग्री भी प्रकाशमें आयेगी।

---

[1] आर्केलाजी आफ गुजरात अध्याय ८, पृ० १९०।

[2] आर्केलाजी आफ गुजरात, अध्याय ८, पृ० १९०।

[3] वही।

[4] जे० आर० ए० एस० बी०, लैटर्स, ३, १९३७ नं० २, आर्टिकिल।

विदेशी इतिहासकारोंके विवरण

चौलुक्य उस कालमें शासन कर रहे थे जब मुसलिम भारतके पश्चिमोत्तर भागपर आक्रमण कर विजय प्राप्त कर रहे थे। कुमारपालके पहले चौलुक्यों और मुसलिमोंमें संघर्ष[1] हुआ था तथा कुमारपालके बाद भीम द्वितीयके शासनकालमें मुसलिमोंसे प्रत्यक्ष संघर्ष हुआ। कालान्तरमें अन्ततोगत्वा मुसलिमोंने चौलुक्योंको पराजित कर दिया। अनहिलवाड़ेमें स्थापित कुतुबुद्दीनका मुसलिम सेनागार या तो हटा लिया गया था अथवा उसका पराभव हो गया था। प्रसिद्ध मुसलिम इतिहासकार फरिश्ता लिखता है कि भीमदेवकी मृत्युके पचास वर्ष बाद तत्कालीन दिल्लीके शासकको उसकी परामर्शदात्री परिषद्ने यह सलाह दी कि कुतुबुद्दीन द्वारा विजित गुजरातके प्रदेश जो अब स्वतन्त्र हो गये थे उन्हें पुनः अधीन किया जाय। परिषद्ने गुजरात तथा मालवा सेना भेजनेका परामर्श दिया था।

अलाउद्दीनके सैनिक अभियानके पहले तेरहवीं शताब्दीके अन्तके पूर्व तक अनहिलवाड़ा मुसलिमोंके अधीन न हुआ। मुसलिम विवरणोंमें भी चौलुक्योंका उल्लेख बहुत मिलता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक मुसलिम लेखकने कुमारपालको कुम्पाल[2] सम्बोधित किया है। अबुलफजलने भी लिखा है कि जयसिंहकी मृत्यु[3] तक कुमारपाल सोलंकी निर्वासनमें रहता था। इसीप्रकार मिनहाजुद्दीन बरनीकी तारीख-ए-फिरोजशाही निजामुद्दीनकी तबकाते-ए-अकबरी[4] तारीख-ए

---

[1]मूलके १४ वर्ष पूर्व चामुंडराजकी सन् १०१०में मृत्यु हुई जब मुसलिम आक्रमण हुआ तो भीम शासनारूढ़ था।

फोर्बस : रासमाला।

[2]आइने-अकबरी खंड २, पृ० २६१।

[3]इलियट खंड १ पृ० ९१।

[4]बिबलिओथिका इण्डिका बी०के डस अनुवाद, १९१३।

फरिश्ता[1] आइने-अकबरी[2] तबकाते-नसीरी तथा मीराते-अहमदीसे चौलुक्य कुमारपालके समय तथा इतिहासका बहुत कुछ विवरण प्राप्त होता है।

विभिन्न सामग्रियों पर एक दृष्टि

इन प्रभूत साहित्यिक रचनाओं शिलालेखों स्मारकों तथा अन्य प्राप्त साधनोंकी सहायतासे चौलुक्यनरेश कुमारपालके इतिहासको प्रामाणिक और विधिवत ऐतिहासिक पद्धतिपर लिखा जा सकता है। साहित्यिक एवं अर्ध-ऐतिहासिक ग्रन्थोंसे कुमारपालके प्रारम्भिक जीवन उसके सिंहासनारूढ़ होने चौहानों परमारों तथा अन्य शक्तियोंसे युद्ध उसके जैनधर्ममें दीक्षित होने तथा अन्तमें उसके निधनका विवरण मिलता है। इन साहित्यिक साधनोंसे देशकी तत्कालीन आर्थिक तथा सामाजिक स्थितिपर भी पूर्ण प्रकाश पड़ता है। वस्तुतः तत्कालीन साहित्यमें उल्लिखित एवं विभिन्न ऐतिहासिक तथ्य कुमारपालके इतिहासके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधनोंमें प्रमुख हैं।

इनके बाद कुमारपालके समयके विभिन्न शिलालेखों प्रकीर्ण लेखों तथा ताम्रपत्रोंसे उसकालका शासन प्रबन्ध तथा देशकी विभिन्न परिस्थितियोंका परिचय मिलता है। तत्कालीन साहित्यिक रचनाओंमें भले ही अर्ध-ऐतिहासिक तथ्य अंकित हों, क्योंकि उनमें कहीं-कहीं वास्तविक सत्यके साथ साथ अतिरंजनापूर्ण प्रशस्तियाँ भी रहती हैं किन्तु प्राचीन लेखोंके सम्बन्धमें ऐसी बात नहीं कही जा सकती। अधिकांश शिलालेख दानपत्रोंके रूपमें हैं अथवा उनमें राजकीय घोषणाएं हैं। इनमेंसे कुछमें जैन मन्दिरोंको दान देनेका भी उल्लेख है। शिलालेखोंसे बहुतसी महत्त्वपूर्ण बातोंका पता लगता है। इन प्रकीर्ण लेखोंसे अनेक प्रशासकीय इकाइयोंके साथ ही विभिन्न राज्याधिकारियोंके नाम भी विदित होते हैं। कुमारपालने जिन अनेक युद्धोंमें भाग लिया था उनके विवरण भी इन्हींसे प्राप्त होते

---

[1] ब्रिग्स द्वारा अनूदित, खंड १।

[2] ब्लोचमन जेरट, खंड २।

है। वास्तवमें कुमारपाल और उसके समयके इतिहासकी प्रामाणिक रूपरेखा प्रस्तुत करनेमें उसके शिलालेख ही प्रधान रूपसे सहायक हैं।

कुमारपाल महान निर्माता था। जैनधर्ममें दीक्षित होनेके परिणाम स्वरूप उसने अनेक विशाल तथा भव्य विहार एवं जैन मन्दिरोंका निर्माण कराया। यद्यपि आज ये समस्त स्मारक अपने पूर्वरूपमें विद्यमान नहीं तथापि उनके ध्वंसावशेष अब भी तत्कालीन इतिहासकी गौरव-गाथा मौन भाषामें कहते हैं। इन स्मारकोंमें कुछके ध्वंस हैं कुछके अल्प अवशेष और बहुत कुछ तो काल कवलित हो गये हैं। इनका सब मुख्य रूपसे पाटन तथा गुजरातके विभिन्न स्थानमें विस्तीर्ण है। दुर्भाग्यसे चौलुक्यों की मुद्राएं नहीं मिलती। उत्तरप्रदेशमें एक स्वर्ण मुद्रा मिली है जिसे सिद्धराज जयसिंहकी कहा जाता है। वस्तुतः यह अत्यन्त आश्चर्यकी बात है कि व्यापार एवं व्यवसायके ऐसे समुन्नत साम्राज्यके विधायकोंने अपने समयमें मुद्राएं प्रचलित न की हों। ऐसा कोई कारण नहीं जिससे इस समय सिक्कोंके प्रचलनके सम्बन्धमें सन्देह किया जा सके। सिक्कोंके सर्वथा अभाव एवं अप्राप्यताके लिए ऐतिहासिक घटनाएं उत्तरदायी हैं। इन दिनों यवनोंके अनेकानेक आक्रमण हुए जिनमें भयंकर लूटपाटकी घटनाएं हुईं। चौलुक्यों-के सिक्कोंकी दुष्प्राप्यताको इस प्रकार अच्छी तरहसे समझा जा सकता है।

कुमारपालके इतिहास निर्माणकी प्राप्य सामग्रियोंके सिंहावलोकनके प्रसंगमें विदेशी इतिहासकारों विशेषतः मुसलिम इतिहासकारोंके विवरणोंका भी उल्लेख आवश्यक है। मुसलिम इतिहासज्ञोंने तत्कालीन राजनीतिक घटनाओंका तो उल्लेख किया ही है, विभिन्न राजाओं और उनकी तिथियों-के विषयमें भी लिखा है। अनेक मुसलिम इतिहास-लेखकोंने कुमार पालका उल्लेख करते हुए जिन ऐतिहासिक तथ्योंको लिपिबद्ध किया है, उनकी पुष्टि अन्य ऐतिहासिक सामग्रियोंसे भी होती है। इस प्रकार चौलुक्य कुमारपालके प्रामाणिक इतिहासकी रूपरेखा और स्वरूपांकनके निमित्त प्रभूत सामग्री उपलब्ध है।

वंश की उत्पत्ति
और विधिक्रम

गुप्त साम्राज्य और पुष्यभूतियोंके पराभव तथा पतनके पश्चात् कोई ऐसा शक्तिसम्पन्न राजवंश न हुआ जिसका व्यापक विस्तार एवं विराट राजनीतिक प्रभुत्व अनहिल्लवाड़के चौलुक्योंका भारतमें हुआ। चौलुक्य शब्द चालुक्यका संस्कृत रूप है। गुजरातमें चौलुक्यका लोकप्रसिद्ध सम्बोधन "सोलंकी" अथवा "सालंकी" है। गुजरातके लोकगीतोंमें अब तक गायक इसका प्रयोग करते रहे हैं। प्राचीन शिलालेखों ताम्रपत्रों तथा समकालीन साहित्यमें इस वंशका नाम 'चौलुक्य' "चालुक्य अथवा 'चुलुक" मिलता है। इसके अतिरिक्त चालुक्यका अपभ्रंश चालुक्य सहित चौलिकिक चौलुक्य तथा चुलुग शब्दोंका प्रयोग भी इस वंशके सम्बोधनके रूपमें हुआ है।

लाट प्रदेशके राजा कीर्तिराज सोलंकीके ताम्रपत्रमें इस वंशका नाम चालुक्य[1] कहा गया है। उसके पौत्र त्रिलोचनपालके ताम्रपत्रमें वंशका नाम चौलुक्य[2] आया है। गुजरातके सोलंकी राजाओंके पुरोहित सोमेश्वरने अपनी कीर्तिकौमुदीमें "चौलुक्य" तथा "चुलुक्य"[3] का प्रयोग किया है।

---

[1] वियना ओरियन्टल जर्नल खंड ७ पृ० ८८।

[2] इत्ययम अथेतत्र समस्तनिर्जितमता किल। चौलुक्यवंशप्रथिता न
स्या इंडि० एंटी० खंड १२, पृ० २०१।

[3] अथ चौलुक्य भूपालस्थान धामान ऊर्जुरम्। कीर्तिकौमुदी २ १।
अणहिल्लपुरमस्ति स्वस्तिपात्रं प्रजानाम्।

राजा राजराजा प्रथम (वि० सं० १०७१ ११२०=सन् १०२२-१०६३)के एक ताम्रपत्रमें यह लिखा है कि भगवान पुरुषोत्तमके "नाभि-कमल"से ब्रह्मा उत्पन्न हुए और उन्होंने अनेकानेक राजाओं तथा राजवंशोंकी उत्पत्ति की। इन राजवंशों और राजाओंने चक्रवर्ती सम्राटोंकी भांति अयोध्यामें शासन किया। इसी राजवंशमें राजा विजयादित्य हुआ। वह दक्षिण विजयके लिए गया और उसीके वंशमें राजराजा[1] हुआ। इस कथनकी पुष्टि राजराजाके पिता राजा विमलादित्य (वि० सं० १०७५=सन् १०१८)के एक ताम्रपत्र[2] द्वारा भी होती है।

चुलुक सिद्धान्त

चौलुक्योंकी उत्पत्ति विषयक एक चुलुक सिद्धान्त भी है। काश्मीरी कवि बिल्हण अपने 'विक्रमांकदेवचरित' (वि० सं० ११४३=सन् १०८५)में लिखा है कि ब्रह्माके "चुलुक"से एक वीर पुरुष उत्पन्न हुआ जिसके वंशमें हरित तथा मानव्य हुए। इन क्षत्रियोंने पहले अयोध्यामें शासन किया और तदनन्तर दक्षिण दिशामें एकके बाद दूसरी विजय करते आगे बढ़े।[3] यही सिद्धान्त अल्प परिवर्तनके साथ कुमारपालके

---

[1] इंडि० ऐंटी० खंड १४, पृ० ५०-५५।

[2] इंडि० ऐंटी खंड ६, पृ १५१-५८।

[3] सुराकरं भार्गवस्य शापभयात संप्रेक्ष्य भूर्भारमिवाननम्रम्
तद्विस्मयात्येव सरोजिनीनां स्मितोन्मुखं पंकज मन्तमासीत ।।५६
ज्ञात्वा विपादुद्भुतमुत्पतन्तुरिति तेजस्विनीम्यस्य समस्त बंधु
प्राणेश्वर: पंकजिनीवधूनां पूर्वाचलं पूर्वमिवावरोह ।।५७
जगाम यांकेषु रवीयमाम्या परस्परात्मिन दिगन्तम्
सा बन्धिका भानुपंककान्ति प्रीतांशुमालाधनके मयस्व ।।५८

तथा हारित कौन थे यह उक्त ताम्रपत्रमें उल्लिखित नहीं किन्तु पश्चिमी सोलंकी राजा जयसिंह द्वितीय (वि० सं० १०८२=सन् १०२५)के एक उत्कीर्ण लेखमें उनका इतिहास दिया हुआ है। इसमें कहा गया है कि ब्रह्मासे मनु और मनुसे मानव्यका आविर्भाव हुआ। मानव्यके वंशज ही मानव्य गोत्रिय कहलाये। मानव्यका पुत्र हारित था और उसका पुत्र पंचशिखी हारित हुआ। इसका पुत्र चालुक्य हुआ जिसका वंश चालुक्य (सोलंकी) वंशके नामसे प्रसिद्ध हुआ।[1]

राजा पुरुषोत्तम[2] (वि० सं० १३१० १३७५=सन् १२७१ १३१८) के जो उत्कीर्ण लेखोंमें लिखा है कि सोलंकी राजा चन्द्रवंशी थे। सोलंकी राजराजाके ताम्रपत्रमें जहां उसके राज्यारोहणका वर्णन है (वि० सं० १०७९=सन् १ २२) वहां लिखा है कि "यह सोमवंश तिलक" है। कलिंगत्तुप्परानी एक तामिल काव्यमें सोलंकी राजा कुलोत्तुंग चोड़देव प्रथमका ऐतिहासिक वर्णन है, उसमें लिखा है कि उसका जन्म चन्द्रवंशमें हुआ था।[3] और चोड़देवके ताम्रपत्रमें (वि० सं० ११४७=सन् १०९०) उसके पितामह राजराजको सोमकुलभूषण[4] कहा गया है। अभिप्राय यह कि वह चन्द्रवंशी राजा था। सोलंकी राजा कुलोत्तुंग चोड़देवके सामन्त बुद्धराजके ताम्रपत्र (वि० सं० १२२८=सन् ११७१)में चोड़देवके प्रख्यात प्रपितामह कुब्ज विष्णु (कुब्ज विष्णु वर्धन)को चन्द्रवंशी कहा गया है।[5]

---

[1](i) कर्नाटक इन्सक्रिप्शन्स : खंड १, पृ० ४८।
(ii) बाम्बे गजेटियर खंड १, भाग २, पृ० ११६।
[2]गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : सोलंकी राजाओंका इतिहास, पृ० ७।
[3]इंडि० ऐंटी० खंड १८, पृ० ११८।
[4]इंडि० ऐंटी० खंड ६, पृ० ५४।
[5]इंडि० ऐंटी० खंड ७ पृ० १६६।

हेमचन्द्रका अभिमत

शिलालेखों ताम्रपत्रों तथा दानपत्रोंके इन प्रमाणोंके अतिरिक्त समकालीन ऐसे प्रमाण हैं जिनसे बिना किसी सन्देहके कहा जा सकता है कि सोलंकी राजा चन्द्रवंशी थे। यह पुष्ट प्रमाण हेमचन्द्रका है। अपने द्वयाश्रय काव्यमें उसने सोलंकी राजा भीमदेव तथा चेदि नरेश कर्णदेवके दूतोंका मिलन कराया है। बातचीत प्रसंगमें राजा भीमदेवके दूतने पूछा कि महाराज भीमदेव जानना चाहते हैं कि आप (चेदि नरेश कर्णदेव) मेरे मित्र हैं अथवा शत्रु। इस प्रश्नके उत्तरमें चेदिराज कर्णदेवने कहा कि राजा भीमदेव अविजय सोम (चन्द्र) वंशके हैं।[1] जिन हर्षगणीके वस्तुपाल चरित्र (वि० सं० १४९७—सन् १४४०)मे सोलंकीराज भीमदेव चन्द्र वंशका भूषण कहा गया है।[2]

इस प्रकार पृथ्वीराजरासोमें वर्णित चौलुक्योंकी उत्पत्तिकी अग्निकुल कथा आधुनिक ऐतिहासिक विश्लेषणके द्वारा अतिरंजित वर्णन तथा प्रशस्तिमात्र स्वीकार की जाती है। गुजरातके इतिहासके कुछ विशेषज्ञ तो अग्निकुल उत्पत्तिकी कथाको किसी प्रकार स्वीकार ही नहीं करते। उनको तो रासोकी ऐतिहासिकतापर भी सन्देह है।[3] उत्पत्तिकी "चुलुक कथा"के सम्बन्धमें यह कहा जाता है कि संस्कृत व्याकरणके अनुसार "चौलुक्य" शब्द "चुलुक्य"से बना है और इस कारण प्राचीन लेखकोंने बहुतसे "चुलुक"से "चौलुक्य"की उत्पत्तिकी कल्पना सहज ही कर ली होगी। इस विवादास्पद प्रश्नका निर्णय करनेमें सहायक उत्कीर्ण लेखों तथा ताम्रपत्रोंके प्रमाण मिलते हैं, यह स्वीकार करना समीचीन होगा कि चौलुक्य प्राचीन कालसे चन्द्रवंशी क्षत्रिय थे।

---

[1] द्वयाश्रय काव्य : सर्ग ९, श्लोक ४०-५१।

[2] हर्षगणी कृत वस्तुपाल चरित्र ९७१।

[3] गौरीशंकर हीराचन्द ओझा सोलंकी राजाओंका इतिहास पृ० १२।

चौलुक्य वंशका मूलस्थान

चौलुक्य वंशके मूलस्थानके विषयमें लोगोंमें बहुत मतभेद है। कुछ विद्वान् इनका मूलस्थान उत्तरभारत बताते हैं तो कुछ इस मतके हैं कि ये दक्षिणसे आये। श्री टाडका कथन है कि भाटों तथा परम्परासे राजदरबारमें विरुदावली गानेवाले कवियोंकी रचनाओंमें सोलंकियों-को गंगा तटके सूरुके प्रसिद्ध राजकुमारके रूपमें चित्रित किया गया है। यह उस समयकी बात है जब राठौरोंने कन्नौजपर अधिकार नहीं किया था। वंशावली सूचीमें लाकोट जो आधुनिक लाहौर है, उनका स्थान कहा गया है। इसमें ये उसी शाखा (माध्यनी)के कहे गये हैं जो चौहानोंकी शाखा थी। इतना निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि आठवीं सदीमें लंबहस तथा टोगरा मुल्तान और उसके निकटवर्ती प्रदेशमें रहते थे। ये भट्टियोंके शत्रु थे। ये मालाबार तटपर कैल्यान (कल्याण)के राजकुमार[2] थे जिस नगरमें आज भी प्राचीन गौरवके चिह्न विद्यमान हैं। यहीं कैल्यन (कल्याण)से सोलंकी वंशका एक वृक्ष अनहिलवाड़ा पुत्तन (पाटन)के चौलुक्य राजवंशमें पनपा। विक्रम संवत् ९८७ (९३१ ई०)में चौलुक्य वंशके अन्तिम राजा विजयराज तथा स्त्रियोंको उत्तराधिकारसे वंचित रखनेके अधिनियम इन दोनोंकी अवमानना हुई। इसी समय युवक सोलंकी मूलराज

---

[1]टाड : राजस्थान खंड १ भाग ७, पृ० १०४।

सोलंकी गोत्राचार इस प्रकार है—"माध्यन्दि शाखा-भारद्वाज गोत्र गुरुस लोकोस नेकस-सरस्वती (नदी) सामवेद कपिलेश्वरदेव कर्दुमल रिक्षेश्वर तीन प्रवर जेनार संजवेको-"सैपाल पुत्र"—टाड राजस्थान पृष्ठ १०४।

[2]बम्बईके निकट, कल्याण युद्ध रूप।

के सम्मुख सुदृढ़ चौलुक्य साम्राज्य स्थापित करनेके लिए मार्ग प्रशस्त हुआ।[1]

इस सम्बन्धमें श्री सी० वी० वैद्य का कथन है कि "इस प्रश्नके विषयमें सबसे पहले यह ध्यानमें रखना होगा कि यह 'चौलुक्य' तथा दक्षिणका "चालुक्य" परिवार एक ही नहीं है अपितु पृथक्-पृथक है। यद्यपि इन दोनोंमें साम्य है तथा प्राचीन कवियों तथा कथाकारोंने इन्हें एकही माना है। गोत्रकी भिन्नतासे ही परिवारकी पृथकताका परिचय मिलता है। छठी शताब्दीमें दक्षिणके चालुक्योंने अपना गोत्र मानव्य अंकित कराया है। चौलाया तथा अन्य स्थानोंके चौलुक्य इसी वंश तथा विवरणके हैं। दुर्भाग्यसे गुजरातके चौलुक्योंने अपने विवरणोंमें अपने गोत्र नहीं दिये हैं। फिर भी हम निश्चित रूपसे कह सकते हैं जैसा कि १०वीं शतीके एक वैदि विवरणमें दिया गया है कि उनका गोत्र भारद्वाज था।[2] पृथ्वीराजरासोमें चंदने भी चौलुक्योंका यही गोत्र कहा है। रीवा तथा गुजरातके सोलंकी अब तक अपनेको इसी गोत्रका बताते हैं और इस प्रकार बिना सन्देह हमें भी यह निश्चय मानना चाहिए कि उनका गोत्र सदा भारद्वाज ही रहा है।

वंशका संस्थापक मूलराज

श्री एच० सी० रेका कथन है कि ७२०-९९६ ईस्वीमें कन्नौज जो चावड़ाके नामसे अधिक प्रसिद्ध थे पांचसारमें शासन कर रहे थे। वहांके

---

[1]यह जयसिंह सोलंकीका पुत्र था तथा कैम्पिलका प्रसिद्ध राजकुमार था। इसने ओगराजकी पुत्रीसे विवाह किया था। यह विवरण एक बिना छोर्वरकी अपूर्ण भौगोलिक एवं ऐतिहासिक पुस्तकसे लिया गया है जो अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। टाड : राजस्थान खण्ड १ पृ० १०१।

[2]सी० वी० वैद्य : मध्यकालीन भारत खण्ड ३, अध्याय ७ पृ० १९५।

[3]इंडि० एंटी० : खंड १, पृ० ९५३।

[4]एच० एम० एच० आई०, खंड १ अध्याय ७ पृ० ९९५ ६।

अन्तिम सामन्तसिंह उर्फ भुवडके राज्यकालमें कन्नौजके कल्याणकटकके शासक भुवनादित्यके तीन पुत्र राजी बीजा तथा दंडक भिक्षुकका वेष धारणकर सोमनाथकी तीर्थ यात्रा करने निकले। लौटते समय वे सामन्तसिंह द्वारा आयोजित एक अश्वदमनके समारोहमें उपस्थित हुए। राजीने एक संचालन सम्बन्धी कलाकी कुछ ऐसी आलोचना की जिससे सामन्तसिंह प्रसन्न हो गया। इतना ही नहीं उसने राजीको किसी राजवंशका समझकर उससे अपनी बहन लीलादेवीका विवाह कर दिया। संयोगसे लीलादेवी गर्भवती ही मर गयी। उसका गर्भस्थ शिशु शस्त्रोपचारके उपरान्त निकाला गया। यह शस्त्रोपचार उस समय हुआ जब मूलग्रह था। यही शिशु मूलराज था। वह योग्य तथा शक्तिशाली राजकुमार निकला। इसने अपने मामाकी हत्या कर *राज्यसिंहासन हस्तगत कर लिया।*[1]

इस कथासे सत्य तथा कल्पनाको पृथक करना कठिन है लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि इसमें कुछ तथ्य अवश्य है। ६१७ ईस्वीके चालुक्य पुलकेशी अवनीजनाश्रयके नौसेरी दानपत्रसे यह बात भलीप्रकार प्रमाणित हो जाती है कि आठवीं शताब्दीके पूर्वार्धमें चावड़ा वंश गुजरातमें राज्य कर रहा था।[2] इससे यह भी पता चलता है कि ७३९ ईस्वीके कुछ पहले अरबों (ताजिकों)की सेनाने सैन्धव कच्छेला सौराष्ट्र चावोटक मौर्यों को पराजित एवं पददलित किया था। मौर्य तथा गुर्जरनरेश नागभटादि (लाटप्रदेशमें)के सुदूर दक्षिण क्षेत्र तक पहुँचे थे। महिपालके हड्डाला दानपत्रसे स्पष्ट है कि चैपस लोग पूर्वी काठियावाड़ तथा मध्य गुजरातमें ९१४ ईस्वी तक शासनाधिकारी रहे। पूना दानपत्रसे विदित होता है

---

[1](i) बी० जी० खंड १ भाग १, पृ० १५६-५७, (ii) कुमारपाल चरित निर्णयसागर प्रेस बम्बई १९२६ (१ १५), (iii) ए० ए०के० खंड ९, पृ० २६२।

[2]बाम्बे गजेटियर : खंड १ भाग २, पृ० १८७-८८ तथा ३७१।

कि ८१३ ई० तथा बादमें भी कन्नौजके शासकोंके चौलुक्य राज्याधिकारी गुजरातमें शासन कर रहे थे। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि इन्हीं अधीनस्थ शासकोंमें जिसका सम्बन्ध कल्याणीके चौलुक्योंसे रहा होगा कन्नौजके प्रतिहारोंसे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर पाटनके छोटे चावड़ा राज्यवंशको उखाड़ फेंकनेमें समर्थ एवं सफल हुआ हो। इसप्रकार कल्याणके एक राजकुमारकी राज्यपरम्पराका कन्नौजमें प्रारम्भ हुआ। यह निश्चित बात जैसा भी घटित न होता कि दसवी सदीके पूर्वार्धमें कन्नौज प्रान्तमें कल्याण नामक नगरका अस्तित्व था और वहांका शासन भी चौलुक्य राजवंशके अधीन था। इन अनुमानोंका ठीक ठीक महत्त्व चाहे जो हो इस विषयपर मानना उचित ही होगा कि गुजरातके चौलुक्योंका संस्थापक मूलराज चावड़ा राजकुमारीका पुत्र था और उसने अपने मामाको अपदस्थ कर अणहिल्लपाटकका राज्य हस्तगत कर लिया। अधिकांश जैन ऐतिहासिक विविरणोंमें यह स्वीकार किया गया है कि गुजरातका प्रथम चौलुक्य शासक राजीका वंशज था। यह राजी कन्नौजकी राजधानी कल्याणके राजा भुवनादित्य तथा अणहिल्लपाटनके अन्तिम चावड़ राजा अथवा चावड़ा राजाकी बहिन लीलादेवीका पुत्र था।[1]

मेरुतुंगका अभिमत है कि विक्रम संवत् ९९८में राजी अपने दो भाइयोंके साथ देवपरिभ्रमण कर सोमनाथपाटनकी यात्रा करने गया था। यात्रासे लौटते समय अणहिल्लवाड़ाके एक अश्वारोहण समारोहमें वे शामिल हुए। राजीसे एक संचालन कलाकी शालीनता सुनकर वहांका राजा सामन्तसिंह अत्यधिक प्रसन्न हुआ। राजीके वंशका विवरण जानकर उसने अपनी

---

[1] डी० एच० एन० आई० : खंड १। बादके विवरण पत्रोंमें "अणहिल्लपाटक", अणहिलवाड़ा या अणहिलपुरके नामसे प्रसिद्ध हुआ। सरस्वती नदीके तटपर अवस्थित आधुनिक पाटन।

[2] फोर्बस् : रासमाला खंड १ पृ० ४९।

बहिन लक्ष्मीदेवीसे उसका विवाह कर दिया। प्रसवके समय लक्ष्मी-देवीकी मृत्यु हो गयी किन्तु शिशु शस्त्रोपचारके पश्चात् जीवित निकाल लिया गया। मूल नक्षत्रमें उसका जन्म हुआ था इसीलिए उसका नाम मूलराज रखा गया। मूलराजकी शिक्षा-दीक्षा उसके मामाके यहाँ हुई तथा उसके मामाने उसे गोद ले लिया। मूलराज बड़ा हुआ तो सामन्त-सिंह जब मासवके आवेगमें रहते तो बार बार इस आशयका कथन व्यक्त करते कि 'मैं तुम्हें राज्यसत्ता सौंपकर पृथक हो जाऊंगा। किन्तु जब सामन्तसिंह गम्भीर मुद्रामें होते थे तो कहते कि राज्यसत्ता छोड़नेकी अभी मेरी इच्छा नहीं। कहते हैं कि यह बात विभिन्न मुद्राओंमें इतनी बार कही गयी कि मूलराज इससे ऊब उठा। एकदिन उसने अपने मामा सामन्त सिंहकी हत्या कर डाली तथा राजसिंहासनपर अधिकार कर लिया।[1]

इतिहासकार फोर्ब्सने यह ऐतिहासिक विवरण कुछ अन्तरके साथ स्वीकार कर लिया है कि मूलराजका पिता कन्नौजका न था बल्कि दक्षिणके कल्याणका था जो स्थान दक्षिणमें महान चालुक्य राजवंशका केन्द्र था।[2] प्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्री एलफिन्स्टनका भी यही मत है।[3] मूलराजकी माता चौड़ राजवंशकी राजकुमारी थी और उसका पिता चौलुक्य था यह सभी प्राप्त सामग्रियोंसे स्पष्ट है। किन्तु यदि मेरुतुंगके ऐतिहासिक तिथिक्रमसे उक्त कहानीकी तुलना की जाय तो उक्त कथाका व्यतिक्रम स्पष्ट हो जायगा। मेरुतुंगका कथन है कि सामन्तसिंह ९९१ विक्रम संवत्‌में राजसिंहासनपर आसीन हुआ और सात वर्षों तक ९९८ विक्रम संवत् तक राज्य करता रहा। उसी समय राजी अणहिलवाड़ेमें ९९८ वि सं०में आया और उसने लीलादेवीसे विवाह किया। लीलादेवीसे उन्हें एक पुत्र

[1]प्रबन्धचिन्तामणि पृ० १५ १६।
[2]रासमाला खंड १ पृ० २४४।
[3]भारतका इतिहास पृ० २४१, छठा संस्करण।

हुआ। उसका पालन पोषण उसके मामाके संरक्षणमें हुआ तथा उसने अपने मामाकी हत्या कर डाली।

अब प्रश्न उठता है कि इन समस्त घटनाओंके लिए बीस वर्षका समय तो चाहिये ही। किन्तु बताया जाता है कि राजी वि० सं० ९९८में पाटन आया तथा मूलराजने अपने मामाको उसी वर्ष अपदस्थ कर दिया। यदि कहा जाय कि राजीका पाटन आगमन पहले होना चाहिये तो भी स्थिति सुस्पष्ट नहीं होगी। इसका कारण यह है कि सामन्तसिंहने केवल सात वर्षों तक शासन किया और उसके राज्यकालमें यह घटना सम्भवतः नहीं हुई। इस प्रकार पाटनमें राजी तथा राजसिंहासनारूढ़ सामन्तसिंहके मिलनकी घटना समयकी कसौटीपर खरी नहीं उतरती। घटनाओंका यह विवरण मेरुतुंगकी पूरी कथाको अपुष्ट जनश्रुति तथा कल्पनाके आधारपर खड़ा सिद्ध करता प्रतीत होता है। चावड़ा तथा चौलुक्य शासकोंके मिलनकी उक्त कहानी इसप्रकार कल्पितसी ही प्रतीत होती है। इस विषयमें द्वयाश्रय काव्यका मौन और भी सन्देहजनक है। यद्यपि यह कहा जाता है कि यह काव्य हेमचन्द्रकी ही अकेले रचना नहीं फिर भी मेरुतुंगके ऐतिहासिक वृत्तसे यह अधिक प्रामाणिक तथा विश्वसनीय है।[1] द्वयाश्रयमें मात्र यही कहा गया है कि मूलराज चौलुक्य था। उसकी शक्ति अपरिमित थी और वह वीर था। मूलराजके दानपत्र अनुसंख्या १में वंशकी उत्पत्तिके विषयमें कोई विशेष विवरण नहीं। यह अत्यन्त संक्षिप्त है फिर भी इससे मेरुतुंगके मतका खंडन हो जाता है। इसमें मूलराजको "अजनको साधवियों (चार्वविकानाम्य)का वंशज बताया है तथा महान राजा राजीके वंशका कहा है। इसमें यह भी कहा गया

---

[1] इंडि० एंटी० १ खंड ६, पृ० १८२।

[2] अणहिलवाड़के चौलुक्योंके एकादश दानपत्र इंडि० एंटी० खंड ६, पृ० १८१।

है कि उसने सारस्वत मंडलपर (सरस्वती नदीसे सिंचित प्रदेश) अपने बाहुबलसे विजय प्राप्त की थी।

चौलुक्य इतिहासपर नया प्रकाश

अब यह स्वीकार किया जा सकता है कि सोमसिंहकी कृपाको पंडितों तथा भाटोंने बाहुबल तथा क्षत्रिय प्राप्त विजयका रूप दे दिया होगा लेकिन मेरुतुंगकी कहानीसे इसका साम्य नहीं होता। उसने राजीको 'महान् राजाओंमें महान्' नहीं स्वीकार किया है।

अनहिलवाड़के चौलुक्य राजवंशके संस्थापकके इतिहासपर कुमारपालके समयके शिलालेख वडनगर प्रशस्तिसे एक नवीन प्रकाश पड़ा है। इसमें चौलुक्य वंशकी उत्पत्तिका इतिहास है। इस शिलालेखमें कहा गया है कि "प्रसिद्ध वीर मूलराज राजाओंके मुकुटका ऐसा बहुमूल्य और बेजोड़ मोती था जिसने अपने वंशकी प्रसिद्धि चतुर्दिक फैलायी " उसने चापका वंशकी राजकुमारीके भाग्यको उसके उच्चशिखरपर पहुंचाया। राज्यलक्ष्मी उसकी दासी थी। वह विद्वत् समूहके आह्लादका विषय था। उसके सम्बन्धी उससे प्रसन्न थे। ब्राह्मण भाट तथा सेवक सभी उसके शौर्यपर मुग्ध थे। उसकी वीरताके कारण सभी लोगोंके राजाओंकी सौभाग्यलक्ष्मी उस समय उसकी असिकम्पमें ही रहनेमें प्रसन्नताका अनुभव करती थी।[1] वंश उत्पत्तिका यह विवरण मूलराजके उस दानपत्रसे बहुत कुछ मिलता जुलता है जिसमें कहा गया है कि उसने अपने बाहुबलसे सरस्वती नदीसे सिंचित प्रदेशपर विजय प्राप्त की। इन प्रमाणोंसे अब यह स्वीकार करनेमें बल मिलता है कि प्रथम चौलुक्यने गुजरातपर

---

[1]वडनगर प्रशस्ति श्लोक २से ६, इपी० इंडि० : खंड १ पृ० २९३ ३०५।

[2]इंडि० एंटी० : खंड ६ पृ० १९२।

विजय प्राप्त की थी न कि जैसा प्रबन्धोंमें कथन है कि उसने अपने नितृ सम्बन्धी अन्तिम चावड़ा राजाके विश्वासघात कर उसकी हत्या की थी।[1]

बडनगर प्रशस्ति तथा मूलराजके दानपत्रके इन ठोस प्रामाणिक आधारोंपर गुजरातके चौलुक्य राजवंशकी उत्पत्तिकी रूपरेखा अंकित करना मुश्किल न होगा। उत्कीर्ण लेखोंमें उक्त वर्णन दानपत्र तथा अन्यत्र सर्वत्र मूलराज को मनहिल्लवाड़का प्रथम चौलुक्य राजा कहा गया है। इससे इस तथ्यका भी स्पष्ट संकेत मिलता है कि मूलराजका पिता चौलुक्य वंशके मूलस्थानका राजा था तथा मूलराजने 'राज्यकी खोजमें' उत्तरी गुजरातपर आक्रमण किया।

अब इस प्रश्नका उठना स्वाभाविक है कि राजीका मूलस्थान तथा राज्य कहां था? गुजरातके इतिहाससे पता चलता है कि विक्रम संवत् ७५२म कन्नौजमें कल्याण कटकमें भूराजा तथा भूवड़ (भूपति)ने जय शेखरको पराजित कर गुजरातको अपने अधीन कर लिया। उसके बाद कर्णादित्य चन्द्रादित्य सोमादित्य तथा भुवनादित्य कल्याणके राज सिंहासनपर आरूढ़ हुए। अन्तिम राजा भुवनादित्य राजीका पिता था। पाश्चात्य इतिहासकार श्री फोर्बस् श्री एलफिनिस्टन तथा अन्य लोगोंने उक्त कल्याणको दक्षिणी चौलुक्योंकी राजधानी माना है। उनका कथन है कि गुजराती उक्त स्थानकी जो अवस्थिति बताते हैं वह भ्रामात्मक है। इन यूरोपीय इतिहासकारोंके तर्कके पक्षमें यह तथ्य सबसे प्रबल है कि दक्षिण स्थित कल्याण आठ सदी पूर्व चौलुक्योंकी राजधानी थी और कन्नौजमें इस नामके कोई प्रसिद्ध नगरका पता नहीं चलता किन्तु लोगकी चौलुक्योंके शासनके मूलप्रदेशोंके निवासियोंका अभिमत जैसा कि डाक्टर बूलरका कथन है उससे भी अधिक प्रबल है।[2]

---

[1] प्रबन्ध चिन्तामणि : पृ १६।

[2] डा० बूलर : ए कन्ट्रीब्यूशन टू दी हिस्ट्री आव गुजरात इंडि० ऐंटी० खंड ६ पृ० १८१।

मूलस्थान उत्तर भारत

अनहिलवाड़के चौलुक्योंका मूलस्थान उत्तरभारत अथवा दक्षिण भारतमें था इस सम्बन्धमें अन्तिम निर्णयके निमित्त निम्नलिखित तथ्योंकी ओर ध्यान देना आवश्यक है—

१ गुजरातके चालुक्य अपनेको चौलुक्य (सोलंकी) कहते हैं और अब इनके वंशका नामकरण चौलुक्य या चालिक्य अथवा चालुक्य हो गया है। इसीलिए इनके आधुनिक वंशधरोंको 'चालके' सम्बोधित किया जाता है। यद्यपि चौलुक्य और चालुक्य एक ही नामके दो रूप हैं तथापि यह बात समझमें नहीं आती कि पाटन राजवंशके संस्थापक यदि वह सीधे कल्याणसे आता जहाँ कि चालुक्य राज करता है तो अपनेको 'चौलुक्किक' क्यों कहा? ठीक इसके विपरीत यदि यह दक्षिणके अपने बन्धुओंसे काफी वर्षों पूर्व विलग हो गया हो और उत्तर भारतमें रहनेवाले परिवारका हो तो यह अन्तर समझ आ सकता है।

२ दक्षिणी चालुक्योंके कुलदेवता विष्णु हैं जबकि उत्तरी चालुक्योंके कुलदेवता शिव रहे हैं।

३ दक्षिणी चालुक्योंका प्रतीक चिह्न शिवका नन्दी है।[1]

४ भूपतिसे राजी तकके चालुक्य नरेशोंकी वंशावली और दक्षिणी चालुक्योंके शिलालेखोंमें उत्कीर्ण वंशावलीमें साम्य नहीं है।

५. चौलुक्य वंशके प्रसिद्ध संस्थापक मूलराज तथा उसके दक्षिणी सम्बन्धियोंमें मैत्री सम्बन्ध न था। मूलराजको सिंहासनारूढ़ होनेके पश्चात् तैलंगानाके तैलप द्वारा बारपके नेतृत्वमें भेजी हुई सेनासे सामना करना पड़ा था।

---

[1] इंडि॰ ऐंटी॰ खंड ६, पृ॰ १८१।

१ मूलराज तथा उसके उत्तराधिकारियोंने गुजरातमें ब्राह्मणोंकी अनेक बस्तियां बसायीं। ये ब्राह्मण आज तक औदीच्य (उत्तरी) के नामसे प्रसिद्ध हैं। उसने इन ब्राह्मणोंको पूर्वी काठियावाड़में सिंहपुर, स्तम्भतीर्थ या कैम्बे तथा अन्य अनेक ग्राम प्रदान किये जो बगस तथा साबरमतीके मध्यमें अवस्थित थे।[1] साधारणतः यह नियम है कि जब कोई राजा नये प्रदेशोंपर विजय प्राप्त करता है तो वह अपने मूलस्थानके निवासियोंको बुलाकर उन्हें वहां बसाता है। इसप्रकार यदि मूलराज दक्षिण भारतका आया होता तो वह तैलंगाना तथा कर्नाटक ब्राह्मणोंकी बस्तियां बसाता। फलस्वरूप औदीच्य (उत्तरी) ब्राह्मणोंके स्थानपर दक्षिणी ब्राह्मणोंका बाहुल्य एवं प्राधान्य रहता। पर ऐसा नहीं है। यदि जैसा कि गुजरातके ऐतिहासिक तिथि क्रम अंकित करनेवाले कहते हैं यह स्वीकार कर लिया जाय कि चौलुक्य उत्तर भारतके न थे तो औदीच्य (उत्तरी) ब्राह्मणोंकी बस्तियाँ बसानेकी बात तत्काल समझमें आ जाती है। यह तथ्य इतना युक्तियुक्त और न्यायसंगत है कि इससे गुजरातियोंके ऐतिहासिक विवरणको प्रबल समर्थन प्राप्त होता है कि चौलुक्य उत्तरी भारतके ही थे और वे दक्षिण भारतसे नहीं आये थे।

अब प्रश्न आता है—कन्नौजमें चौलुक्य राज्य तथा एक दूसरे राज्यके अस्तित्वका। यह कोई असम्भव नहीं। आठवीं सदीमें यशोवर्मनके बादसे दसवीं शताब्दीके मध्य तक अर्थात् राठौर आय कन्नौजका इतिहास अन्धकारमय है। कन्नौजके इतिहासका यह अन्धकार युग लगभग उसी कालका है जिसमें भूपति तथा उसके उत्तराधिकारी हुए थे। भूपति सन् ई॰ ९१५ में शासन कर रहा था तथा सन् ९४१-४२में राज्यसिंहासनपर आसीन हुआ। फिर यह भी बात है कि उनके पूर्वज उत्तरसे आये और उन्होंने अयोध्या तथा अन्य नगरोंपर शासन किया था।[2] यह बात भी

[1] फोर्बस् : रासमाला खंड १ पृ॰ ६५।

[2] इंडि॰ ऐंटी॰ : खंड १४ पृ॰ ५०-५५।

वंशका राजा मूलराज शासन करता था। उसके बाद उसके उत्तराधिकारी क्रमशः इस प्रकार हुए—चामुंडराज वल्लभराज दुर्लभराज, भीमराज कर्णदेव तथा जयसिंहदेव। जयसिंहदेवका उत्तराधिकारी कुमारपाल हुआ जो भीमराजका प्रपौत्र था। भीमराजको क्षेमराज नामक पुत्र था। क्षेमराजका पुत्र देवप्रसाद था। इसी देवप्रसादका पुत्र त्रिभुवनपाल था जो कुमारपालका पिता था।[1]

इन ग्रन्थोंमें उल्लिखित विवरणोंके अतिरिक्त चौलुक्योंकी वंशावलीका प्रामाणिक विवरण अन्य सूत्रोंसे भी मिलता है। ये हैं गुजरातके चौलुक्य नरेशोंके सात ताम्रपत्र[2] जिनमें चौलुक्य राजवंशकी सम्पूर्ण वंशावली दी हुई है—

१ मूलराज प्रथम
२ चामुंडराज
३ वल्लभराज
४ दुर्लभराज
५ भीमदेव प्रथम
६ कर्णदेव त्रैलोक्यमल्ल
७ जयसिंहदेव
८ कुमारपालदेव
९ अजयपाल महामाहेश्वर
१ मूलराज द्वितीय
११ भीमदेव
१२ जयसिंह
१३ त्रिभुवनपालदेव

---

[1] कुमारपालप्रतिबोध पृ० ४-५।
[2] इंडि० एंटी० खंड ६, पृ० १८१ तथा मूल ताम्रपत्र।

वंशावली सम्बन्धी इन ताम्रपत्रोंका विश्लेषण करनेपर यह स्पष्ट है कि थोड़े बहुत अन्तरके अतिरिक्त सभीमें साम्य है। इसप्रकार दानपत्र ४ तथा ५में जो अत्यल्प अन्तर है वह नगण्य है। ५वें दानपत्रका प्रथम पत्र उन्हीं राजाओंका उल्लेख करता है जिनका विवरण दानपत्रकी ४ क्रमसंख्याके सातवें पत्रमें मिलता है। इन दोनोंमें ही जयसिंहका नामोल्लेख नहीं हुआ है। छठवें दानपत्रके प्रथम पत्रकी वंशावली तथा विक्रम संवत् १२८१के ५वें दानपत्रमें उल्लिखित वंशवृक्षमें जयसिंहके विवरणके अतिरिक्त कोई अन्तर नहीं। दानपत्र ७ १ तथा वि सं० १२८३के ५वें दानपत्रम वि० सं० १२६१के ३रे दानपत्रके अनुसार जयसिंह तथा मूलराज द्वितीयका विवरण है। दानपत्र ८ १की वंशावली तथा वि सं० १२८८के ७वें दानपत्रमें भी साम्य है। कुछ अन्तर है तो इतना ही कि एकमें मूलराज द्वितीयकी तुलना म्लेच्छोंके अन्धकारसे व्याप्त संसारम प्रकाश फैलानेवाले प्रात रविसे की गयी है। दानपत्र ९ १की वंशावलीका क्रम वि० सं १२९५ के ८वें दानपत्रसे प्राय मिलता जुलता है। अन्तर एकमें केवल यह है कि चौलुक्य वंशके प्रथम राजा मूलराजको महामाहेश्वरकी उपाधि दी गयी है। इसीप्रकार दानपत्र संख्या १० १की वंशावली तथा वि सं० १२९६के दानलेखमें वंशके ग्यारह राजाओंकी नामावलीमें साम्य है। प्रथममें त्रिभुवनपालदेवका नाम नहीं है।

कुमारपालके समयकी वडनगर प्रशस्ति तथा मांची शिलालेखोंमें चौलुक्य राजाओंकी वंशावली कुमारपाल तक दी हुई है। वडनगर प्रशस्तिमें मूलराजके चौलुक्य राजाओंका क्रम इस प्रकार है—१ मूलराज २ उसका पुत्र चामुंडराज ३ उसका पुत्र वल्लभराज ४ उसका भाई दुर्लभराज ५ भीमदेव ६ उसका पुत्र कर्ण ७ उसका पुत्र जयसिंह सिद्धराज और ८ कुमारपाल। मांची शिलालेखमें चौलुक्य राजाओंकी यही वंशावली कुमारपाल तक अंकित है। अन्तर केवल इतना है कि इसमें वल्लभराजका नामोल्लेख नहीं हुआ है।

वंशावली सम्बन्धी इन समस्त सामग्रियोंपर विचार तथा विश्लेषणके अनन्तर चौलुक्य राजाओंका वंशवृक्ष निम्नलिखित प्रकार स्थापित करना उचित होगा—

१ मूलराज प्रथम नरेश राजीका पुत्र
 |
२ चामुण्डराज
 |
३ वल्लभराज — ४ दुर्लभराज — नागदेव
 |
(नागदेव) → ५. भीमदेव
 |
६ कर्ण — हरिपाल
 |
७. जयसिंह सिद्धराज (कर्णका पुत्र) — त्रिभुवनपाल (हरिपालका पुत्र)
 |
८ कुमारपाल — महीपाल (त्रिभुवनपालके पुत्र)
 |
९ अजयपाल (महीपालका पुत्र)
 |
१० मूलराज द्वितीय — ११ भीमदेव द्वितीय
 |
१२ त्रिभुवनपाल (भीमदेव द्वितीयका पुत्र)

तिथिक्रम

मेरुतुंगकी थेरावलीसे विदित होता है कि विक्रम संवत् ९९८में चौलुक्य श्रीमूलराजने उत्तराधिकार प्राप्त किया तथा ५५ वर्षों तक

शासन किया। उसके पश्चात् विक्रम संवत् १०५२में उसका पुत्र वल्लभराज शासनारूढ़ हुआ और १४ वर्षों तक राज्य करता रहा। वि० सं० १०६६में उसका भाई दुर्लभ उत्तराधिकारी हुआ और वह १२ वर्षों पर्यन्त शासन करता रहा। वि० सं० १०७८में उसके भाई नागदेवके पुत्र भीमदेवने उत्तराधिकार प्राप्त किया तथा ४२ वर्षों तक सुदीर्घ शासन किया। वि० सं० ११२०में उसका पुत्र श्रीकर्णदेव राजगद्दीपर बैठा और ३० वर्षों तक शासनारूढ़ रहा। मेरुतुंगका कथन है कि वि० सं० ११३० कार्तिक शुद्ध तृतीयासे तीन दिन तक पादुका राज्य था। उसी वर्ष मार्गशीर्ष शुद्ध ४को त्रिभुवनपालका पुत्र कुमारपाल राज्याधिकारी हुआ तथा वि० सं० १२२९ पौष शुद्ध द्वादशी तक शासन करता रहा। कुमारपालने ३० वर्ष १ मास तथा ७ दिनोंकी अवधिपर्यन्त राज्य किया। कुमारपालके बाद उसी दिन उसके भाई महिपालका पुत्र अजयपाल राज्यगद्दीपर बैठा। ३ वर्ष २ मासके पश्चात् विक्रम संवत् १२३२ फाल्गुन शुद्ध द्वादशीको लघु मूलराज (मूलराज द्वितीय) राजगद्दीपर बैठा। वि० सं० १२३४की चैत्र सुदी २ तक १ मास तथा २ दिनों तक उसने शासन किया। इसी दिन भीमदेव द्वितीय शासनारूढ़ हुआ।

विभिन्न ऐतिहासिक सूत्रोंसे जो प्रामाणिक विवरण प्राप्त हुए हैं उनके आधारपर चौलुक्य राजाओंका तिथिक्रम इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

राजाओंका नाम	प्रबन्ध चिन्तामणि	कुमारपाल प्रबन्ध	पट्टावलि	शासनावधि[1]
मूलराज	५५ वर्ष	५५ वर्ष	५५ वर्ष	सन् ९४१-९९६
चामुंडराज	१३ वर्ष	१३ वर्ष	१३ वर्ष	सन् ९९७-१००९

---

[1] इंडि० ऐंटी० खंड ६ इपि० इंडि० : खंड ८ इसमें डाक्टर बूलर तथा अन्य विद्वान इससे सहमत हैं।

वल्लभराज	६ मास	६ मास	६ मास	सन् १००९
दुर्लभराज	११ वर्ष	११ वर्ष	११ वर्ष	सन् १००९ १०२१
	६ मास	६ मास	६ मास	
भीमदेव	४२[1] वर्ष	४२ वर्ष	४२ वर्ष	सन् १०२१ १०६३
कर्णदेव	अनिश्चित	२९ वर्ष	२९ वर्ष	सन् १०६३ १०९३
जयसिंहदेव	४९ वर्ष	अनिश्चित	४८ वर्ष	सन् १०९३ ११४२
			८ मास	
			१ दिन	
कुमारपाल	३१ वर्ष	३१ वर्ष	३१ वर्ष	सन् ११४२ ११७३
			८ मास	
			२७ दिन	
अजयपाल	३ वर्ष		३ वर्ष	सन् ११७३-११७६
			११ मास	
			२८ दिन	
मूलराज			२ वर्ष	
द्वितीय	२ वर्ष		१ मास	सन् ११७६ ११७८
			२४ दिन	
भीमदेवराज	६३ वर्ष		६२ वर्ष	सन् ११७८ १२४१
			२ मास	
			८ दिन	
पाडुकराज	१ दिन		१ दिन	
त्रिभुवनपाल			२ मास	सन् १२४१ १२४२
			१२ दिन	

[1] एक प्रतिमें ५२ वर्ष दिया है।

कुमारपालके पारिवारिक सम्बन्धी

कुमारपालप्रतिबोधके अनुसार कुमारपाल भीमराजप्रथमके पौत्रका पौत्र था। भीमदेवको क्षेमराज नामक पुत्र था और उसका पुत्र देवपाल था। देवपालका पुत्र त्रिभुवनपाल था। इसी त्रिभुवनपालका पुत्र कुमारपाल[1] था। मेरुतुङ्गका कथन है कि भीमदेवने बकुलादेवीको अपने रनिवासमें रखा था और उसीसे क्षेमराज उत्पन्न हुआ। उसकी दूसरी रानी उदयमतिसे कर्ण नामका पुत्र हुआ। कर्णदेवने मीनलदेवीसे विवाह किया और उसीसे जयसिंह हुए। क्षेमराजके पुत्रका नाम देवपाल[2] था और उसके पुत्रका नाम त्रिभुवनपाल था। त्रिभुवनपालने काश्मीरादेवीसे विवाह किया। इसके तीन पुत्र तथा दो पुत्रियां हुईं। तीनों पुत्रोंके नाम थे—(१) महिपाल (२) कीर्तिपाल तथा (३) कुमारपाल और पुत्रियोंके नाम क्रमशः प्रेमलदेवी तथा देवलदेवी थे। तत्कालीन द्व्याश्रय काव्यमें क्षेमराज तथा कर्ण भीमदेवके दो पुत्रके रूपमें अंकित हैं। इसमें यह भी लिखा है कि क्षेमराजका पुत्र देवप्रसाद हुआ। प्रबन्ध चिन्तामणि[3]में लिखा है कि भीमदेवके एक पुत्रका नाम हरिपाल था और त्रिभुवनपाल उसीका पुत्र था। कुमारपालका पिता यही त्रिभुवनपाल था। कुछ स्थानोंमें भीमका पुत्र क्षेमराज उसका पुत्र हरिपाल हरिपालका पुत्र त्रिभुवनपाल और त्रिभुवनपालका पुत्र कुमारपाल ऐसा भी क्रम मिलता है।

---

[1] कुमारपालप्रतिबोध पृ ५-६।

[2] मेरुतुंगकी थेरावलीमें देवप्रसादके स्थानपर "देवराट" लिखा है।—जर्नल आव बंगाल रायल एशियाटिक सोसायटी खंड ९ पृ० १५५।

[3] प्रबन्ध चिन्तामणि, पृ० ११६।

बाम्बे गजेटियर: खंड १, उपखंड १, पृ० १८१।

उपर्युक्त विवेचनके आधारपर कुमारपालके पारिवारिक सम्बन्धियों-का क्रम इसप्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

रानी बकुलादेवी=भीमदेव=उदयमति रानी
|
क्षेमराज
|
देवपाल या देवप्रसाद अथवा हरिपाल
|
त्रिभुवनपाल=काश्मीरादेवी
|
महिपाल | कीर्तिपाल | कुमारपाल | प्रेमलदेवी | देवलदेवी

वंशावली तथा उक्त पारिवारिक सम्बन्ध सूत्रसे विदित होता है कि कुमारपालका पिता त्रिभुवनपाल था उसकी माता थी काश्मीरादेवी। कुमारपालको महिपाल तथा कीर्तिपाल नामके दो भाई थे और दो बहिनें भी थीं जिनके नाम क्रमशः प्रेमलदेवी तथा देवलदेवी थे।

प्रारम्भिक जीवन
और
शिक्षा-दीक्षा

विगत अध्यायमें हमें विदित हो चुका है कि कुमारपालका पिता त्रिभुवनपाल था और उसकी माताका नाम काश्मीरादेवी था। कुमारपाल का जन्म विक्रम संवत् ११४९ अथवा सन् १०९२ ईस्वीमें हुआ था। कहा जाता है कि विक्रम संवत् ११९९ अथवा सन् ११४२ ईस्वीमें जब वह राजगद्दीपर आसीन हुआ तो उसकी अवस्था पचास वर्षकी थी।[1] इस गणनाके अनुसार भी कुमारपालके जन्मकी उक्त तिथि ही निश्चित प्रतीत होती है। कहा जाता है[2] कि कुमारपालके प्रपितामह क्षेमराजने जो भीमदेव प्रथमका पुत्र था स्वेच्छासे राज्यगद्दीका त्याग कर दिया था।[3] किन्तु दूसरे मूलक आधारपर यह भी पता चलता है कि उस उत्तराधिकारसे इसलिए वंचित कर दिया था कि भीमदेवने चकुलादेवी या बकुला देवी नामकी नर्तकीको अपने रनिवासमें रख लिया था। प्रबन्ध चिन्तामणि के रचयिताका कथन है कि अणहिलपुरके राजा भीमदेवने चकुलादेवीको जो यद्यपि क्षत्रिय नहीं थी अपितु कुलीन नर्तकी थी उसकी चारित्रिक दृढ़ता तथा भक्तिके कारण अपने अन्तःपुरमें स्थान दिया था। क्षेमराजके पुत्र देवप्रसाद तथा भीमदेवके पुत्र कर्णदेवमें अत्यन्त घनिष्ठ मैत्री थी। कहा

---

[1] प्रबन्धचिन्तामणि : प्रकाश ६, पृ० ९५।

[2] वही पुरातन प्रबन्ध संग्रह परिशिष्ट १, पृ० १३१। "संतापतस्य अहीन कुरियात बाल्लिताम्ब पुत्रीला चकुलादेवी वेश्या श्री भीमेशा"।

[3] के० एम० मुन्शी : पाटनका प्रभुत्व खंड १ पृ० ४२।

कौशीगर[1] तथा ज्योतिषियोंने कह दिया था कि उसे पुत्र न होगा और कुमारपाल ही उसका उत्तराधिकारी होगा किन्तु यह बात जयसिंहको तनिक अच्छी न लगती। वह कुमारपालसे अत्यधिक घृणा करने लगा और इस बातके लिए भी प्रयत्नशील हुआ कि कुमारपालकी हत्या कर डाले।[2] मेरुतुंगके कथनानुसार जयसिंहकी यह घृणा कुमारपालके नर्तकी बकुलादेवीका वंशज होनेके कारण थी। जिनमण्डनके विवरणके अनुसार जयसिंह सिद्धराज उक्त कार्यके लिए इस आशासे भी प्रयत्नशील था कि यदि उसकी हत्या हो जाती है तो भगवान शिव उसे एक पुत्ररत्नका वर दे सकते हैं। कुमारपालचरित्रके अनुसार तो यहाँ तक पता लगता है कि सिद्धराजने कुमारपालके सहित त्रिभुवनपालके समस्त परिवारकी हत्या कर देनेकी भी योजना बनायी थी। त्रिभुवनपालकी हत्या हुई किन्तु कुमारपाल बच निकला। सिद्धराजकी कृपासे क्लेशित तथा अपने बहनोई कृष्णदेवके परामर्शानुसार उसने परिवार छोड़ दिया और अज्ञातवास करने लगा।

कुमारपालका अज्ञातवास

प्रबन्ध चिन्तामणिके रचयिताने लिखा है कि कुमारपाल अनेक वर्षों तक साधुके वेषमें विभिन्न स्थानोंमें घूमता रहा। संयोगवश एक बार वह पाटन (अनहिलपुर)के एक मठमें आकर रहा। जिस दिन वह पाटन आया सिद्धराजके पिता कर्णदेवका वार्षिक श्राद्ध था। उसीदिन सिद्धराजने नगरके सभी सन्यासियोंको निमन्त्रण दिया था।[3] कुमारपालको

---

[1] अणहिलवाड़ा राजधानीका प्रसिद्ध जैनमन्दिर : बाम्बे गजेटियर।

[2] प्रभावकचरित्र अध्याय २२, पृ० १९५-१९६ तथा प्रबन्ध चिन्तामणि प्रकाश "[illegible] नृपो भविष्यति सिद्धनृपो [illegible] सहिष्णुतया [illegible]"

[3] प्रबन्ध चिन्तामणि : प्रकाश ४, पृ० ७७।

भी सभी सन्यासियोंके साथ उपस्थित होना पड़ा। सिद्धराज जयसिंह सभी सन्यासियोंके समूहका एक-एक कर यथाशक्तिके साथ चरण धो रहे थे। साधुवेषमें कुमारपालका जब वे चरण धोने लगे तो उनकी कोमलता तथा उसपर अंकित राजत्वके विशेष चिह्नोंको देखकर आश्चर्यचकित रह गये। सिद्धराजकी मुखमुद्रापर इस घटनाके परिणामस्वरूप हुए परिवर्तनको कुमारपालने सावधानीसे देख लिया तथा तत्काल ही वहासे भाग निकला। सिद्धराजके सैनिकोने जब उसका पीछा किया तो वह पहले कुम्हारके घरमें जा छिपा और फिर एक किसानके खतकी कंटीली झाड़ियोंमें छिप गया। इसप्रकार उसने सैनिकोंसे पीछा छुड़ाया।

पलायनके समय जब वह एक वृक्षके नीचे विश्राम कर रहा था उसने देखा कि एक चूहा एक छिद्रसे एक एक कर इक्कीस रजत मुद्राए ला रहा है। बादमें चूहा जब उन रजत मुद्राओंको फिर ले जाने लगा तो कुमारपालने उसे एक मुद्रा तो ले जाने दी और शेषको अपने अधिकारमें कर लिया। चूहा जिसमें बाहर आया और अपनी रजत मुद्राओंको न पाकर इतना दुःखित हुआ कि तत्काल वहीं उसके प्राण निकल गये। इस घटनाके कारण कुमारपालको बहुत क्लेश हुआ। एक बार जब वह अज्ञात दिशाकी ओर चला जा रहा था तो उसे एक भद्र महिलासे भेंट हुई जो अपने पिताके घर जा रही थी। महिलाने कुमारपालको भाईके नाते निमन्त्रित कर सुस्वादु भोजन कराया। इसीप्रकार यात्राके पश्चात् यात्रा करता हुआ कुमारपाल खम्भातकी खाड़ीमें स्तम्भतीर्थ जा पहुंचा। यहीं प्रसिद्ध महान् जैनमुनि हेमचन्द्राचार्य उस समय निवास कर रहे थे।[1]

हेमाचार्यसे मिलन

स्तम्भतीर्थमें कुमारपाल मन्त्री उदयनके यहां सहायता मांगने गया।

---

[1] प्रबन्ध चिन्तामणि पृ० ७७ तथा पुरातन प्रबन्ध संग्रह : पृ० १२१।

मार्ग निकला। एक दीन ब्राह्मण बोसरीके साथ वह स्तम्भतीर्थ चला गया। वहाँ जाकर उसने अपने मित्रोंको मन्त्री उदयनके पास सहायताका सन्देश लेकर भेजा। उदयनने राजाके शत्रुको किसी प्रकारकी सहायता देना स्वीकार नहीं किया। रात्रिमें कुमारपाल बहुत भूखा पीड़ित हुआ। वह रातमें ही एक जैनमठमें आया। संयोगसे वहीं हेमचन्द्र चातुर्मास्य कर रहे थे। हेमचन्द्रने कुमारपालके विशिष्ट राजचिह्नोंको पहचानकर और यह समझकर कि यही भावी राजा है उसका स्वागत किया।[1] हेमचन्द्रने भविष्यवाणी की कि सातवें वर्ष यह राज्य सिंहासनपर आसीन होगा। हेमचन्द्रकी प्रार्थनासे ही उदयनने कुमारपालकी भोजन वस्त्र तथा धनसे सहायता की।[2] इसके पश्चात् सात वर्षों तक कुमारपाल कापालिकके वेशमें अपनी पत्नी भोपालदेवीके साथ विभिन्न प्रदेशोंमें भ्रमण करता रहा।[3] ११९९ विक्रम संवत्में जयसिंहकी मृत्यु हुई। कुमारपालको जब यह समाचार मिला तो वह सिंहासनपर अधिकार प्राप्त करनेके निमित्त अणहिलपुर वापस लौटा।[4]

कुमारपालका भ्रमण और जिनमंडन

जिनमंडनके "कुमारपालचरित"में कुमारपाल तथा हेमचन्द्रका मिलन बहुत पहले कराया गया है। कुमारपालके अज्ञातवास तथा भ्रमणकी

---

[1] प्रभावक चरित : अध्याय २२, श्लोक ३७६ ३८४।

[2] वही,—'वत्सास्मदुपदेशोऽत्र राजपुत्रस्त्वमीदृशः। अमुना सप्तमे वर्षे पृथ्वीपालो भविष्यति।'

[3] वही पृ० १९०।

वही द्वादशशतेषु वर्षाणां शतेषु विरतेषु च एकोनेषु महीनाथे सिद्धाधीशे दिवंगते।

[4] वही : श्लोक ३९५ ३९७।

कहानी जिनमण्डनने भी थोड़े बहुत अन्तरके साथ उसी प्रकार कही है। उसने लिखा है कि जयसिंहकी दृष्टि कुमारपालके प्रति उस समयसे बदली जब वह उसके दरबारमें अपनी अधीनता प्रकट करने गया था। जयसिंहके दरबारमें उसने हेमचन्द्रको देखा। हेमचन्द्रसे मिलनेके लिए वह तत्काल मठमें गया। वहाँ हेमचन्द्रने कुमारपालको उपदेश दिया तथा प्रतिज्ञा करायी कि वह परदाराको बहिन समझेगा।[1]

कुमारपालके पलायनकी जो कथा जिनमण्डनने लिखी है उसमें प्रभावक-चरित तथा प्रबन्धचिन्तामणिमें वर्णित कथाका मिश्रण है। जिनमण्डन तथा मेरुतुंग दोनों ही इसपर एकमत हैं कि पलायन और भ्रमण करते हुए कुमारपालने हेमचन्द्रसे पहले कम्भमें भेंट की। किन्तु कुमारपाल हेमचन्द्र का यह मिलन कम्भके बाहरी द्वारपर स्थित एक मन्दिरमें होता है। यहीं उदयन भी हेमचन्द्रके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करने आता है। उदयनकी उपस्थितिमें कुमारपालके प्रश्न करनेपर कि आगन्तुक कौन है हेमचन्द्रने पूर्वके इतिहासकी चर्चा की है। इसके पश्चात् हेमचन्द्रकी भविष्यवाणी होती है और जिस प्रकार मेरुतुंगने लिखा है उसी प्रकार उदयनके यहाँ कुमारपालका आदर सत्कार होता है। जिनमण्डनने तो यहाँ तक लिखा है कि कुमारपाल बहुत दिनों तक उदयनका अतिथि रहा। जब जयसिंहको कुमारपालके कम्भमें रहनेकी बात ज्ञात हुई तो उसने कुमारपालको पकड़नेके लिए सैनिक भेजे। पीछा करते हुए सैनिकोंसे बचनेके लिए कुमारपाल हेमचन्द्रके मठमें भागा तथा वहाँ पाण्डुलिपिके समूहकी कोठरीमें छिप गया। पलायनकी अन्तिम कथा सम्भवतः प्रभावक-चरितमें वर्णित हेमचन्द्रकी महानता विषयक कहानीकी पुनरावृत्ति है। सम्भवतः जिनमण्डनने यह उचित नहीं समझा कि अणहिलपुरमें हेमचन्द्र-

---

[1] जिनमण्डन : कुमारपाल चरित्र पृ० ४४-५४। यह उपदेश ब्राह्मण साहित्यके अनेक उद्धरणोंसे युक्त है।

कुमारपाल मिलन हो और तत्काल बाद ही कच्छमें। इसीलिए उसने ताड़पत्रोंमें छिपनेके प्रसंगको कच्छकी घटना बताया है। इस घटना प्रसंग को वास्तविकताका रूप देनेके लिए उसने पांडुलिपियोंकी कोठरीका उल्लेख किया है। इसके पश्चात्के भ्रमणोंका विवरण जिनमंडनने बहुत विस्तृत-रूपसे लिखा है। प्रभावकचरित तथा प्रबन्धचिन्तामणिमें इसका उल्लेख नहीं मिलता। निश्चय ही जिनमंडनके इस विस्तृत विवरणोंका स्रोत पृथक रहा है। इस विवरणके अनुसार कुमारपाल वटपद्र (बड़ौदा)की ओर जाता है और तत्पश्चात् क्रमशः भृगुकच्छ (भड़ौच) कोल्हापुर, कल्याण कर्णाट तथा दक्षिणके अन्य नगरोंमें परिभ्रमण करता हुआ पैठान-प्रतिष्ठान होता हुआ अन्तमें मालवा पहुँचता है। जिनमंडनका यह वर्णन रोचक है और ऐसा प्रतीत होता है कि अनेक कुमारपालचरितोंके आधारपर यह प्रस्तुत किया गया है।[1]

मेरुतुंगकी प्रबन्धचिन्तामणि प्रभावकचरित तथा जिनमंडनके कुमार पालमें अज्ञातवास और पलायनकी मिलती जुलती ही कथाएं मिलती हैं। मेरुतुंगका उक्त वर्णन प्रभावकचरितसे प्रायः एकदम साम्य रखता है। इनके वर्णनमें जो कुछ अन्तर है, उनमें एक ध्यान देने योग्य यह है कि मेरुतुंगकी कथामें हेमचन्द्र एक ही बार सामने आते हैं। इसमें न तो अणहिल्लपुरमें ताड़की पांडुलिपियोंमें छिपनेका कथा प्रसंग उसने वर्णित किया है और न कुमारपालके सिंहासनारूढ होनेके पूर्व दूसरी भविष्यवाणीका उल्लेख। कुछ अन्तर सहित उसने हेमचन्द्र तथा कुमार पालके स्तम्भतीर्थमें मिलनकी कथाप्रसंगका ही विवरण दिया है।

मुसलिम इतिहासकी साक्षी

सम-सामयिक देशज इन विवरणोंके अतिरिक्त विदेशी इतिहासकारोंने

---

[1] जिनमंडन : कुमारपाल चरित पृ० ५८-८१। इसमें हेमचन्द्र तथा उदयनके मिलनका भी विवरण है।

भी कुमारपालके पलायनकी घटनाका उल्लेख किया है। इसमें कहा गया है कि कुमारपालको अपने प्रारम्भिक जीवनमें वेश बदलकर जयसिंहकी मृत्यु तक अनेकानेक देशोंका परिभ्रमण करना पड़ा था। अबुल फजलने अपनी आईन-ए-अकबरीमें लिखा है कि कुमारपाल सोलंकीको अपने प्राणके भयसे जयसिंहके मृत्यु पर्यन्त निर्वासनमें रहना पड़ा था।[1]

उपलब्ध विवरणोंका विश्लेषण

वस्तुतः प्राकृत तथा जैनग्रन्थोंमें अत्यधिक विस्तारके साथ कुमारपालके अज्ञातवास पलायन और परिभ्रमणके जो वर्णन मिलते हैं, उनसे यह निश्चित निष्कर्ष निकालना स्वाभाविक है कि कुमारपालका प्रारम्भिक जीवन राजनीतिक था। इस कालमें उसे अनेकानेक संकटों और कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। जैनग्रन्थोंमें कुमारपालके अभ्युदय तथा उसको हेमचन्द्र द्वारा दी गयी सहायताके जो विवरण मिलते हैं, उससे इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि जैनमुनि हेमचन्द्रने कुमारपालको महान् सहायता प्रदान की थी। जिस समय कुमारपाल आश्रयविहीन हो अज्ञातवास तथा असहायावस्थामें इधर-उधर भ्रमण कर रहा था उस समय न केवल हेमचन्द्रने उसकी सहायता की अपितु उसका पथ प्रदर्शन भी किया। वस्तुतः उस समय जैनमुनि श्रीहेमचन्द्रके आदेशसे ही उदयनने राजा सिद्धराज जयसिंह द्वारा शत्रु समझे जानेवाले कुमार पालकी सहायता की। उदयनके यहाँ कुमारपालके लिए न केवल शरण तथा भोजनकी व्यवस्था हुई अपितु उसने कुमारपालको धनादिकी सहायता देकर मालवा भेजा। हेमचन्द्राचार्यने ही भविष्यवाणी की थी कि कुमारपाल गुजरातका भावी राजा होगा तथा सिद्धराज जयसिंहके पश्चात् उसका उत्तराधिकारी और सिंहासनाधिकारी होगा। जिन संकट तथा

---

[1] आईने-अकबरी : खंड २, पृ० २६१।

विषम परिस्थितियोंमें कुमारपाल वेष परिवर्तनकर विभ्रमित भ्रमण कर रहा था उसमें यदि जैनमनि हेमचन्द्रकी प्रेरणा पथप्रदर्शन और सहायता न मिली होती तो सम्भवतः उसके राजनीतिक जीवनकी विकासधारा कुछ और ही होती।

अणहिल्लपुर (पाटन) आगमन

सतत सात वर्षों तक साधु वेषमें अनवरत आपत्तियों और विपत्तियों-का सामना करता हुआ कुमारपाल अपनी पत्नी सहित जब विक्रम संवत् ११९९में मालवामें था तो उसे सिद्धराज जयसिंहके देहान्तका समाचार विदित हुआ।[1] वह तत्काल ही राजगद्दीपर अधिकार करने अणहिल्लपुर लौटा। प्रबन्धचिन्तामणि तथा प्रभावकचरित दोनोंमें ही यह स्पष्ट रूपसे मिलता है कि जब जयसिंह सिद्धराजकी मृत्यु हुई तो यह समाचार पाकर कुमारपाल अणहिल्लपुर वापस आया। सात वर्षों तक निरन्तर देश-देशान्तर तथा राजदरबारोंके भ्रमणसे ज्ञानार्जन और अनुभवोंका संग्रहकर वह अणहिल्लपुर (पाटन) लौटा।[2]

---

[1] प्रभावक चरित : अध्याय २२, श्लोक ३९१ ४००।

[2] वही,—प्रस्थापितो मालवके देशं गतः गुर्जरनाथे सिद्धाधिपे परलोक गतमवगम्य:—प्रबन्धचिन्तामणि प्रकाश ४, पृ० ७८।

शिवाजी
राज्याभिषेक

प्रबन्धचिन्तामणिकार मेरुतुंगने लिखा है कि मालवासे जिस समय कुमारपाल अणहिल्लपुर लौटा तो उस समय रात्रिका समय हो गया था। उस समय वह बहुत ही भूखा था और उसके पासका सारा धन भी व्यय हो गया था। उसने एक मिष्ठान्नगृहसे बड़े मांगकर खाया और तब अपने बहनोई कान्हदेव (कृष्णदेव) के घर गया। कान्हदेव जयसिंह सिद्धराजके मन्त्रियोंमें सर्वप्रमुख था और उसीको जयसिंहने योग्य तथा उपयुक्त शासकको सिंहासनारूढ करनेका कार्यभार सौंपा था।[1] राज्य दरबारमें आकर कान्हदेवने कुमारपालको देखा तो विशिष्ट सम्मानपूर्वक उसका स्वागत किया। फार्बसने इस अवसरका वर्णन करते हुए लिखा है कि जैसे ही कान्हदेवने कुमारपालके आगमनका समाचार सुना वह राजमहलसे बाहर निकल आया और उसने कुमारपालका हार्दिक स्वागत किया और उसे आगेकर स्वयं पीछे चलकर प्रासादके भीतर ले गया।[2]

राजसिंहासनके लिए निर्वाचन

दूसरे दिन प्रातःकाल प्रमुख सेनाके साथ कान्हदेव (कृष्णदेव) कुमारपालको राजमहल ले गया। जयसिंहका उत्तराधिकारी कौन हो

---

[1] प्रबन्ध चिन्तामणि प्रकाश ४, पृ० ७८।

[2] रासमाला अध्याय ११, पृ० १७६।

इसी प्रसंगको हल करता था।[1] जब सभी राजदरबारी और प्रमुख सभामें एकत्र हुए तो पहले जयसिंहको एक युवक सम्बन्धी निर्वाचनके निमित्त गद्दीपर बैठाया गया। लेकिन यह युवक एकदम असावधान व्यक्तिसा प्रतीत होता था। उसने अपने पैरोंको उचित प्रकार वस्त्रसे ढँका तक न था इसलिए साधारण लोकज्ञानके अभावमें उसे राजगद्दीके अयोग्य समझा गया। उक्त पदके लिये एक अन्य व्यक्तिको भी राजसिंहासनपर बैठाया गया किन्तु वह भी मान्य सभासदों और प्रमुखों द्वारा अनुपयुक्त ठहराया गया। जब वह सिंहासनपर बैठा तो बड़ी विनम्रताकी मुद्रामें अपने दोनों हाथोंसे प्रणाम करता दृष्टिगत हुआ इतना ही नहीं जब उससे पूछा गया कि जयसिंह द्वारा छोड़े गये अठारह प्रदेशोंका शासन तुम किसप्रकार करोगे तो उसने उत्तर दिया आप लोगोंके परामर्श और आदेशसे। यह उत्तर जयसिंह सिद्धराजके धीर्यपूर्ण स्वरको सुननेवाले अभ्यस्त प्रधानोंके कानको प्रभावपूर्ण और उचित नहीं लगे। ऐसा विनम्र और प्रभावहीन व्यक्तित्व भला सर्वोच्च राजकीय पदके लिए कैसे मान्य हो सकता था?

कान्हदेवने जिसे ही मुख्यतः योग्य शासकका चुनाव करना था कुमारपालको सभाके सम्मुख उपस्थित किया। कुमारपाल राजकीय गौरवके अनुरूप ज्योंही सिंहासनपर बैठा चारों ओर हर्षध्वनि छा गयी। उससे भी प्रश्न पूछा गया कि वह सिद्धराज द्वारा छोड़े गये राज्योंका शासन किस प्रकार करेगा? इसका उत्तर उसने शब्दोंमें नहीं अपितु पैरोंपर खड़े हो गर्वोंको आरक्त तथा अपनी असिको म्यानसे आधा बाहर निकालकर दिया।[2] राज्यपुरोहितने इसपर तत्काल ही राज्याभिषेक सम्बन्धी विविध संस्कार सम्पन्न किये। कान्हदेवने राजाके सम्मुख आदर तथा

---

[1] प्रबन्ध चिन्तामणि : प्रकाश ४ पृ० ७८।

[2] रासमाला अध्याय ११ पृ० १७१।

भयाका भाव प्रदर्शित किया। राजभवन हर्षध्वनिसे गूंज उठा। गुजरातके बड़े बड़े जागीरदारों तथा भूमिधरोंने कुमारपालके सिंहासनके सम्मुख नतमस्तक होकर अपनी अधीनता व्यक्त की। शंखध्वनि तथा वेदस्वाध्यायके मध्यमें इसप्रकार कुमारपाल जयसिंह सिद्धराजका उत्तराधिकारी निर्वाचित और मान्य हुआ। जब सन् ११४२ ईस्वीमें कुमारपाल सिंहासनारूढ़ हुआ तो उसकी अवस्था पचास वर्षकी थी।[1]

प्रभावकचरितमें कुमारपालके राज्यारोहणकी एक भिन्न कथा वर्णित है। इसमें कहा गया है कि अणहिल्लपुर आनेपर कुमारपाल एक श्रीमत सम्बा (?)से मिला। इस अज्ञात व्यक्तित्वके विषयमें कुछ प्रामाणिक पता नहीं चलता। श्रीमत सम्बा जैनमुनि हेमचन्द्रके पास इस अभिप्राय और आशयसे गया कि कुमारपालम जयसिंहके उत्तराधिकारी होनेके विशिष्ट चिह्न एवं लक्षणादि हैं अथवा नहीं। जैसे ही उसने वहां प्रवेश किया उसने देखा कि कुमारपाल मठके गद्दीदार सिंहासनपर बैठा था। हेमचन्द्रके अनुसार यह चिह्न ही वांछित राजचिह्न था। दूसरे दिन कुमारपाल अपने बहनोई कान्हदेवके साथ जो सामन्त था और जिसके पास दस सहस्र सैनिकोंकी सेना थी राजमहल गया और राज्याधिकारी निर्वाचित किया गया।[2]

कुमारपालप्रतिबोधके रचयिता सोमप्रभाचार्यका मत है कि कुमारपालके समस्त शरीरपर राज्यचिह्न थे। इसलिए दरबारके सरदारोंने ज्योतिषियों तथा ज्योतिष-विज्ञानके विशेषज्ञों सामुद्रिक मौहूर्तिक, शाकुनिक तथा नैमित्तिकोंसे परामर्श कर और राज्यके प्रमुख मन्त्रियोंसे विचार-विमर्श कर कुमारपालको सिंहासनारूढ़ किया। कुमारपालका

---

[1] वही।

[2] आयान् पुरान्तरा श्रीमत्सांबस्य मिलितस्ततः वित्तं गृहीत्वा राज्याप्ति निमित्तान्वेषणायुतः—प्रभावक चरित २२, श्लोक ३९९ ४१७।

यह निर्वाचित सभीको इतना सन्तोषजनक प्रतीत हुआ कि निम्नस्त निर्गुणोंने भी इसे न्यायोचित स्वीकार किया तथा प्रसन्नता प्रकट की।[1]

राज्यारोहणकी तिथि और चुनाव

इसप्रकार सिद्धराज जयसिंहकी मृत्युके पश्चात् यद्यपि कुमारपाल बिना किसी संघर्षके सिंहासनारूढ़ हुआ किन्तु राजगद्दीके लिए एक प्रकार का निर्वाचन संघर्ष तो अवश्य हुआ। यह बहुत सम्भव प्रतीत होता है कि सिद्धराजकी मृत्युके बाद जो स्थिति उत्पन्न हो गयी थी उसमे कुमारपालके बहनोई कान्हदेवने उसके स्वत्वोंकी रक्षाका पूर्ण ध्यान रखा। राजगद्दीके तीन उम्मीदवार थे। कुमारपाल तथा अन्य दो। ये दोनों सम्भवतः उसके भाई महीपाल तथा कीर्तिपाल ही थे।[1] राज्यमन्त्रि-परिषद्के सम्मुख ये दोनों भी कुमारपालके साथ ही कौन शासक चुना जाय इस प्रश्नका निर्णय करनेके लिए उपस्थित किये गये थे। राजसभा और प्रमुखोंके सम्मुख उत्तराधिकारीके चुनावमे ये दोनों ही राज्याधिकारके लिए अयोग्य समझे गये तथा कुमारपाल राजा निर्वाचित हुआ।

हेमचन्द्रके कुमारपालचरितमें भी इस बातका स्पष्ट उल्लेख हुआ है कि कुमारपाल अपने मित्रों तथा राज्यके प्रमुख मन्त्रियोंकी सहायतासे

---

[1] एसो कुमरो रज्जस्स रज्जलक्खण सणाहु सव्वंगो
ता भणिय ठविज्जउ निम्मुणेहिं पच्चतमग्गेहिं ।
एवं परुप्परं मंतिऊण तह निच्छिऊण सव्वत्थं ।
सामुद्दिय जोइसिय-सउणिय नेमित्तिय-नराणं ।
रज्जंमि परिट्ठविओ कुमारवालो महुत्त पुरिसेहिं ।
तत्तो गुरुयमसेसं परितोस-भरं न संजायं ।

कुमारपालप्रतिबोध पृ० ५ ।

[1] रासमाला : अध्याय ११ पृ० १०९ ।

राजसिंहासनपर अधिकार कर सका।[1] इसीप्रकार प्रभावकचरितके प्रणेताका भी कथन है कि कुमारपालका राज्यपदके लिए निर्वाचन हुआ था।[2] इन स्पष्ट उल्लेखोंको ध्यानमें रखकर हम इस निर्णयपर आते हैं कि सिंहासनारूढ़ होनेके पूर्व कुमारपालका वैधानिक निर्वाचन हुआ था। राज्य उत्तराधिकारके लिए वहां जो प्रतियोगिता हुई उसमें कुमारपालने अपनेको सबसे योग्य सिद्ध किया और इसीलिए राज्यके प्रधानोंने उसे राजा निर्वाचित किया। यह भी कहा जाता है कि कुमारपालको राजसिंहासनारूढ़ करानेमें गुजरातके शक्तिशाली जैन दलका प्रमुख हाथ था। कुमारपालको दस सहस्र सेनापर प्रमुख रखनेवाले कान्हदेवका समर्थन प्राप्त था। यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है।

प्रबन्धचिन्तामणि[3] प्रभावकचरित्र तथा पुरातनप्रबन्धसंग्रह[4] सभी इस तथ्यकी पुष्टि करते हैं कि कुमारपाल सामन्त कान्हदेवके साथ एक बड़ी सेना सहित राजप्रासाद गया था।[5] इससे स्पष्ट है कि राज्याधिकारके लिए कुमारपालके निर्वाचनके पीछे सशस्त्र सेनाका भी बल था। इसलिए वास्तविक अर्थमें उसे निर्वाचन नहीं कहा जा सकता। कुमारपाल-

---

[1] तत्थसिरि कुमर-वालो बाहुए सव्वओ वि परिम-वरो।
पुव्वट्ठिय-वरीवारो गुणड्ढो आसि रायवरो।

कुमारपाल चरित्त प्रथम सर्ग पृ० १५।

[2] प्रभावक चरित्र अध्याय २२, ३५६, ४१७।

[3] प्रबन्ध चिन्तामणि चतुर्थ प्रकाश पृ० ७८ "सामन्तेन मातुलेन स्वसैन्यं सन्नद्धं नृपनीयमानोऽस्थापि सिंहासने"।

प्रभावक चरित्र : २२ अध्याय पृ० १०७ "तदासित कृष्ण देवाख्यः सामन्तोऽश्वापुतस्थितिः"

[4] पुरातन प्रबन्ध संग्रह : पृ० ३८।

[5] रासमाला अध्याय ११ पृ० १०९।

का प्रभावशाली व्यक्तित्व सम्पन्न जैनवर्गोंका सहयोग और राज्याधिकारियों द्वारा प्रदत्त सैनिक सहायता इन समस्त विशेष स्थितियोंने कुमारपालको सिद्धराज जयसिंहका उत्तराधिकारी बनाने तथा राजसिंहासन प्राप्त करानेमें सहायता की इसमें सन्देह नहीं।

विचारश्रेणीके अनुसार कुमारपाल मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्थीको सिंहासनारूढ़ हुआ और कुमारपालप्रबन्धके[1] मतानुसार मार्गशीर्ष कृष्ण चतुर्थीको। प्रबन्धचिन्तामणि[2] और कुमारपालप्रबन्ध[3]का अभिमत है कि राज्याभिषेकके समय कुमारपालकी अवस्था लगभग पचास वर्षकी थी। मेरुतुंगकी थेरावलीमें लिखा है कि मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्थीको श्रीकुमारपाल सिंहासनारूढ़ हुए। इसप्रकार प्राप्त सभी विवरणोंके अनुसार राज्याभिषेकके समय सन् ११४२ ईस्वीमें कुमारपालकी अवस्था पचास वर्षकी थी।[4]

कुमारपालका राज्याभिषेक

सोमप्रभाचार्यने अपने कुमारपालप्रतिबोधमें कुमारपालके राज्याभिषेक संस्कार तथा समारोहका वर्णन किया है। यह विवरण अत्यन्त रोचक तथा तत्कालीन वातावरणकी अनुपम झाँकी कराता है। इसमें कहा गया है जब कुमारपाल सिंहासनारूढ़ हुआ तो सुन्दर नर्तकियाँ नृत्य तथा पायलकलाका प्रदर्शन करने लगीं। समस्त संसारमें मंगलवाद्यका घोष होने लगा। राजप्रासादका प्रांगण गूँथी हुई मालाओंसे आच्छादित हो

---

[1] वही।

[2] प्रबन्ध चिन्तामणि चतुर्थ प्रकाश पृ० ९५।

[3] रासमाला ११ अध्याय, पृ० १७६।

मेरुतुंग : थेरावली, पृ० १५७ तथा बंगाल रायल एशियाटिक सोसाइटी जर्नल : अंक १०।

[4] रासमाला : अध्याय ११, पृ० १७६।

गया था। उसका प्रभाव दिक्-दिगान्तर तक फैल गया। इस प्रकार कुमारपालने अपना शासनकाल प्रारम्भ किया।[1] प्रभावकचरित्र प्रबन्धचिन्तामणि तथा पुरातनप्रबन्धसंग्रहमें भी राज्याभिषेक संस्कार समारोहके विस्तृत वर्णन मिलते हैं।[2]

समसामयिक नाटक मोहराजपराजयमें यशपालने कुमारपालके राज्यारोहणके अवसरपर प्रजावर्गमें प्रसन्नताकी व्याप्त लहरका वर्णन किया है। इसमें कहा गया है कि सिद्धराजकी मृत्युसे शोकमग्न प्रजाके हृदयमें उसने आनन्दकी धारा प्रवाहित कर दी।[3] सिंहासनपर आसीन होनेके उपरान्त कुमारपाल उन लोगोंको नहीं भूला था जिन्होंने विपत्ति कालमें उसकी सहायता की थी। उन सभी सहायक लोगोंको सम्मानित

---

[1] गुरुहार वंदुरिय वरंपण नच्चिय चारु विलास पणंगण
निब्भर सद्द भरिय भुवणंतर वज्जिय मंगल तूर निरंतर।
साहिय सिरि अरसत्तो बज्ज प्पिहोवाय पणिय बज बसो
बर बम्म सेवय पत्तो कुमर-नरिंदो कुणइ रज्जं।
कुमारपालप्रतिबोध पृ ५, श्लोक १२, १३।

[2] अविवेकमिहैवास्य विरतं व्यस्तबुद्धिष
मामनुशास्ति पृथ्वीपालविख्यातमो भुवम्
अथ हारसरा तूर्यध्वनिडम्बररिताम्बरम्
चक्रे राज्याभिषेकोऽस्य भुवनत्रयमंगलम्
प्रभावक चरित्र २२ अध्याय प० १९७।

[3] एतो यः सकलं जगुहित्सया बधाम भूमंडलं
भोक्ता यत्र पतिवर समभवमासाद्य सक्तिः स्वयम्।
श्री सिद्धाधिपति प्रमोद त्रिपुरावस्थोपमा प्रजा
कल्याणी विदितो न गुर्जरपतिश्चौलुक्य वंशाग्रणी:
मोहराज पराजय : १ २८ पृ० ११।

पर प्रदान किये गये। कहा जाता है कि उस कुम्हारको जहां कुमारपालने शरण ली थी, सात सौ ग्राम चित्रकूट अथवा राजपूतानेके निकट चितोड़ा किलेके पास दिये गये। प्रबन्धचिन्तामणिकार मेरुतुंगका कथन है कि उसके समयमें उक्त कुम्हारके वंशज विद्यमान थे और हीनवंशमें उत्पन्न होनेकी लज्जासे अपनेको सगर पुकारते थे।[1] भीमसिंह जिसने कुमार पालकी जीवन रक्षा की थी उसका अंगरक्षक नियुक्त किया गया। देवश्रीने राज्यारोहणके अवसरपर कुमारपालको तिलक किया और उसे देवपी[2] नामक ग्राम प्रदान किया गया था। बड़ौदाके कटूक वणिकको जिसने कुमारपालको चना दिया था वटपद्र अथवा बड़ौदा ग्राम मिला। कुमार पालके चिरसाथी वोसरीको लाटमंडल अथवा दक्षिण गुजरातका राज्यपाल नियुक्त किया गया था।

राज्याभिषेकके पश्चात् कुमारपालने अपनी पत्नी भोपालदेवीको पटरानी बनाया। अपने सबसे पुराने समर्थक तथा प्रारम्भिक सहायक उदयनके पुत्र वाग्भट्ट अथवा बाहड़को उसने अपना महामात्य (प्रधान सचिव) नियुक्त किया तथा आलिगको महाप्रधान बनाया।[3] उदयनका दूसरा पुत्र बाहड़ या चर्राभट्ट कुमारपालके आदेशानुसार न चला तथा उसके अधीन न रहा। वह सांभरप्रदेशके राजाके यहां नौकरी करनेके निमित्त भाग गया।[4]

---

[1] आलिग कुम्भकाराय सप्तशती ग्रामभिता विचित्रा चित्रकूटपट्टिका ददे। प्रबन्ध चिन्तामणि चतुर्थ प्रकाश पृ० ८०।

[2] कुमारपाल प्रबन्धके अनुसार वटस्थला अथवा चौल्कर।

[3] कुमारपालप्रतिबन्धमें लिखा है कि उदयन महामात्य तथा वाग्भट सेनापतिके पदपर नियुक्त किये गये थे। उदयनके सबसे छोटे पुत्र सोल्लाने राजनीतिमें भाग नहीं लिया।

रासमाला, अध्याय ११ पृ १८७।

[4] सांभरके शासक या अर्णोराजाने, कहते हैं कुमारपालकी बहनसे

कुमारपाल जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है पचास वर्षकी अवस्थामें राजगद्दीपर बैठा।[1] अपने प्रारम्भिक जीवनमें विभिन्न देशों और राज्य-दरबारोंमें भ्रमणके फलस्वरूप अर्जित अनुभवोंके कारण कुछ कालके अनन्तर ही कुमारपाल तथा उसकी राज्यसभाके अनेक पुराने उच्च अधिकारियोंमें प्रशासन सम्बन्धी नीति विषयक मतभेद उत्पन्न हो गया।[2] पुराने मंत्रियोंने अनुभव किया कि इतने योग्य तथा प्रभावशाली शासकके अधीन होनेके परिणामस्वरूप उनका समस्त प्रभाव एवं प्रभुत्व समाप्त हो गया है। इसलिए उन्होंने राजाकी हत्या करने और अपने प्रभावमें रहनेवाले शासकको राजगद्दीपर बैठानेकी मन्त्रणा की। इसप्रकार सभी सरदारोंने मिलकर यह षड्यन्त्र रचा कि कुमारपालकी हत्या कर दी जाय। इस षड्यन्त्रको कार्यान्वित करनेके लिए उन्होंने उस नगर द्वारपर हत्यारोंको एकत्र किया जिससे रात्रिको कुमारपाल प्रवेश करनेवाला था। किन्तु 'पूर्वजन्मकृत सुकृतोंके फलस्वरूप' इस षड्यन्त्रका आभास कुमारपालको समय रहते लग गया और वह कार्यक्रममें पूर्व निश्चित मार्गसे न आकर दूसरे मार्गसे नगरमें आया। इसके पश्चात् कुमारपालने षड्यन्त्रकारियोंको मृत्युदंड दिया।[3]

थोड़े कालके पश्चात् ही कान्हड़देवने जिसने कुमारपालको राज सिंहासनपर आसीन कराया था अपनी सेवाओंको अत्यधिक बहुमूल्य समझकर, कुमारपालके प्रति अशिष्ट व्यवहार करना प्रारम्भ किया।

विवाह किया था। बहनके साथ दुर्व्यवहार करनेपर कुमारपालने उससे युद्ध किया। इसी नामके कुमारपालकी मौसीके पुत्र बघेल वंशके पूर्वज तथा भीमपल्लीके प्रधानसे उक्त अर्णोराजका कोई सम्बन्ध नहीं है, यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये।

[1] रासमाला अध्याय ११ पृ० १७६।

[2] प्रबन्ध चिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश पृ० ७८।

[3] वही।

यही नहीं कान्हदेव कुमारपालकी पूर्वदशा तथा उसकी पदोत्पत्तिका उल्लेख कर राज्यसत्ताकी स्पष्ट अवज्ञा करने लगा। कुमारपालने जब इसका विरोध किया तो उसे और भी अशिष्ट उत्तर सुनना पड़ा। थोड़े दिनोंके बाद कुमारपालने जब यह भलीप्रकार अनुभव कर लिया कि कान्हदेव सदा अवज्ञा करनेका ही निश्चय कर चुका है तो उसने उसे भी मृत्युदंड दिया। इस सम्बन्धमें मेरुतुंगने लिखा है कि कुमारपालने कान्हदेवसे अपनी आलोचनाएं, व्यक्तिगत भेंट-मुलाकात तक ही सीमित रखने-की बात कही, किन्तु कान्हदेवके अपमानजनक व्यवहारका अन्त होते न देख अन्तमें उसकी आँखें निकलवाकर उसे घर भिजवा दिया।[1] अवज्ञाके परिणामका यह उदाहरण उसकी राज्यसत्ताको सुदृढ़ करनेमें बहुत प्रभावकारी सिद्ध हुआ और उस दिनसे फिर कभी सामन्त राजाज्ञा की अवहेलना करनेका साहस न कर सके। उन्हें भलीप्रकार यह तथ्य समझमें आ गया कि इस भावनासे दीपकको अंगुलीसे स्पर्श करना भ्रमपूर्ण है कि हमने ही इसे ज्योतित किया है इसलिए इसके प्रति अनुचित व्यवहारसे भी हमारा हाथ न जलेगा। और ठीक यही बात राजाके प्रति भी है।[2] अवज्ञा तथा अशिष्टताके प्रति कुमारपालके इन कठोर निश्चयों तथा दण्डोंने सभी प्रदेशों तथा अधीनस्थ राजाओंपर उसका प्रभुत्व स्थापित कर दिया।[3]

कुमारपाल द्वारा उपाधिधारण

प्राचीनकालसे राजा-महाराजा अपनी राजशक्तिके प्रभाव और प्रतीक रूपमें विभिन्न उपाधियाँ धारण किया करते हैं। ब्राह्मणोंमें

---

[1] वही पृ० ७९।

[2] वही। भावी मर्यादामस्मीषि नूनं न तद्देहस्मामावहेऽमितोऽसि। इति प्रमादजुष्टिमर्दनापि स्पृश्येत नो दीप इवावनीश।

[3] वही। इति विमृश्यङ्गिरः समन्ततः सामन्तैर्मण्डलप्राप्तर्वासस्ततः प्रभृति स नृपतिः प्रतिपदं सिषेवे।

कहा गया है कि पारमष्ट्यम्, राज्य महाराज्य तथा स्वराज्यकी उपाधियाँ वैदकालकी हैं किन्तु शिलालेखों तथा उत्कीर्ण लेखोंके अध्ययन और विशेषतया ज्ञात होता है कि मर्त्यलोकके राजा-महाराजा भी इनमेंसे अधिकांश उपाधियाँ धारण किया करते थे। इस प्रकार ये उपाधियाँ केवल देवलोकके सम्राटों तथा सामन्तों तक ही सीमित न थीं।[1] पहले ये उपाधियाँ गुणोंकी प्रतीक थीं। बादमें ये किसी राज्य अथवा राजाकी वास्तविक सामर्थ्य अर्थबोधक हो गयीं। शुक्रनीतिमें इन उपाधियोंके अभिप्रेत अर्थका विशद विवरण है।[2]

कुमारपालके सभी उत्कीर्ण लेखोंमें अनेकानेक विरुद् उपाधियाँ मिलती हैं जिनसे उसकी महान्शक्ति धैर्य और प्रताप का बोध होता है। विभिन्न शिलालेखों तथा ताम्रपत्रोंमें कुमारपालकी निम्नलिखित उपाधियोंका वर्णन मिलता है—कुमारपालको सभी राजाओंमें सर्वशक्तिमान कहते हुए "समस्त राजावली"[3] की उपाधि दी गयी है। वह विशेषतः "उमापति वरलब्ध"[4] "परम भट्टारक"[5] "महाराजाधिराज", "परमेश्वर"[6], चक्रवर्ती, गुर्जरधराधीश्वर' परमार्हत चौलुक्य' की विभिन्न उपाधियोंसे भी विभूषित किया गया था।

निश्चय ही कुमारपालकी ये उपाधियाँ उसकी महान राजसत्ता और उसके प्रभाव द्योतक हैं। इनमेंसे एक उपाधि निज भुज विक्रम रणांगण

[1] वैस्तापुरकर : वैदिक इण्डेक्स, चतुर्थ खंड।
[2] शुक्रनीति : १ १८८-७।
[3] भावा शिलालेख पूना ओरिएण्टलिस्ट, खंड १ उपखंड २, पृ० ४०।
वही।
[4] जालोर शिलालेख : इपि० इंडि० खंड ९, पृ० ५४, ५५।
[5] वही।
ए० एस० आई० डब्लू० सी०, १९०८ ५१ ५२।
[6] इपि० इंडि० खंड ९, पृ० ५४, ५५।
[7] वही।

विनिर्जित शाकंभरी भूपाल (उसने समरभूमिमें शाकंभरी नरेशका पराजित किया था)का तो कुमारपालके अनेक शिलालेखोंमें उल्लेख हुआ है।[1]

इसप्रकार स्पष्ट है कि कुमारपालकी उपाधियां अत्यन्त विशद तथा महान सत्ताव्यक्त करनेवाली थी। और इनसे यह भी स्पष्ट है कि कुमार पाल अपने समयका एक महान राजा हो गया है। कुमारपालकी वीरता उसकी महान राजकीय सत्ता उसका साहित्य संस्कृति तथा कलाके प्रेम समस्त उपाधियोंके अनुरूप भी रहा है इसमें सन्देह नहीं। गुजरातके चौलुक्योंके पूर्व उत्तरीभारतमें गुप्तवंश तथा पुष्यभूति राज्यवंशकी महान राज्यशक्ति थी। गुप्तवंशके राजाओंने भी परमभट्टारक महाराजाधिराज जैसी उपाधियां ग्रहण की थीं। इसप्रकार राजा-महाराजाओं द्वारा उपाधि ग्रहणकी प्रथा तथा परम्परा बहुत प्राचीन चली आ रही थी। अतः यह स्वाभाविक ही था कि महान विजेता कुमारपाल जिसके समयमें गुजरातके चौलुक्योंकी राजशक्ति चरम उत्कर्षपर पहुंच गयी थी प्राचीन राजकीय परम्परानुसार विशद उपाधियां ग्रहण करता।

गुर्जराधिप चौलुक्य कुमारपालकी विभिन्न उपाधियोंके विवेचन तथा विश्लेषण करनेपर हम इस निष्कर्षपर पहुंचते हैं कि उसने "समस्त राजावली"की उपाधि इसलिए ग्रहण की क्योंकि वह संगठित तथा शक्ति बद्ध राजाओंका प्रतीक था और उनमें सर्वशक्तिशाली था। महाराजाधिराज परमेश्वर परमभट्टारक तथा चक्रवर्ती उपाधियां उसकी व्यापक और विशद राजकीय सत्ताकी द्योतक थी। 'निज भुज विक्रम रणांगण विनिर्जित शाकंभरी भूपाल' उपाधि कुमारपाल द्वारा रणभूमिमें शाकंभरी नरेशको पराजित करनेकी घटनाका स्मारक है और अन्तमें "उमापति वरलब्ध" तथा 'परमार्हत चौलुक्य" क्रमशः उसकी शिवभक्ति तथा जैनधर्मके प्रति असीम प्रेम एवं श्रद्धाभक्तिकी परिचायक है।

---

[1] ए० एस० आई० डब्लू० सी० : १९०८-५१-५२।

सैनिक
अभियान
और साम्राज्य विस्तार

गुजरातके इतिहासकारोंका अभिमत है कि कुमारपाल अपने पूर्वजोंकी
ति महान योद्धा था। जयसिंहसूरिके कुमारपालचरितमें उसके दिग्विजयका
तार वर्णन मिलता है। इस ग्रन्थके सम्पूर्ण चौथे सर्गमें कुमारपालक
उसकी सैनिक अभियानोंका विस्तृत उल्लेख है। इसमें कहा गया है कि
मारपाल पहले जाबालपुर[1] (आधुनिक जालोर) पहुंचा। वहांके
ापकने उसका स्वागत किया। जाबालीपुरसे कुमारपाल सपादलक्ष
देशपर आक्रमण करनेके लिए आगे बढ़ा। सपादलक्षके (शाकम्भरी)
राजा अर्णोराजने जो कुमारपालका बहनोई भी था उसका अत्यन्त
आदर सत्कारपूर्वक वर्णन किया। यहांसे कुमारपालने कस्मलकी
दिशाम प्रस्थान किया और मन्दाकिनी (गंगा)के तटपर जाकर रुका।
इसके अनन्तर गर्जनरेश कुमारपाल मालवाकी ओर अग्रसर हुआ।
मालवाकी दिशामें सैनिक अभियानके मध्यमें चित्रकूटके अधिपतिने उसके
प्रति कृतज्ञता प्रकट की। अवन्ती देश पहुंचकर कुमारपालने इस प्रदेशक
शासकको बन्दी बनाया। इसके बाद उसके सैनिक अभियानकी दिशा
नर्मदा तटके किनारे-किनारे हुई। रेवाकूलमें थोड़ा विश्राम करनेके पश्चात्
उसने नदी पार की तथा आभीर-विषयमें प्रवेशकर प्रतानगरीके अधि
पतिको अधीनस्थ होनेके लिए बाध्य किया। कुमारपालका सुदूर दक्षिण

---

[1] कहीं कहीं "जाबालीपुर" उच्चारण है। डी० एच० एन० आई० ;
खंड २, पृ० ९८२।

अभियान विन्ध्य पर्वतोंके कारण अवरुद्ध रहा। फिर भी उसने इस क्षेत्रके छोटे-छोटे ग्रामपतियोंसे कर वसूला तथा पश्चिम दिशाकी ओर मुड़कर लाटप्रदेशके अधिपतिको अपने अधीनस्थ किया।

लाटप्रदेशसे कुमारपाल पश्चिमोत्तर दिशामें आगे बढ़ा तथा उसने सौराष्ट्र विषयके प्रधानको पराजित किया। सौराष्ट्रसे उसने कच्छमें प्रवेश किया। यहाँके प्रधान शासकको पराजित कर कुमारपाल पंचनद विषय चौहान समुदायसे युद्ध करने गया। उसपर विजय प्राप्त कर कुमारपाल मूलस्थान (आधुनिक मुल्तान)के राजा मूलराजपर आक्रमण करने गया। मूलराजसे भीषण युद्ध कर तथा विजयश्री हस्तगत कर चौलुक्य नरेश कुमारपाल एक प्रदेशसे जालंधर और मरुस्थान होता हुआ लौटा। इसके आगे जयसिंहने शाकंभरी नरेश अर्णोराजा और कुमारपालके बीच हुए युद्धका विस्तृत विवरण दिया है। जयसिंहका कथन है कि इस युद्धका कारण अर्णोराजाका कुमारपालकी बहिन देवलदेवीके प्रति दुर्व्यवहार था। कहते हैं कि चौहान राज्यको छोड़कर वह चली आयी और अपने भाई कुमारपालसे असद्व्यवहारकी शिकायत की। इसीकारण कुमारपालने चौहान राज्यपर आक्रमण किया और अर्णोराजाको रणभूमिमें पराजित किया किन्तु अन्तमें उसे ही सिंहासनारूढ़ किया।[1]

यशपालके तत्कालीन नाटक मोहराजपराजयसे भी इस तथ्यकी पुष्टि होती है कि गुर्जराधिप कुमारपालने अपने शौर्य-वीर्यसे सांभरप्रदेशके अधिपतिको पराजित किया था।[2] सांभरके राजाके पक्षमें रहनेवाले एक प्रसिद्ध राजा स्यापभट्टने कुमारपालके विरुद्ध सैनिक आक्रमण किया।

---

[1] कुमारपाल चरित : जयसिंह, चतुर्थ सर्ग पृ० १७०।

[2] देवगुर्जर नरेन्द्र परकल्मषहंत सांभरी भूपाल—मोहराजपराजय चतुर्थ अंक पृ० १०६।

इस आक्रमणको कुमारपालने पूर्णतया विफल ही नहीं किया अपितु त्याग भट्टको पराजित करनेमें भी पूर्ण सफलता प्राप्त की।[1]

द्वयाश्रय काव्यमें हेमचन्द्रने कुमारपाल द्वारा श्रीनगर, कांची तथा तिलंगानापर विजय प्राप्त कर राज्य-विस्तारको व्यापक करनेकी घटनाका संक्षेपमें विवरण दिया है।[2] कुमारपालके इन सैनिक अभियानोंमें पश्चिम भीतरसे सिन्धुके राजाने भी अपनी सेवाएं अर्पित की थीं।[3] द्वयाश्रय महाकाव्यके प्राकृत भागमें कुमारपालके सम्मुख अन्य प्रदेशोंके राजाओं द्वारा अधीनता स्वीकार करनेकी घटनाका उल्लेख बहुत ही संक्षेपमें किया गया है। यवनके राजाने कुमारपालके भयसे सभी राग-रंगका परित्याग कर दिया था। उच्चस्थलने कुमारपालको प्रचुर धनराशिकी भेंटके साथ उत्तम कोटिके अश्व प्रदान किये थे।[4] वाराणसीका राजा कुमारपालसे

---

[1] त्यागभटः कुमारतिलकः शाकम्भरीमाश्रितो
योऽसीत्तस्य कुमारपाल नृपतेश्चौलुक्य चूडामणेः।
युद्धायाभिमुखोऽभवज्जय विधि स्वास्थं विधि प्रकते
श्रीमद्गर्जन विफलं शरणम इव त्वं केवलं वसति ॥
—मोहराजपराजय अंक ५, श्लोक ११।

[2] अह सिरि नयर सिरीए कुजलि कुप्पाति तिलंग लच्छीए
कुमरलि कंचि सिरीए भुंजमो दाहिण दिसिहि ८२ ।

[3] सिंधू वई गुरु यमाय वैसित्तो मुगइ दिय वाहुमओ
न हि मई दिवसे वेसाई निमाइ पच्छिम दिसाइ सहु ८३
तम्बोलं न समायइ कम्मावकाले वि मग्गुए जवमो
विसए अ मोह भुंजइ भएण तुह अट्ठ कम्मवसा ८४।

[4] अवि अहिम कवन पढिआहरखे उच्चेतरो वर-तुरंगे
संमसिअ अवन मज्झे पेसइ तुह दिव वसंपडियो ८५।

मिलनेके लिए सदा उसके प्रासाद द्वारपर अवस्थित रहा करता था।[1] मगध देशसे बहुमूल्य रत्नोंकी तथा गौड़ देशसे श्रेष्ठतम हाथियोंकी भेंट कुमारपालके समक्ष आती थी। उसकी सेनाने कान्यकुब्ज प्रदेशको पादाक्रान्त कर वहाँके राजाको आतंकित कर दिया था। दशार्ण देशकी तो अत्यधिक शोचनीय स्थिति हो गयी थी। वहाँका राजा भयग्रस्त होकर मृत्युको प्राप्त हुआ। इस प्रदेशका सारा धन कुमारपालके सैनिक ले गये तथा दशार्ण देशके अनेक सेनापति युद्धमें हत हुए। चेदिराज (त्रिपुरी त्रिपुर)की शक्ति तथा गर्वका मर्दन कर कुमारपालकी सेनाने रेवा नदीके तटपर अपना शिविर स्थापित किया। सैनिकों द्वारा रेवा नदीके घड़ियालोंको मारने तथा वहाँके उपवनोंको क्षतिग्रस्त करनेका भी उल्लेख मिलता है। इसके अनन्तर कुमारपालकी सेनाने यमुना नदी पार की और मथुराके राजापर आक्रमण किया। मथुराका राजा अपनी निर्बल स्थितिको अच्छी तरह समझता था। उसने स्वर्णराशिकी भेंट द्वारा आक्रमकोंको सन्तुष्ट किया और अपने नगरकी रक्षा की। कुमारपालकी व्यापक प्रभुता तथा महत्ताका परिचय इस तथ्यसे भी मिल जाता है कि "जंगलराज" "तुर्क मुसलमानोंका शासक" तथा "दिल्लीके सम्राट" भी उसकी प्रशंसा और प्रशस्ति किया करते थे। षष्ठ सर्गके अन्तमें कविने जंगलराजको कुमारपालकी प्रशस्ति करते हुए अंकित किया है।[2]

---

[1] हरिस मुरिआवम्मो सो महि मंडल कासि-रीअयारम्भा
ठिविविकिअइ तुह बारं हम विविम हुलिय विअइअं ७६

[2] भीपाइम अम कंच मनिमट्ठिम विलअमं वसं तुरग
अविलोहिम अम मथुराहिवस्स पंसाएही विअयं ८८
अविसंवाइ परित्ता तणु पच्चोअण अमस्स पंसु कणा
जीहरिज सक्क जाइं तुह पुरा अंजमुलिसा ८९

चौहानोंके विरुद्ध युद्ध

द्व्याश्रय काव्यमें कुमारपाल तथा अन्न अथवा अर्णराजसे युद्धका जो वर्णन मिलता है वह भिन्न है। इसमें कहा गया है कि उदयनके एक दूसरे पुत्र बाहड़ने जो सिद्धराज जयसिंहका अत्यन्त विश्वासपात्र था कुमारपालके अधीनस्थ और आदेशोंपर कार्य करना अस्वीकार कर दिया। बाहड़ कुमारपालकी सेवामें न रहकर, नागोरके राजा "अर्ण" या जिसे मेरुतुंगने "आनाक" कहा है के यहां चला गया। अर्णो या आनाक बीसलदेव चौहानका पौत्र था। कथाग्रामोंके राजा "अर्ण"ने जब सिद्धराज जयसिंहकी मृत्युका समाचार सुना तो उसने सोचा कि नये और निर्बल सिंहासनाधिकारी कुमारपालके नेतृत्वमें इस समय गुजरातकी सरकार है। अब अपनेको स्वतन्त्र करनेका उपयुक्त समय आ गया है। इतना ही नहीं अपने किसीसे कुछ प्रतिज्ञा करा और किसीको धमकी देकर, उज्जयनीके राजा बल्लाल तथा पश्चिमी गुजरातके राजाओंसे मैत्री कर ली। कुमारपालके गुप्तचरोंने उसे सूचना दी कि अर्णराजा सेना लेकर गुजरातके पश्चिमी सीमान्तकी दिशामें अग्रसर हो रहा है। उसकी सेनामें अनेक अनार्य विदेशी भाषाओंके भी ज्ञाता थे। अब राजाको कूपालम (कुडकोट)के राजाका सहयोग मिल गया तथा अणहिलवाड़ेकी सेनाका एक सैनिक बाहड़ भी उसके पक्षमें आ मिला था। उज्जयिनीराज देशदेशान्तरमें प्रमथनीय म्लेच्छा

रिउ बलकम्पावणयं कोसिअमाण ह्यगयदूरिएमरुअं
अभिभूरल्ल अपुर्व पत्ते महुराइ पुह पिअं ९०
सव्वासिल अमल बल भर अंगय बहलोवमन्मिद हिल्ला
पुह रिउ संगामज पम पयाव संगत्थि एप मया ९८
तह धेसिअओ पुत्तओ दिल्ली मए गम्मिअओ तह य
महुस्सिओ अ कामी रिउ पत्तग छूर महयपमं २९
द्व्याश्रय काव्य सर्ग चतुर्थ पृ० २११ २१९।

जिससे गुजरातकी वास्तविक स्थितिसे परिचित हो चुका था। उसने मालवनरेश बल्लालसे एक सैनिक अभिसन्धि कर ली थी। उसने सैनिक आक्रमणकी योजना बनायी थी कि जैसे ही अणराजा आक्रमण कर प्रगति करेगा वह पूर्व दिशाकी ओरसे गुजरातके विरुद्ध युद्ध घोषित कर देगा। कुमारपालको जब यह स्थिति विदित हुई तो उसके क्रोधका पारावार न रहा।

कुमारपालका सैनिक संघटन

इस अवसरपर कुमारपालकी सहायता तथा सहयोगके लिए भी अनेकानेक राजा आगे आये। कुमारपालको कूली जातिके लोगोंका भी सहयोग प्राप्त हुआ जो प्रसिद्ध अश्वारोही माने जाते थे। पहाड़ी जातिके लोग भी चारों ओरसे कुमारपालके साथ आ गये। कुमारपालके अधीनस्थ कच्छकी जनताने भी उसका साथ देना निश्चय किया। कच्छके साथ ही सिन्धुकी जनता भी सहयोगके लिए प्रस्तुत हो गयी। जैसे ही कुमारपाल आबूकी ओर अग्रसर हुआ उसके साथ मृगचर्मका वस्त्र धारण करनेवाले पहाड़ी भी आ मिले। आबूका परमार राजा विक्रमसिंह जो जालंधर देशकी जनताका नेता था, कुमारपालके साथ हो गया और उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। अणराजाने कुमारपालके आगमनकी सूचना पाकर अपने मन्त्रियोंके परामर्शकी अवहेलना कर युद्ध करनेका निश्चय किया। किन्तु अभी उसकी सेना युद्धके लिए प्रस्तुत भी न थी कि रणभेरी सुनाई पड़ी और गुजरातकी सेना पर्वतोंकी ओरसे प्रवेश करने लगी।

मेरुतुंग तथा हेमचन्द्र दोनों ही इस बातपर एकमत हैं कि सपादलक्षके राजाने ही पहले आक्रमण किया था। मेरुतुंगका यह भी कथन है कि गुजरातपर आक्रमण करनेके लिए चौहान नरेशको बाहड़ने ही प्रेरणा तथा प्रोत्साहन दिया था। बाहड़ कुमारपालके विरुद्ध युद्ध करना चाहता था।

उसने उन प्रदेशोंके सरकारी अधिकारियोंको बहुमूल्य भेंट तथा रिश्वत देकर अपनी ओर मिला लिया था। बहड़ने सपादलक्षके राजाको साथ लाकर गुजरातके सीमान्तपर एक शक्तिशाली सेना खड़ी कर दी थी।[1] किन्तु बहड़के ये सभी प्रयत्न जिनके द्वारा वह कुमारपालको पराजित तथा पदाक्रान्त करनेकी योजना बना चुका था एक विचित्र घटनाके कारण विफल हो गये। कुमारपालके पास रणभूमिमें कौशल प्रदर्शित करनेवाला कलहपञ्चानन नामका एक अत्यन्त श्रेष्ठ हाथी था। इस हाथीके महावतका नाम चाहिल था। इसे बहड़ने धन देकर अपनी ओर मिला लिया था। संयोगवश एक बार कुमारपालकी डाट फटकार उसे बहुत अप्रिय लगी और वह अपना कार्य छोड़कर चला गया। उसके रिक्त स्थानपर सामल नामका हस्तिचालक जो अपने कौशल तथा ईमानदारीके लिए प्रसिद्ध था नियुक्त किया गया। रणक्षेत्रमें जब कुमारपाल तथा बहड़की सेनाका संघर्ष प्रारम्भ होनेवाला ही था कि कुमारपालको गुप्तचरोंने सूचना दी कि उसकी सेनामें असन्तोष फैला दिया गया है। इस विषम घड़ीमें भी कुमारपाल विचलित नहीं हुआ बल्कि ठीक इसके विपरीत साहस एवं दृढ़तासे अपरमें अकेले ही सामना करनेका निश्चय किया। उसने सामलको अपना हाथी आगे बढ़ानेकी आज्ञा दी। यह देख कि सामल उसकी आज्ञाका पालन करनेमें ढिलाईसे काम ले रहा है कुमारपालने उसपर विश्वासघातीका आरोप लगाया। सामलने इस आरोपको अस्वीकार करते हुए अपनी कठिनाईका स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि विपक्षी इसकी सेनामें बहड़ भी हाथीपर सवार है। इसकी आवाज ऐसी है जिससे हाथी भी आतंकित हो जाता है। उसने अपने वस्त्रोंसे हाथीके दोनों कानोंको बाँधकर उक्त बाधा दूर की और इसके अनन्तर कुमारपाल रणभूमिमें शत्रुके विरुद्ध अग्रसर हुआ।

---

[1] प्रबन्ध चिन्तामणि : पृष्ठ १२०।

अर्णोराजाकी पराजय

चाहड़को हाथीके महावतके परिवर्तनकी स्थिति ज्ञात न थी। उसे पूर्ण विश्वास था कि हस्तिशालकसे अवश्य सहायता मिलेगी। यह सोचकर उसने अपना हाथी कुमारपालकी ओर बढ़ाया और हाथमें तलवार लेकर उसके मस्तकपर चढ़ जानेका प्रयत्न किया। श्यामलने इस आक्रमणकी आश-को तत्काल समझ लिया और अपने हाथीको तनिकसा पीछे हट जानेका आदेश दिया। इस प्रकार चाहड़ दो हाथियोंके मध्य गिर पड़ा और कुमारपालके पैदल सैनिकों द्वारा पकड़कर बन्दी बना लिया गया।[1] इसके अनन्तर तत्काल कुमारपाल अर्णोराजकी ओर बढ़ा। उसके निकट जाकर सिद्धराजके उत्तराधिकारी कुमारपालने कहा "अब तुम इतने वीर योद्धा थे तो सिद्धराजके सम्मुख क्यों नतमस्तक हुए थे। पूर्वकालमें तुम्हारा वह कार्य निश्चय ही बुद्धिमत्तापूर्ण था। यदि अब मैं तुम्हें पराजित नहीं करता तो सिद्धराजकी धवल कीर्तिका प्रकाश मन्द पड़ता जायगा।"[2]

इस प्रकार दोनों राजाओंमें युद्ध हुआ। दोनों पक्षोंकी सेनाओंमें भी भीषण रण संघर्ष हुआ। कुमारपालने अर्णोराजाको क्षत्रियोंकी भांति युद्ध करनेकी चुनौती देकर ठीक उसके मुखपर ही बाण छोड़ा। बाणसे आहत होकर जब वह हाथीके सामने गिर पड़ा तो कुमारपालने अपने परिधानको वायुमें प्रसन्नतापूर्वक फहराकर विजयकी घोषणा की। जब अर्णोराजाके पक्षके दोनों नेता इस प्रकार पराजित हो गये तो सभीने कुमारपालकी अधीनता स्वीकार कर ली। कुमारपालको इस युद्धमें पूर्ण विजय प्राप्त हुई।

---

[1] प्रभावक चरित्र अध्याय २२, पृ० २०१, २०२।

[2] रासमाला अध्याय ११, पृ० १७७।

था। चौलुक्योंकी राज्यसीमामें नाडुल्ल निश्चित रूपसे सफल युद्ध द्वारा ही मिलाया गया होगा। इस तथ्यका समर्थन कुमारपालके चित्तौरगढ़ उत्कीर्ण लेखसे भी होता है और जिसका काल वि० सं० १२२० है।[1] इस उत्कीर्ण लेखमें यह लिखा हुआ है कि कुमारपालने सपादलक्ष प्रदेशको पदाक्रान्तकर शाकंभरी नरेशको पराजित किया और उदयपुर चित्तौरके सालिपुरा स्थानमें अपना विशाल शिविर स्थापित किया।[2] वडनगर प्रशस्तिके उत्कीर्ण लेखमें कुमारपालका उल्लेख करते हुए उसकी दो सैनिक विजयोंकी अत्यधिक प्रशंसा की गयी है। इनमें एक तो राजपूतानाके शाकंभरी सांभर प्रदेशके अधिपति अर्णोराजा (श्लोक १७)पर है और दूसरी विजय पूर्व दिशाके मालवराजपर है। इसी प्रशस्ति द्वारा हमें विदित होता है कि विक्रम संवत् १२०८के पूर्वमें ये युद्ध समाप्त हो गये थे।[3] अब तक नाडोल दानपत्रके आधारपर यही कहा जा सकता था कि अर्णोराजा वि सं० १२११के पूर्व विजित हो गया था।

इस घटनाका उल्लेख कुमारपालके वि सं १२ ७के चित्तौरगढ़ शिलालेखमें भी हुआ है।[4] इसमें कहा गया है कि उक्त घटना अभी हालकी है। कुमारपालके पाली शिलालेखमें जो वि० सं० १२०९का है यह अंकित है कि उसने शाकंभरी नरेशको पराजित किया था।[5] अर्णोराजाको

---

[1] वही १९०५ ६, ११।

[2] इस शिलालेखमें वर्णित "सालिपुरा" नामक स्थानका जहां कुमारपालने शिविर स्थापित किया था अभी तक ठीक ठीक पता नहीं लग सका है। इपि० इंडि० खंड २, पृ० ४२१ २४।

[3] इपि० इंडि० खंड १, पृ० २९६, श्लोक १४ १८।

इंडि एंटी० : खंड ४१, पृ० २ २३।

[4] इपि० इंडि० पृ० ४२१ सूची संख्या २७९।

[5] आर्कलाजिकल सर्वे आव इंडिया वेस्टर्न सरकिल १९ ७-८ :

पराजित करनेपर कुमारपालको जो उपाधि दी गयी थी उसका अन्य उत्कीर्ण लेखोंमें भी उल्लेख है।[1]

मालव विजय

शाकंभरीके चौहानोंसे जो युद्ध हुआ उसके कारण कुमारपालको पूर्वीय सीमान्तपर दो और युद्ध करने पड़े। द्वयाश्रय काव्यमें लिखा है कि अर्णोराजा पर विजय प्राप्त करनेके पश्चात् कुमारपालको यह परामर्श दिया गया कि वह मालवाधिपति बल्लालको पराजितकर यश अर्जन करे। कुमारपालके मन्त्रियोंने उसे मालवापर आक्रमण करनेका परामर्श क्यों दिया इसका उल्लेख हेमचन्द्रने एक अन्य स्थलपर किया है। उसने लिखा है कि अर्णोराजा गुजरातके सीमान्तकी ओर बढ़ आया और उसने अवन्ति नरेश बल्लालसे अभिसन्धि कर ली थी। इसके अनन्तर यह योजना बनी कि उत्तर तथा पूर्व दोनों दिशाओंसे चौलुक्य राज्यपर एक साथ ही आक्रमण किया जाय।[2] जब चौलुक्य नरेश कुमारपाल पाटन लौटा तो उसे यह समाचार मिला कि विजय तथा कृष्ण जिन्हें उसने बल्लालका प्रतिरोध करनेके लिए भेजा था (और स्वयं अर्णोराज विरुद्ध सेना लेकर गया था) उज्जयिनी नरेशके पक्षमें जा मिले। उज्जयिनी नरेश अब उसकी राज्यकी सीमामें प्रवेशकर अणहिलपुरकी ओर अग्रसर हो रहा था।

कुमारपाल तत्काल ही अपनी सेना एकत्र कर बल्लालका सामना करनेके लिए रवाना हुआ। द्वयाश्रयके अनुसार कुमारपालने बल्लालपर

" प्रौढ़ प्रताप निजभुजविक्रमरणांगण विनिर्जित शाकंभरी भूपाल श्रीमत्कुमारपाल देव"।

[1] भीमदेव द्वितीयका दान लेख वि० सं० १२६६, इंडि० एंटी० खंड १८ पृ० १११।

[2] इंडि० एंटी० खंड ४ पृ० २६८।

प्रहार कर उसे पराजित किया।[1] वसन्तविलासमें भी बल्लालपर कुमारपालकी विजयका उल्लेख हुआ है।[2] कीर्तिकौमुदीसे विदित होता है कि कुमारपालने बल्लालका शिरच्छेद कर दिया था। साहित्यके इन ग्रन्थोंमें वर्णित इस घटनाकी पुष्टि शिलालेखोंसे भी होती है। दोहद प्रस्तर स्तम्भमें जयसिंहके समयका वि० सं० ११९६का एक उत्कीर्ण लेख है। इसीमें विक्रम संवत् १२०२का भी एक लेख उत्कीर्ण है। आश्चर्यकी बात यह है कि इसमें महामण्डलेश्वर वपनदेवका नामोल्लेख नहीं है। दोहद लेखकी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण अवस्थितिको देखते हुए यह सम्भव है कि सन् ११४०-११४६के मध्य इसपर चौलुक्योंका अधिकार न रह गया हो। जो हो शिलालेखके लिखनेवालेने चाहे जिस कारणसे कुमारपालका इसमें नामोल्लेख न किया हो, इसमें कोई सन्देह नहीं कि सन् ११५१ ईस्वीके कुछ पूर्व ही यह प्रदेश पुनः चौलुक्योंके अधीन आ गया था।

कुमारपालके दो उदयपुर प्रकीर्ण लेखोंमें जिनका काल क्रमशः वि० सं० १२२० तथा १२२२ है, यह स्पष्ट अंकित है कि वह अपने पूर्वाधिकारी की भाँति ही पुनः मालवाधिपति भी था।[3] ये शिलालेख अणहिल्लपाटकके कुमारपालके समयके हैं जो 'शाकंभरी तथा अवन्तिके अधिपतियोंको समरभूमिमें पराजित कर चुका' था। भाव बृहस्पतिकी प्रशस्तिमें भी कुमारपालको "बल्लाल गजके मस्तकपर उछलनेवाला सिंह" कहा गया है।[4] वडनगर प्रशस्तिमें भी इस बातका उल्लेख है कि चौलुक्यराजने

---

[1] वही।

[2] वसन्तविलास ३, २९।

[3] बम्बई गजेटियर खंड १ उपखंड १, पृ० १८९।
इंडि० ऐंटी० खंड १०, पृ० १५९।

[4] इंडि० ऐंटी० खंड १८, पृ० ३४१ ४४।

[5] भावनगर शिलालेख, पृ० १८६।

देवी दुर्गाको मालवाधिपतिका कमल मस्तक जो उसके द्वारपर लटका दिया गया था अर्पण कर प्रसन्न किया था।[1] इस शिलालेखसे स्पष्ट है कि बल्लाल सन् ११२१के कुछ दिन पूर्व मारा गया था।[2] ऐतिहासिक परम्परासे मालवनरेश बल्लालकी पहचान करना कठिन है। परमारोंके प्रकाशित विवरणोंकी वंशावलीमें उक्त नाम नहीं आया है। जैसा ल्यूडर्सने कहा है सम्भव है बल्लालने अचानक ही सन् ११३६-११४४ ईस्वीमें मालवाकी राजगद्दीपर अधिकार कर लेनेमें सफलता प्राप्त कर ली हो।[3] कुमारपालकी कठिनाइयोंसे लाभ उठानेके विचारसे अणहिलपाटककी गद्दीपर उसके बैठते ही बल्लालने अपनेको स्वतन्त्र घोषित कर दिया हो। इतना ही नहीं उसने गुजरातके विरुद्ध सैनिक आक्रमण करनेवाले शाकंभरीके चौहानोंसे सन्धि कर ली हो और अपने राज्यके परम्परागत शत्रुसे लोहा लेनेके लिए प्रस्तुत हो गया हो। वडनगर प्रशस्तिमें पूर्व दिशाके अधिपति मालव शासकपर कुमारपालकी प्रसिद्ध विजयका उल्लेख हुआ है। इसमें यह भी कहा गया है कि मालव नरेश अपने देशकी सुरक्षा करते हुए हत हुआ। उसका सिर कुमारपालके राजप्रासादके द्वारपर लटकाया गया था। इसी उत्कीर्ण लेखके आधारपर निश्चित रूपसे कहा

---

[1] इपि० इंडि० खंड १ पृ० ३०२ श्लोक १५ तथा देखिये उत्तरी भारतके राजवंशोंका इतिहास : खंड २, पृ० ८८६।

[2] वेरावल शिलालेखके आधारपर ल्यूडर्सका मत है कि बल्लाल सन् ११६९के पूर्व मरा होगा। इपि० इंडि० खंड ८, पृ० २०२। किन्तु वडनगर शिलालेखका मालवाधिपति ही निश्चित रूपसे बादके विवरणोंका बल्लाल रहा। इसलिए उसके निधन कालकी अवधि १८ वर्ष पूर्व निश्चित की जा सकती है।

[3] इपि० इंडि० खंड ७ पृ० २०१-८। यशोवर्मनकी अन्तिम तथा लक्ष्मीवर्मनकी प्रारम्भिक तिथियाँ।

जा सकता है कि मालवासे युद्ध विक्रम संवत् १२०८के पूर्व समाप्त हो गया था। इस उत्कीर्ण लेख की सहायतासे हमें दो बातोंका पता चलता है। एक तो यह कि जयसिंहने मालवाको पहले ही अपने गुजरात राज्यमें मिला लिया था। दूसरी बात यह कि वहां हुए विद्रोहका दमन पांच वर्ष पहले ही किया जा चुका था। कीर्तिकौमुदीके अनुसार कुमारपालने गुजरातपर आक्रमण करनेवाले मालवराज बल्लालका शिरच्छेद कर दिया था। इस संघर्षका परिणाम यह हुआ कि मालवा पुन पहलेकी भांति अनहिल-वाड़के राजाओंके अधीन हो गया। भिलसाके निकट उदयपुरसे तथा उदयादित्यके मन्दिरमें अनेक प्रकीर्ण लेख मिले हैं जिनसे ज्ञात होता है कि कुमारपालने सम्पूर्ण मालवाको विजित किया था। ये शिलालेख जिस व्यक्तिने अंकित कराये हैं उसने अपनेको कुमारपालका सेनापति कहा है।

परमारोंके विरुद्ध युद्ध

कुमारपालको अर्णोराजा चौहानके विरुद्ध आक्रमणके सिलसिलेमें जो दूसरा युद्ध करना पड़ा वह आबूके चन्द्रावती प्रदेशके परमारोंके विरुद्ध था। कुमारपालचरितमें उल्लेख मिलता है कि जब कुमारपाल अर्णोराजासे युद्धरत था चन्द्रावतीके अधिपति विक्रमसिंहने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इसलिए कुमारपालने उत्तरी शासक (अर्णोराजा)को पराजित कर चन्द्रावतीपर आक्रमण किया और इस नगरपर अपना पूर्ण अधिकार कर यहांके शासकको बन्दी बनाया।[1]

---

[1] द्वयाश्रय काव्य : ४ ५२१—५२में इस आशयका वर्णन मिलता है कि आबूके परमार शासक विक्रमसिंहने उस समय कुमारपालका अपनी राजधानीमें स्वागत किया था, जब वह सपादलक्षके "अर्ण"के विरुद्ध युद्ध करने जा रहा था। इंडि० ऐंटी०: खंड ४, पृ० २६७।

इस घटनाके विवरणके आधारपर कहा जा सकता है कि जब कुमारपाल अर्णोराजाके विरुद्ध युद्ध करने जा रहा था तो आबू राज्यके शासक विक्रमसिंहका आचरण-व्यवहार मैत्रीभावका दिखावा मात्र था। आगेके घटनाक्रमसे हमें विदित होता है कि चन्द्रावतीके शासक विक्रमसिंहने युद्धमें अर्णोराजाका पक्ष ग्रहण किया था और कुमारपालने इसके लिए उसे दण्डित किया था। विक्रमसिंहको अनहिलवाड़में एकत्र बहत्तर अधीनस्थ शासकोंके सम्मुख अपमानित कर बन्दीगृह भेज दिया गया। विक्रमसिंहकी राजगद्दीपर उसके भ्रातृपुत्र यशोधवलको आसीन कराया गया।[1] इस घटनाकी पुष्टि देवपालके विक्रम संवत् १२८७की आबू पहाड़ी प्रशस्तिसे भी होती है। इसमें कहा गया है कि अर्बुद परमार यशोधवलने यह विदित होते ही कि बल्लाल चौलुक्यराज कुमारपालका विरोधी तथा शत्रु हो गया है मालवाधिप बल्लालको तत्काल हत कर दिया।[2] प्रशस्तिके इस उल्लेखसे इस निष्कर्षपर पहुँचा जा सकता है कि यशोधवल कुमारपालका अधीनस्थ शासक था।

कोंकणके मल्लिकार्जुनसे संघर्ष

इसके पश्चात् कुमारपालकी सेनाने दक्षिण कोंकणके राजा मल्लिकार्जुनसे युद्ध किया। उत्तरी कोंकणके राजाओंकी प्रकाशित सूचीसे विदित होता है कि सन् ११६० ईस्वीमें शिलाहार वंश राज्यासीन था। मल्लिकार्जुनके विरुद्ध कुमारपालको भारी सेना क्यों भेजनी पड़ी यह घटना इसप्रकार है—एक दिन कुमारपाल भरी राजसभामें सेनापतियों तथा अधीनस्थोंके मध्य जब बैठा हुआ था तो एक भाटने मल्लिकार्जुनकी

---

[1] बम्बई गजेटियर खंड १ उपखंड १ पृ० १८५।

[2] इपि० इंडि० खंड ७ पृ० २१६ श्लोक ३५ तथा उत्तरी भारतके राजवंशोंका इतिहास खंड २, पृ० ८८९ तथा ९१४।

प्रशस्ति सुनायी। इसमें मल्लिकार्जुन द्वारा राजपितामहकी उपाधि ग्रहणकी घटनाका उल्लेख था।[1] कुमारपाल यह अपमान न सह सका और सभामें चतुर्दिक देखने लगा। आश्चर्य सहित कुमारपालने देखा कि उसका सचिव आम्बड हाथ जोड़े खड़ा है।[1] राजसभा जब समाप्त हो गयी तो कुमारपालने आम्बडको बुलवाया और सभामें उसकी उक्त मुद्रा-विशेषका अभिप्राय पूछा। आम्बडने कहा कि महाराजाके चारों ओर देखनेका अर्थ मैंने यही समझा कि आप जानना चाहते हैं कि इस सभामें कोई ऐसा योद्धा है जो मल्लिकार्जुनके असत्य अभिमानका मर्दन कर सके। इस कार्यके लिए मैं ही अपनी सेवाएं अर्पित करना चाहता हूं और इसी आशयसे मैंने उक्त भाव व्यक्त किया था। तत्काल ही कुमारपालने अपनी विभिन्न सेनाके अधिकारियों तथा अधीनस्थोंको बुलाकर मल्लिकार्जुनके विरुद्ध युद्ध करनेके लिए आदेश दिया।

कालविनी[2] नदी पारकर तथा अनेकानेक अभियानोंके अनन्तर आम्बड अभी अपना सैनिकशिविर स्थापित ही कर रहा था कि मल्लिकार्जुनने उसपर आक्रमणकर पदाक्रान्त कर दिया। इस प्रकार पराजित होकर वह नदीके उस पार चला गया। यहां आ उसने काले वस्त्र धारण किये सेनामें काले छत्रोंसे कार्य सम्पादनका आदेश दिया तथा काले रंगके

---

[1] शिलाहार राजाओंमें यह उपाधि प्रचलित थी।—बम्बई गजेटियर, १३ ४३७ टिप्पणी।

[2] इसका शुद्ध कम्बद है। इसका संस्कृत रूप कदम्बद तथा कम्बक है। यह शिवनी तथा नासिकसे प्रवाहित होनेवाली कावेरी नदी है। मालिक कैफ इम्पलिमसनमें इसी नदीका नाम "कारबेना" अंकित है। बम्बई गजेटियर। १६, ५७१। कावेरीका संस्कृत रूप ही "कालविनी" तथा "कारावेना" है। सम्भवतः पेरिप्लसने इसी कावेरीको "अकावेरी" लिखा है।

चमेकी व्यवस्था की। यह सुनकर कुमारपाल उस प्रदेशमें आ गया था और उसने यह स्थिति देखी। उसे विदित हुआ कि यह आम्बडका ही सैनिक शिविर है। पराजयसे आम्बडका जैसा अपमान हुआ था उससे लज्जित होकर उसने काले वस्त्रोंको धारण किया था। कुमारपाल अपने पराजित सेनापतिकी इस भावनासे अत्यधिक प्रभावित हुआ और उसने शक्तिशाली शस्त्रों सहित दूसरी सेना आम्बडकी सहायतार्थ फिर भेजी। इसप्रकार साधनसम्पन्न होकर आम्बडने पुनः कावेरी नदी पारकर एक मार्गका निर्माण किया और मल्लिकार्जुनकी सेनापर आक्रमण किया। आम्बडका ध्यान मल्लिकार्जुनपर ही विशेष रूपसे था। आम्बड अपने हाथीकी सूंडसे उसके मस्तकपर चढ़ गया और मल्लिकार्जुनको युद्धके लिए ललकारा। युद्धमें उसने मल्लिकार्जुनको नीचे गिराकर उसका सिरच्छेद कर दिया।[1] जिन अधीनस्थ राजाओंको सहायतार्थ लिए कुमारपालने भेजा था वे नगरको लूटनेमें लग गए। इसप्रकार कोंकणमें कुमारपालके आधिपत्यकी स्थापनाकर आम्बड अणहिलपुर लौटा। उसने राजसभामें बहत्तर राजाओंकी उपस्थितिमें मुकुटरहित मल्लिकार्जुनका सिर अभिवादन सहित कुमारपालके सम्मुख उपस्थित किया। उसने मल्लिकार्जुनके कोषागारसे प्राप्त विशाल धनराशि भी सम्मुख रख दी।[2] इससे प्रसन्न होकर कुमारपालने मल्लिकार्जुनसे छीनी गयी "राजपितामह"

---

[1] प्रबन्धचिन्तामणिके अनुसार मल्लिकार्जुनको चौहानराज सोमेश्वरने मारा था जो उस समय कुमारपालकी राजसभामें रहता था।—जर्नल आव रायल एशियाटिक सोसायटी १९१३ पृ० २५४-५।

[2] शृंगार कोटी साड़ी १ माणिक्यपछेवड़ २ पापक्षय हार। ३ संयोग सिद्धि सिप्रा ४ तथा हेमकुम्भ १२ तथा मौक्तिकमाला सेर ६ चतुर्दन्त हस्ती १ वाजिन १२० कोटी मार्ड १४ द्रम्मस्य द्रव०। प्रबन्धचिन्तामणि पृ० २०१।

की उपाधि आम्रभट्टको प्रदान करते हुए उसे सम्मानित किया ।[1]

मल्लिकार्जुनके समयके दो शिलालेखोंका पता चलता है जिनकी तिथि क्रमशः ईस्वी ११५८ (शक १०७८) तथा ईस्वी ११६० (शक १०८) है। इनमेंसे प्रथम चिपलूनमें मिला है और दूसरा बेसिनमें। मल्लिकार्जुनकी पराजय तथा उसके अन्तका समय ईस्वी सन् ११६० तथा ११६२ है क्योंकि सन् ११६२में ही उसके उत्तराधिकारी अपरादित्यका शासनकाल प्रारम्भ हो जाता है। कुमारपालकी सहायता मल्लाळके विरुद्ध करनेवाले अर्बुद परमार यशोधवलने इस युद्धमें भी उसकी सहायता की थी। आबूकी तेजपाल प्रशस्ति (वि सं १२८७)में कहा गया है कि "जब यशोधवल क्रोधाभिभूत होकर समरभूमिमें उद्यत हो गया उस समय कोंकणनरेशकी रानियां अपने कमल समान नेत्रोंसे अश्रुपात करने लगीं।[2] इस मल्लिकार्जुनका परिचय तथा विवरण उक्त दो शिलालेखोंसे सटीक प्राप्त होता है कि वह शीलहार राजवंशका था।[3] श्रीभगवानलालका भी मत है कि मल्लिकार्जुनका अन्त सन् ११६ तथा ११६२ ईस्वीके बीच हुआ था।

काठियावाड़पर सैनिक अभियान

मेरुतुंगने कुमारपालके अन्य जिस युद्धका उल्लेख किया है वह सुम्बर या सौंसरके विरुद्ध हुआ था। इस अभियानका नेतृत्व महामात्य उदयनने

---

[1] प्राकृत द्व्याश्रय काव्यमें इस सैनिक विजयका काव्यमय वर्णन छठें सर्गके ५९से ७० तक श्लोकोंमें दिया गया है।

[2] इपि इंडि० : खंड ८ पृ २१६, श्लोक ३१।

[3] प्रबन्धचिन्तामणि पृ० १२९-३१।

बम्बई गजेटियर : खंड १, उपखंड १, पृ० १८६, सुकृत कीर्ति कल्लोलिनी गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज खंड १० परिशिष्ट पृ ९०।

भगका उल्लेख किया है जो बाहड़के छोटे भाई चाहड़के नेतृत्वमें किया गया था। चाहड़की अतिमुक्तहस्तता लोगोंको विदित थी किन्तु कुमारपालने परामर्श देकर उसीको सेनापतित्व करनेके लिए चुना। सांभर पहुँचनेपर चाहड़ने बाबरानगरके किलेको अपने अधिकार तथा नियन्त्रणमें कर लिया किन्तु उसदिन लूटपाट न की क्योंकि उसी रात्रिको सात सौ कुमारियोंका विवाह होनेको था।[1] दूसरे दिन चाहड़की सेनाने किलेमें प्रवेश किया तथा नगरमें लूटपाट मचा दी। इसप्रकार इस प्रदेशमें कुमारपालका प्रभुत्व घोषित किया गया। उक्त बाबरानगरका पता नहीं लग सका है। सम्भवतः उक्त स्थान सांभरका नहीं अपितु काठियावाड़का बाबरियावाड़ है। इस सैनिक विजयके उपरान्त चाहड़ पाटन लौटा। कुमारपाल चाहड़से बहुत प्रसन्न हुआ किन्तु अमितव्ययके लिए दोषारोपण करते हुए उसे 'राज घरट्ट'की उपाधि दी।

कुमारपालको साँभरपर आक्रमण करनेके बाद जिस नये आक्रमणके संकटकी सूचना मिली वह थी चेदि या डाहलके राजा कर्ण द्वारा।[2] जब कुमारपाल सोमनाथकी तीर्थयात्रा करने जा रहा था उसी समय गुप्तचरोंने उसे उक्त आक्रमणकी सूचना दी। इस आक्रमणकी सूचनासे थोड़े कालके लिए कुमारपाल किंकर्तव्यविमूढ़ रह गया। इसी बीच एक घटना-विशेष हुई। कर्णके नेतृत्वमें उसकी सेना रात्रिमें आगे बढ़ रही थी। कर्ण राजा गलेमें स्वर्णका हार पहने हाथीपर बैठकर यात्रा कर रहा था। रात होनेके कारण उसकी आँखोंमें निद्रा भरी थी। संयोगसे एक वृक्षकी डालमें उसका हार फँस गया और वृक्षमें लटककर वहीं उसकी मृत्यु हो गयी।

---

[1] एक ही दिनमें इतने अधिक विवाहकी प्रथा या तो कडवा कुनबी या मारवाड़ियोंमें थी और यह अब तक प्रचलित रही है।

[2] प्रबन्धचिन्तामणि : पृ० १४६ तथा उत्तरीभारतके राजवंशोंका इतिहास पृ० ७१९।

भी उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त कुमारपालने उन राजाओंको भी पराजितकर अपना प्रभुत्व स्थापित किया जिन्होंने विद्रोह किया अथवा शत्रुके पक्षको ग्रहणकर उसकी सहायता की। इसप्रकार चन्द्रावतीके विक्रमसिंह, काठियावाडके सौराष्ट्रराज तथा अन्य राजाओंको कुमारपालने न केवल पराजित किया अपितु उनपर अपना पूर्ण आधिपत्य भी स्थापित किया।

जयसिंहके "कुमारपालचरित" तथा हेमचन्द्रके 'द्व्याश्रय'में कुमारपालकी विभिन्न सैनिक विजयोंकी गौरवगाथाके जो विशद वर्णन मिलते हैं उनसे विदित होता है कि उसने किसप्रकार पहले सौराष्ट्र विजय और फिर कच्छ विजयके पश्चात् यवनाधिपको रणभूमिमें पदच्युत और पराजित किया। इसके अनन्तर कुमारपालने पश्चिमोत्तर दिशामें आगे बढ़कर मूलस्थानके मूलराजको भी अपने अधीन किया। यह मूलस्थान आधुनिक मुल्तान है। काठियावाड़में कुमारपालके सैनिक अभियान और अन्तमें उसकी महान विजयके सुस्पष्ट विवरण अनेक जैनग्रन्थोंमें मिलते हैं। यही नहीं इन जैनग्रन्थोंमें वर्णित प्रसंगोंकी पुष्टि उत्कीर्ण लेखों द्वारा भी होती है। इस तथ्यको सिद्ध करनेके लिए बहुतसे प्रमाण हैं कि अपने समयमें कुमारपालका समस्त गुजरात तथा पश्चिमोत्तर भारतपर एकछत्र प्रभुत्व स्थापित था। द्व्याश्रय काव्यमें कुमारपालके दिग्विजय वर्णनका विश्लेषण करनेपर हम इसी निष्कर्षपर पहुंचते हैं कि उसकी मान्यता तत्कालीन भारतके एक महान प्रभुसत्तासम्पन्न शक्तिके रूपमें विद्यमान थी। वस्तुतः बारहवीं शताब्दीमें भारतमें कोई ऐसी एक संगठित तथा शक्तिशाली राज्यशक्ति न थी जो उसकी समानता करती।

कुमारपालकी राज्यसीमा

हेमचन्द्रके "महावीरचरित"में कहा गया है कि कुमारपालकी विजयों-का क्षेत्र उत्तरमें तुरिष्कान्त पूर्वमें गंगा दक्षिणमें विन्ध्यपर्वत तथा पश्चिममें

समुद्र तक व्याप्त था।[1] धर्मसिंहने कुमारपालकी अनेक विजयोंका विवरण देकर उसके दिग्विजय क्षेत्रका भी उल्लेख किया है। उनका कथन है "आगंगाम ऐन्द्रियं आविन्ध्याम याम्याम आसिन्धुपश्चिमाम आतुरुष्काम च कौबेरीम चौलुक्य साधयिष्यति। अभिप्राय यह कि कुमारपालके दिग्विजयका क्षेत्र पूर्व दिशामें गंगा नदी दक्षिणमें विन्ध्य पर्वत पश्चिममें सिन्धु तथा उत्तरमें तुरुष्कभूमि तक विस्तृत था।

कुमारपालकी इन सैनिक विजयोंपर विचार करनेसे स्पष्ट है कि उसका आधिपत्य हरिद्वारके निकट गंगा तक सुदृढ़तापूर्वक स्थापित था। उसने कान्यकुब्ज प्रदेशको पराजितकर इस अंचलके सभी राजाओंको अपने अधीनस्थ कर लिया था। दक्षिणमें कुमारपालने मालवराजको पराजित कर एक बार पुनः इस प्रदेशको चौलुक्य साम्राज्यके अन्तर्गत मिला लिया था। देशमें कोई भी दूसरी ऐसी शक्ति नहीं थी जो इस समय चौलुक्य प्रभुत्वका विरोध करती अथवा उसको चुनौती देती। दक्षिणमें कुमारपालने विन्ध्यपर्वत तक विजय प्राप्त कर ली थी और उस क्षेत्रमें उसका एकछत्र प्रभुत्व था। यह बात तत्कालीन ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें तो वर्णित है ही कुमारपालके सैनिक अभियानोंसे भी पुष्ट होती है।

यह हम पहले ही देख चुके हैं कि कुमारपालने मुलतानके राजाको हटाकर श्रीनगरपर भी विजय प्राप्त की। इसके बाद वह पंचनदपति (पंजाबके राजा)के विरुद्ध सफल युद्ध कर जालन्धर तथा मरुस्थानके मार्गसे लौटा। कुमारपालचरित तथा द्वयाश्रय महाकाव्यका यह विवरण यदि अक्षरशः न भी माना जाय तो भी उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इतना तो कमसे कम स्वीकार करना ही पड़ता कि कुमारपालके राज्यशासन

---

[1] स कौबेरीमातुरुष्कमैन्द्रीमात्रिदशापगाम
याम्यामाविन्ध्यमावार्धि पश्चिमां साधयिष्यति—महावीरचरित ४:५२।

पंजाब तथा पश्चिमोत्तर भारतके पहाड़ी राज्यों जिनमें श्रीनगर भी सम्मिलित था इसमकार चौलुक्य प्रभुत्व प्रतिष्ठित किया था। इस प्रकार ये क्षेत्र महान चौलुक्यराज कुमारपालके अधीन थे । राज्यका पश्चिमी सीमान्त समुद्र बताया गया है। इसका वर्णन पहले ही हो चुका है कि कुमारपालने सौराष्ट्र प्रदेशमें अनेक सैनिक अभियानों द्वारा देशके उस भागको अपने राज्याधीन कर लिया था । इस दिशामें तो महान चौलुक्य शक्तिसे प्रतियोगिता करनेवाली कोई राज्यशक्ति थी ही नहीं। सिन्धुराज को उसकी प्रभुता मान्य थी। इसप्रकार चौलुक्यराज कुमारपालकी ऐसी महत्ता और सत्ता स्थापित हो गयी थी वैसी किसी चौलुक्य राजाकी अब तक न हो पायी थी। कुमारपालके प्रचुर संख्यामें प्राप्य शिलालेख ताम्रपत्र दानलेख और उनके प्राप्तिस्थान सभी एकमतसे उसकी इसी व्यापक और विशाल राज्य-सीमाकी स्थितिका समर्थन करते हैं। इस प्रकार बाह्य तथा आभ्यन्तर सभी प्रमाणोंसे यह सिद्ध होता है कि पूर्व दिशाम गंगा पश्चिममें समुद्र उत्तरमें मुलतान तथा श्रीनगर और दक्षिणमें विन्ध्यपर्वतके विस्तृत एवं व्यापक प्रदेशोंमें कुमारपालका आधिपत्य सुदृढ़ तथा स्थापित था। प्रबन्धकारोंके अनुसार हेमचन्द्र द्वारा उल्लिखित राज्य सीमाके अन्तर्गत कौंकण कर्णाटक लाट गुर्जर, सौराष्ट्र कच्छ सिन्धु उच्च भामेरी मारवाड़ मालवा मेवाड़ कीर जांगल सपादलक्ष दिल्ली जालन्धर, राष्ट्र अर्थात् महाराष्ट्र आदि अठारह देश थे। गुजरात के साम्राज्यकी सीमा प्रदर्शित करनेवाली इतनी व्याप विशाल रेखा भारतके मानचित्रमें केवल कुमारपालके पराक्रमने अंकित की थी।

चौलुक्य साम्राज्य चरमसीमापर

मेरुतुंगने लिखा है कि कुमारपालकी आज्ञाकी मान्यता कर्ण लाट सौराष्ट्र कच्छ सिन्धु, मालवा कौंकण जांगल मेवाड़ सपादलक्ष और जालन्धरमें होती थी और इन राज्योंमें उसने "सप्तव्यसन"पर प्रति

वैसाही लगा दी थी।[1] इससे भी कुमारपालकी राज्यसीमाका ठीक ठीक पता लग जाता है और उसकी पुष्टि हो जाती है। चौलुक्य साम्राज्यपर उसके संस्थापक मूलराजके समयसे यदि विचार किया जाय तो विदित होगा कि मूलराजने सारस्वत मंडल (सरस्वती नदीकी घाटीमें) अणहिल पाटकको अपनी राजधानी बनाकर राज्यकी स्थापना की। इस प्रदेशमें उसने सत्यपुर मंडल जो जोधपुर या मारवाड़ राज्यका आधुनिक सांचोर प्रदेश है सम्मिलित किया। उसके पुत्र भीम प्रथमने कच्छमंडल (कच्छ)का विजित किया। इसके बाद कर्णने लाटमंडल दक्षिण गुजरातको तथा जयसिंहने सौराष्ट्र मंडल (काठियावाड़) अवन्ति मालवासमी महदवाड जाका प्राय सम्पूर्ण मालवा दधिपद्र मंडल आधुनिक दोहादका चतुर्दिक प्रदेश आधुनिक जोधपुर तथा उदयपुरके अनेक मंडलोंको चौलुक्य साम्राज्य में मिलाया। जयसिंह सिद्धराजके उत्तराधिकारी कुमारपालने इस व्यापक एवं विस्तृत राज्यमें न केवल अनेक प्रदेशोंपर विजय प्राप्त कर उन्हें अन्तर्भुक्त किया वरन् आधुनिक गुजरात काठियावाड़ कच्छ मालवा और दक्षिणी राजपूतानेके सुदूर प्रदेशोंमें अपना आधिपत्य स्थापित करनेमें भी सफलता प्राप्त की। सारांशमें कहा जा सकता है कि कुमारपालके राज्यकालमें चौलुक्य साम्राज्य अपनी चरमसीमापर प्रतिष्ठित एवं मान्य था।

---

[1] प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश : पृ० ९५—'कर्णाटे गुर्जरे लाटे सौराष्ट्रे कच्छ सैन्धवे। उच्चायां चैव भंभेर्यां मारवे मालवे तथा कौङ्कणेषु तथा राष्ट्रे कीरे जालन्धरे पुनः। सपादलक्षे मेवाडे दीप्यां जालन्धरेऽपि च। अभूतानामवधं लसत्यसमनानां निषेधनम्। व्यसनं व्याप पदस्या दत्तीभवकर्मम्।

राज्य और शासन व्यवस्था

गौगुप्तकालमें गुजरात तथा पश्चिमोत्तर भारतके विभाग भूभागकी राज्यव्यवस्थाका इतिहास अध्ययन करने योग्य है। इस समयकी विभिन्न प्रशासकीय इकाइयों और अधिकारियोंके नाम ही नहीं मिलते अपितु उन इकाइयों द्वारा प्रादेशिक विस्तार तथा उनके शासन प्रबन्धकर्ताओंकि भी विवरण प्राप्त होते हैं। इसकी समाप्तीके अन्तमें भारत कालक्रमसे कामरूप तथा कश्मीरसे कन्याकुमारीपर्यन्त तक विभिन्न राज्यपदोंमें विभाजित था। इनमें कुछ राज्य बड़े थे तो कुछ छोटे। इनका शासन निरंकुश हिन्दू राजा जो अधिकतर राजपूत थे कर रहे थे। इस समय कोई ऐसी महान शक्ति न थी जो सम्पूर्ण देशको एकछत्र और एकसूत्रमें आबद्ध कर सकती। फिर भी प्राचीन परम्परा धर्म तथा जातिकी एकताका एक ऐसा सूत्र विद्यमान था जिसमें सभी राज्योंको साम्राज्यमें एकबद्ध किया जा सकता था। भारतीय साम्राज्यकी कल्पना देशके राजाओंकि सम्मुख थी। इसके अनुसार अधीनस्थ राज्योंका पददलन अनिवार्य न था। अपेक्षित था—केवल उनका अधीनस्थ होना और सम्राट या चक्रवर्ती-की प्रमुखताकी मान्यता स्वीकार करना। गौगुप्त शासन कालमें गुर्जरदेशमें राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था थी। यह तथ्य गौरन्त्र राजाओं-की सत्ता तथा महत्ता सूचक उपाधियों—महाराजा[1] राजाधिराज[2]

---

[1] गाला शिला० : सी० आ० खंड१ उपखंड २, पृ० ४०।
[2] पाली शिला० : इंडि० ऐंटि० खंड ११ पृ० ७०।

परमेश्वर,[1] परमभट्टारक[2] तथा महाराजाधिराजसे प्रमाणित और पुष्ट है। चौलुक्य राजे अपनेको गुर्जरधराधीश्वर कहते थे अर्थात् वे गुजरात प्रदेशके सर्वोच्च अधिपति थे।

राष्ट्रका स्वरूप

चौलुक्य राजवंशके संस्थापक मूलराजने सारस्वत मंडलमें अपना राज्य स्थापितकर अणहिल्लपाटकको (आधुनिक पाटन बड़ौदा) राजधानी बनाया। इसमें उसने सत्यपुर मंडल सांचोरके चतुर्दिक प्रदेशको जो आधुनिक जोधपुर मारवाड़ क्षेत्रके अन्तर्गत है मिलाया। उसके पुत्र भीमप्रथमने कच्छ मंडल कर्णने लाट मंडल दक्षिणी गुजरात तथा जयसिंहने सौराष्ट्र मंडल (काठियावाड़) अवन्ति सम्पूर्ण मालवा दधिपद्र मंडल (आधुनिक दोहदका चतुर्दिकप्रदेश) और आधुनिक जोधपुर, उदयपुर राज्यके अनेक भागोंको राज्यमें मिलाकर चौलुक्य राज्यका विस्तार किया। जयसिंहके उत्तराधिकारी कुमारपालने इन सुदूर प्रदेशोंपर जो आधुनिक गुजरात काठियावाड़ कच्छ मालवा और दक्षिणी राजपूतानाके प्रदेश थे अपनी प्रभुसत्ता बनाये रखनेमें सफलता प्राप्त की। इससे स्पष्ट है कि वे सभी शासक साम्राज्य निर्माता थे। अन्य प्रदेशोंको अपने राज्यमें इन्होंने निरन्तर मिलाया और सुदूर प्रान्तों तक अपनी सत्ता स्थापित की। चौलुक्योंकी राष्ट्र व्यवस्था नियन्त्रित राजतन्त्रात्मक थी। आधुनिक पाश्चात्य राजनीतिके सिद्धान्तानुसार प्रभुसत्ता सम्पन्न राजशक्तिको व्यवस्था तथा विधान निर्माण का अपरिमित अधिकार होता है। नियन्त्रित राजतन्त्रसे यह अभिप्राय है कि यहां विधान-व्यवस्थामें राजा ही सर्वाधिकारी नहीं अपितु उसका यह अधिकार यहांकी संसद अथवा लोकसभामें भी सन्निहित रहता है।

---

[1] वही।

[2] वही।

[3] जालोर प्रस्तर लेख : इंडि० एंटि० खंड ११ पृ० ५४-५५।

प्राचीन भारतमें राजाओं अथवा जनताको नवीन विधान बनाने अथवा विद्यमान विधानमें परिवर्तन करनेका अधिकार न था। आदिकालमें ब्रह्माने प्रथम राजा मनुको उन समस्त आवश्यक राजनियमोंको निश्चितकर प्रदान कर दिया था जो लोकशासन व्यवस्थामें पथप्रदर्शन किया करते थे। यह ईश्वरीय स्मृति निर्मित राजनियम ही भारतके विभिन्न राज्योंमें प्रचलित था। इससे निरंकुश राजाओंकी स्वेच्छाचारितापर कड़ी सीमा तक अंकुश लग जाता था। इससे स्वेच्छाचारी राजाओंकी निरंकुश व्यवस्था भी नियन्त्रित हो जाती थी। इस प्रकार इसकी और बादकी शतीमें भारतके बहुतसे निरंकुश राज्योंमें वस्तुतः नियन्त्रित राजतन्त्र व्यवस्था विद्यमान थी और इसके अन्तर्गत सुशासन था तथा जनता प्रसन्न थी।[1]

नियन्त्रित अथवा अनियन्त्रित राजसत्ता

साधारणतः यह धारणा प्रचलित है कि भारतीय राजा निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी हुआ करते थे। डाक्टर विंसेंट स्मिथ तथा श्री एस० एम० एन० ईसाका यह मत है कि भारतीय राजा-महाराजा अनियन्त्रित शासक थे। डाक्टर बर्नीका कथन है कि निरंकुश राजाका स्वरूप हिन्दू मस्तिष्ककी कल्पनाके अनुरूप न था[2]। अर्थशास्त्र तथा हिन्दू धर्म शास्त्रोंमें लेखक शासकपर लगे विभिन्न अंकुशों और प्रतिबन्धोंका उल्लेख है। इसपर भी यदि कोई राजा स्वेच्छाचारिताका अनुसरण करता तो प्रजामें असन्तोष उसके विरुद्ध गुप्त विद्रोह तथा दूसरे राजाको सिंहासनारूढ़ करनेका मार्ग खुल जाता था। इन परिस्थितियोंमें प्रायः कोई राजा पूर्णतः निरंकुश नहीं हो पाता था। इसके अतिरिक्त भारतीय राजव्यवस्थाम

---

[1] डॉ० वी० वैद्य : मध्ययुगीन भारत खंड ३ पृ० ४८३।

[2] प्राचीन भारतमें जनशासन, पृ० ७४।

शासितके प्रति पितृप्रेमकी परम्परा भी प्राचीनकालसे चली आ रही थी। साधारणतः हिन्दू राजे अपनी प्रजाके प्रति वही स्नेह भाव रखते थे जैसी सहज स्नेहभावना एक पिता अपने पुत्रके लिए रखता है। यह भावना सिद्धान्त-मात्र ही न थी अपितु प्रयोगमें भी लायी जाती थी। भारतीय राजाओंने कठोर और क्रूरताकी नीति द्वारा अपनी प्रजाका निर्दलन किया हो इसके बहुत ही कम उदाहरण मिलते हैं। उफीने अपने "जमैयत-उल-हिकायत"[1] में दीर्घजीवन बूटीकी एक मनोरंजक कथाका उल्लेख किया है जिससे विदित होता है कि मुसलिम बादशाहोंकी तुलनामें भारतीय राजामहाराजा अपेक्षाकृत दयालु हुआ करते थे। उनकी धारणा थी कि प्रजाका दमन करनेसे जन-अभिशापसे आततायी राजाओंकी आयु कम हो जाती है। इस कथाका चाहे जो भी महत्त्व हो इतना तो स्पष्ट है ही कि हिन्दूराजा प्राचीन परम्पराके अनुसार अपनी प्रजाके प्रति पुत्र जैसा स्नेह रखते थे। इसीलिए मध्यकालीन इतिहासमें कश्मीरके अतिरिक्त कहीं किसी आततायी राजाका उल्लेख नहीं मिलता।

इन परिस्थितियोंमें चौलुक्य राजे न तो निरंकुश राजे थे और न उनके अधिकार ही बहुत अधिक सीमित थे। राजकीय सत्तापर अंकुश तथा प्रतिबन्धोंके होते हुए भी चौलुक्य राजे प्रायः अपनी इच्छाके अनुसार कार्य करते थे। महामात्यों और सचिवोंके परामर्शसे उनकी नीति निर्देशित होती अवश्य थी किन्तु उसको स्वीकार करनेके लिए वे बाध्य न थे। इस प्रकार एक शब्दमें उन्हें हितैषी स्वेच्छाचारी शासक कहा जा सकता है।

राज्यमें कुलीनतन्त्र

द्वयाश्रय तथा प्रबन्धचिन्तामणिमें जनहितकार्योंका ऐसा विषम एवं

---

[1] इलियट२ पृष्ठ १७४।

वर्णन हुआ है जिससे स्पष्ट है कि यहाँका राजा प्रभुसत्ता सम्पन्न था। उसके पार्श्वमें श्वेत परिधानवाले जैनधर्मके आचार्यों अथवा ब्राह्मणोंका समूह रहता था। उसके एक ओर राजपूत योद्धा उपस्थित रहते जो युद्धभूमिमें अपनी वीरता तो दिखाते थे साथ ही मन्त्रि-परिषद्में महत्त्वपूर्ण परामर्श भी दिया करते थे। इसके बाद वणिक् मन्तरवराका भी उसकी सभामें सम्मिलित था, जो यद्यपि शान्तिप्रिय धन्धोंमें लग गये थे फिर भी उनकी नसोंमें अभी तक क्षत्रिय रक्त प्रवाह था। किनारेकी ओर एक मंडलमें प्रमुख योद्धा राजकीय उच्च अधिकारी भाट-बन्दीजन जिनकी वाणीमें बल था तथा शान्तिप्रिय शिल्पियोंका समूह पुष्प-फलादि भेंट अर्पित करता दृष्टिगोचर होता था। इसके पृष्ठभागमें पहाड़ी प्रान्तके आदिवासी भील आदि थे जिनका रंग काजलसा काला था। इन्हें देखकर भय उत्पन्न होता था किन्तु यही धनुर्धारी भील उनके रक्षक थे।[1] मान्य ग्रन्थकारोंके उक्त विवरणसे राज्यके तत्कालीन अधिकारियों एवं प्रमुख वर्गों तथा जातीय तत्त्वोंका परिचयबोध हो जाता है। राजसभामें सर्वप्रथम ब्राह्मण तथा श्वेत वस्त्रोंकी पोशाकमें जैन पंडितोंका उल्लेख मिलता है तो द्वितीयतः हमारी दृष्टि राजपूत योद्धाओंकी ओर आकृष्ट हो जाती है जो रणभूमिमें अपना शौर्य दिखलाते थे तथा मन्त्रि-सभामें परामर्शका भी कार्य करते थे। तृतीयतः वणिक् "मन्तरवर्ती"का भी उल्लेख मिलता है जो यद्यपि 'शान्तिप्रिय व्यवसाय' करते थे फिर भी जिनकी धमनियोंमें क्षत्रिय रक्त अब भी विद्यमान था। अन्तमें हमें चारणों द्वारा वर्णन करनेवाले भाटों तथा शान्तिप्रिय शिल्पियोंका वर्णन मिलता है।

सामन्तवादका अस्तित्व

राज्यमें ब्राह्मणोंकी स्थिति धर्मिमानी प्रतिष्ठित और सम्मान्य थी। चौलुक्य राजाओंने पुण्यार्जनके लिए ब्राह्मणोंको भूमिदान दिया

---

[1] फोर्बस : रासमाला, पृ० २३०-३१।

ा। भूमिदानका दूसरा उद्देश्य पंच महायज्ञ बलि चरु, विश्वदेव अग्निहोत्र तथा अतिथि यज्ञ था। इसके अतिरिक्त इसीकालमें सर्वप्रथम मोढ़ ब्राह्मण शासनके विभिन्न विभागोंमें विशेषतः महाक्षपटलिकके ऊपर नियुक्त किये गये थे।[1]

राजपरिवारके सदस्योंको भी जमीन-जागीर देनेकी प्रथा थी। कुमारपालके सम्बन्धमें भी ऐसा ही कहा जाता है। सोलंकी सम्राटने कुम्हार अलिंगको सात सौ ग्रामोंका दानपत्र दिया था। उक्त कुम्हारने अपने जन्मकुलसे लज्जित होकर अपना उपनाम 'सगरा' रखा जो बादमें भी उसके वंशका बोधक एवं परिचायक रहा।[2] यह ध्यान देने योग्य बात है कि एक बघेलके सिवा सैनिक सेवाके निमित्त बंध-बंधओंके लिए किसीको भी स्थायीरूपसे भूमि नहीं प्रदान की गयी। गुजरातकी मुख्य भूमिमें जितने किले थे उनमें राजाकी ही सेना रहती थी। सामन्तों और सरदारोंका उनमें हस्तक्षेप न था। प्रायः सभी राजपूत घरानेमें जिनके प्रधान बड़े बड़े जागीरदार तथा शासक होते थे उन्हें अणहिलपुरके राजा द्वारा भूमि देनेका उल्लेख कहीं नहीं मिलता। इसमें एक अपवाद भीलोंका है जिनका

---

[1] इंडि॰ ऐंटी॰ खंड ११ पृ॰ ७१। भीमदेवके अनुसार कुम्पारेश्वर कुलका "मोढ़परिवार"का सदस्य था। भूलराजके काडी शिलालेखमें जिस प्रकार मोढ़ेरा "श्री मोढ़ेरा" लिखा गया है उससे विशेष पवित्रताका भाव विदित होता है। इंडि॰ ऐंटी॰ खंड ६, पृ॰ १९१। अब भी मोढ़ेरामें मोढ़ ब्राह्मणों तथा बनियोंकी कुलदेवीका एक मन्दिर विद्यमान है। इस प्रकार मोढ़ तथा मोढ़ेराकी अपनी प्राचीन परम्परा है तथा इनका उल्लेख उत्तरीय लेखोंमें भी मिलता है। कुमारपालके परामर्शदाता, पथप्रदर्शक तथा जैन महर्षि हेमचन्द्र मोढ़ ही थे। प्रबन्धचिन्तामणि : पृ॰ १२७।

[2] तेषु निजान्वयेन लज्जमाना अद्यापि सगरा इत्युच्यन्ते।— प्रबन्धचिन्तामणि प्रकाश चतुर्थ पृ॰ ८०।

कथन है कि उन्होंने चौलुक्य वंशके अन्तिम राजा कर्ण द्वितीयसे भूमि प्राप्त की थी।

इसीप्रकार महाकाव्य प्रबन्धचिन्तामणि तथा चौलुक्योंके अनेक विवरण पत्रोंमें मूलराजकी राजसभामें युवराज और महामण्डलेश्वरका उल्लेख मिलता है। कुमारपालके बहनोई कृष्णदेवका (कान्हदेवका) कथन एक बड़े सामन्तके रूपमें हुआ है जिसके अधीन भारी सेना भी थी।[1] जब सामन्त उदयन काठियावाड़में सौराष्ट्रके विरुद्ध सैनिक अभियान कर रहा था उस समय जब वह गुजरातमें पहुंचा तो वहां उसने सभी महामण्डलेश्वरोंको एकत्र किया। ये महामण्डलेश्वर और कोई नहीं सभी प्रदेशोंके प्रधान थे। उन मंडलीक राजाओंका भी उल्लेख मिलता है जो अनहिल पुरकी राजसत्ता को स्वीकार करते थे किन्तु उनके प्रदेश गुजरातके अन्तर्गत नहीं थे। सामन्त सैनिक अधिकारी थे और उन्हें राजकोषसे वेतन मिलता था। उसकी सेनामें जितने सैनिक रहते थे उसीके अनुसार उसका पद होता था।[1] यही पद्धति बादमें दिल्लीके मुगल सम्राटोंके कालमें प्रचलित हुई[2]। यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि चौलुक्य राजाओंके शासनकालमें अनेकानेक उच्च सैनिक अधिकारी जो मानो स्वतन्त्र सेना भी रखते थे वणिक (बनिया) वर्गके थे। इन लोगोंमें वनराज तथा गुजरातके मन्त्री जाम्ब जयसिंहके सेवक मुंजाल और कुमारपालके मन्त्र उदयन और उसके पुत्रके नाम उल्लेखनीय हैं।

आभिजात सत्ताकी प्रमुखता

इसप्रकार स्पष्ट है कि जागीरदार राजपूतोंके वर्चस्वके अतिरिक्त वणिक या वैश्योंका भी राजनीतिक क्षेत्रमें प्रबल प्रभाव था। वस्तु

---

[1] प्रभावकचरित २२ अध्याय पृ० १९७ "तस्यास्ति कृष्णदेवाख्यः सामन्तोऽनेकपत्तिमान्"।

शिलालेखों तथा निबन्धोंमें "सामन्त" शब्दका बराबर प्रयोग हुआ है।

प्रवेश ही नहीं इनके हाथ शासनसूत्र भी था। ऐसे लोगोंमें प्रागवत, जो अब पोरवाड कहे जाते हैं तथा मोढ प्रसिद्ध हैं।[1] श्री एच० डी० सनकालियाका यह मत है कि "प्रोवाता" नामक राजपूत जातिका अब अस्तित्व नहीं किन्तु इनका अस्तित्व आधुनिक पोरवाड वनियोंमें दृष्टिगत होता है। चौलुक्योंके अधीन शासकके रूपमें इनका उल्लेख अनेक शिलालेखोंमें हुआ है। इनमें वस्तुपाल तथा तेजपाल[2] जिन्होंने देलवारा मन्दिरका निर्माण कराया था तथा अपने सम्बन्धियोंके अनकानेक लेख उत्कीर्ण कराये थे। ये और इनके पूर्वज श्वेताम्बर जैनधर्मके आधारस्तम्भ होनेके अतिरिक्त राजाके योग्य सचिव भी थे।

यशपालका तत्कालीन नाटक "मोहराजपराजय" राजधानी अनहिलपुरमें वणिकोंकी प्रमुखताका उल्लेख करता है। इसमें जो विवरण किये गये हैं उनके अनुसार यहां कोटिश्वरों तथा लक्षाधिपतियोंके भवनोंपर ऊंची पताकाएं तथा घंटे लगे रहते थे। उनका वैभव राजकीय वैभवके ही समान था। उनके पास हाथी घोड़े भी रहते थे। कुबेरने ६ करोड स्वर्ण मुद्रा आठ सौ तोला रजत ८ तोला बहुमूल्य रत्न दो सहस्र कुम्भ अन्न दो सहस्र तेलकी वारी ५ हजार अश्व एक सहस्र हाथी ८० हजार गाय ५० हल गाडी गृह आदि रखनेकी प्रतिज्ञा की थी।[3] ये जैन वणिक

[1] प्रागवत सम्भवतः पोरित्यावरनावा संस्कृत रूप है जिसका उल्लेख कुमारपालकालीन नाडोलपट्टमें हुआ है।—इंडि० ऐंटी० खंड १० पृ० २०१।

[2] आर्कलाजी आव गुजरात अध्याय १० पृ० २१०।

[3] गुरुपादमूलकमले गृहमेविजनोचितानिमाश्रियमाण्
प्रतिपद्यत कुबेरो वैराग्यतरंगितस्वान्तः।
तद्यथा—जन्तून् हन्मि न वच्मि मानृतमहं स्तेयं न कुर्वे परस्त्रीर्नो
यामि तथा त्यजामि मदिरां मांसं मधुप्रसवम्

राज्यमें बहुत प्रभावशाली थे। यह पहले ही देखा जा चुका है कि कुमार पालके राज्यारोहणमें सत्ताधारी वणिकोंने इसमें योगदान दिया था। उसने परिग्रहपरिमाणव्रतके अन्तर्गत अपने धनधान्यकी सीमा निश्चित की थी।

यह स्थिति स्पष्ट बताती है कि राज्यमें जैन व्यवसायियों और वणिकोंका बहुत ऊंचा स्थान था। इसके दो कारण थे। एक था उनके पासकी विपुल सम्पत्ति तथा धनराशि और दूसरा कारण था उनका अधीनस्थ सेनाका होना। इसप्रकार निश्चयपूर्वक इस निष्कर्षपर पहुँचा जा सकता है कि उस समय सामन्तों अथवा जागीरदारोंके कुलीनतन्त्रकी प्रमुखता न थी अपितु वहां सम्पन्न प्रभावशाली जैन वणिकोंका अल्पजनाधिपत्य था जिसे धनिकतन्त्र कहा जा सकता है।

नागर शासन-व्यवस्था

हिन्दू राजतन्त्रका आधार, सैनिक शासनतन्त्र न था अपितु उनके सर्वत्र नागर अथवा शान्तिमय व्यवस्थाका प्राधान्य था।[1] इस शासन

नस्ते माथि परिग्रहे मम पुनः स्वर्णस्य षट् कोटय—
स्तारस्याष्ट तुलाशतानि च महार्घाणां मणीनां तथा १९.
कुम्भशाली सहस्रे द्वे प्रत्येकं स्नेहधान्ययोः
पंचायतानि वाहानां सहस्रमपि हस्तिनाम् ४०
अयुतानि गवामष्टौ पंच पंच शतानि तु
हलाहलपणां यान वाहनासन सामपि ।४१
पूर्वे कोटाग्रिमा ममोऽरियत्यस्तु पुरे मम
इतो नियमुक्तोपातो वर्धिष्णु वाग्मतासुन ४२
—मोहपराजय

[1] नरपतिपराधाप्यनुशिष्यमेदिनी
क्षेमेण सामन्त च सौहृदेन।

अधिकांश युद्ध भूमिलोभ अथवा राज्यविस्तारकी आकांक्षासे प्रेरित न होकर उच्च सिद्धान्तोंके लिए हुए। यह उच्च सिद्धान्त था स्वर्गकी प्राप्ति।[1] समुद्रगुप्तमें भी यही भावना परिलक्षित होती है। उसकी मुद्राएं इस तथ्यका स्पष्ट संकेत करती हैं।[2] प्रत्येक राजाका शासन सिद्धान्त मुख्यतः इसीपर आधृत था। हिन्दू राजा नागर या साधुनय राजकीय व्यवस्थाको पसन्द करते थे और उनके शासन प्रबन्धमें सैनिक-वादका प्राधान्य न था। इसका एक प्रमुख कारण यह भी था कि शासा एवं हिन्दू राज्यके दीर्घजीवी होनेके लिए परम्परागत सर्वमान्य राज नियमोंका पालन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य समझा जाता था।

चौलुक्य राजाओंका प्राचीन भारतीय राजाओंकी भांति यही महान ध्येय था कि विदेशी आक्रमणों अथवा आन्तरिक उपद्रवोंसे अपनी प्रजाकी रक्षा करना तथा अपने सीमान्तको व्यापक-विस्तृत बनाकर उन प्रदेशोंको अपने अधीनस्थ करना। वस्तुतः उनका राजनीतिक आदर्श राजा विक्रमादित्य था जिसने सभी दिशाओंके प्रदेशोंमें आक्रमण कर राजमंडलोंको अपना सेवक बना लिया था।[3]

चौलुक्य राजे राज्यमें सेना रखनेके अतिरिक्त सामन्तशाहीकी स्वीकृति भी देते थे। इसप्रकार सिद्धराजने अपने परिवारके एक सदस्यको एक भी भरवाकी सामन्तशाही प्रदान की थी। जब कुमारपाल अणी-

---

महीन्द्रैरुपितृक्त्या क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः
विविष्टपे स्थान लुब्धीति शाश्वतं। शान्ति पर्व : ९१

[1] हिन्दू पूर्वमिनिस्ट्रेशिव इन्स्टीट्यूशन अध्याय २, पृ० ७६।

[2] "राजाधिराजा पृथ्वीम् अवजित्य दिवं जयति अप्रतिवार्यवीर्यः"
जर्नल आव इंडियन हिस्ट्री: खंड १ उपखंड २, : स्टडीज इन गुप्ता हिस्ट्री",
पृ० १२।

[3] रासमाला अध्याय ११ पृ० २१४।

विदित होता है कि उसके समयमें सुदृढ़ केन्द्रीय तथा प्रादेशिक शासन व्यवस्था विकसित और विद्यमान थी। शासनका सर्वोच्च अधिकारी राजा था। वही सम्मान तथा उपाधियोंका अर्पण-वितरण किया करता था।[1] उसकी मुख्य रानी "पट्टमहिषि" कही जाती थी।[2] मुख्य राजकुमार अथवा युवराज राजाके बाद सबसे अधिक महत्त्वका व्यक्तित्व रखता था। राज्यके शासन संचालन तथा संपादनका कार्यभार उसके प्रमुख कर्मचारियोंमें था। यह पहले ही देखा जा चुका है कि सिंहासनारूढ़ होनेपर कुमारपालने अपनी पत्नी भोपालदेवीको पट्टरानी बनाया। राजाकी अस्वस्थता अथवा अनुपस्थितिमें य उसका कार्य करते थे।[3]

तत्कालीन लेखकोंकी रचनाओंमें राजाका वर्णन इसप्रकार मिलता है—प्रभुसत्ता सम्पन्न राजाका व्यक्तित्व राजकीय वैभवसे पूर्ण रहता था। उसके ऊपर श्वेत चमचमका राजछत्र रखा जाता था। उसके सिरके पृष्ठभागमें सुनहरे सूर्य मंडलका चित्रांकन चमकता रहता था। उनके गलेमें बहुमूल्य मोतियोंका हार तथा उसके हाथोंमें चमकते हुए हीरोंका कंकण रहता था। उसका व्यक्तित्व तथा आकृति भी असाधारण होती थी। उसके विशाल बाहुमें भाला तथा तलवार सुन्दर लगते थे। युद्धभूमिमें उसके नर्मोंसे अग्निवर्षा होती थी। युद्धभूमि का प्रचंड घोर निनाद भी उसे उसी प्रकार परिचित रहता जितना राजप्रासादका गम्भीर ध्वनियन्त्र। वह शस्त्रधारी होता था और साथ ही अभिषिक्त प्रधान। वह क्षत्रियपुत्र होता था और रानीका राजकुमार होता था।

---

[1] इंडि॰ एंटि॰ : खंड २, पृ॰ २१७।

[2] महारानी राजाके राज्याभिषेकके समय सिरपर सुवर्णपट्ट धारण करती थीं। इसलिए उसे "पट्टरानी" कहा जाता था।

[3] सी॰ वी॰ वैद्य मध्यकालीन भारतका इतिहास पृ॰ ४५८।
रासमाला : अध्याय ११ पृ॰ २११।

राजाके कर्तव्य

राजाके कर्तव्य मुख्यतः तीन प्रकारके थे। वह शासन परिषदका अध्यक्ष था। वह प्रधान सेनापति था और वही होता था न्यायाधिकरणका सर्वोच्च अधिकारी। कुमारपालप्रतिबोधके रचयिताने कुमारपालकी दिन चर्याका जो वर्णन किया है उससे राजाके विभिन्न कर्तव्यों तथा कार्योंका स्पष्ट परिचय मिलता है।[1] सोमप्रभाचार्यका कथन है कि राजा बहुत सबेरे ही उठ जाता था और पवित्र जैनधर्मके पंच नमस्कार मन्त्रका उच्चारण तथा देवताओं और गुरुओंका ध्यान करता था। इसके पश्चात् स्नानादिके अनन्तर वह राजप्रासादके मन्दिरमें जैन मूर्तियोंका वन्दन अर्चन करता था। यदि कभी समय रहता था तो अपने मन्त्रियोंके साथ वह हाथीपर कुमार विहार मन्दिर भी जाया करता था। वहां अष्टाविध पूजन करनेके अनन्तर वह हेमचन्द्रके पास जाता था। उनका वन्दन तथा धार्मिक शिक्षा ग्रहणकर वह मध्याह्नमें राजप्रासाद लौटता। तब वह साधुओंको भिक्षा देता और अपने मन्दिरकी जैन मूर्तियोंको प्रसाद भोग लगाता और फिर स्वयं भोजन करता। भोजनके पश्चात् वह विद्वानोंकी एक सभामें सम्मिलित होता और धार्मिक एवं दार्शनिक विषयोंपर उसमें विचार विमर्श करता। इसमें कवि सिद्धपाल प्रमुख थे जो कुमारपालको अनेकानेक प्रासंगिक कथाएं सुनाकर प्रसन्न करते थे। दिवसके चतुर्थ प्रहरमें राजसभामें राजा सिंहासनपर आसीन हो राज्यका कार्य सम्पादन करता। इसी समय वह जनताकी प्रार्थना सुनता तथा वादियोंपर निर्णय भी सुनाता था। कभी कभी वह राजकीय कर्तव्य भावनाके अन्तर्गत मल्ल-युद्ध हस्तियुद्ध तथा इसी प्रकारके अन्य आयोजनोंमें भी सम्मिलित होता था।

इसके पश्चात् वह सूर्यास्तके लगभग ४८ मिनट पूर्व सायंकाल भोजन

---

[1] कुमारपालप्रतिबोध पृ० ४२३ तथा ४७१।

करता। प्रत्येक पक्षकी अष्टमी और चतुर्दशीको वह केवल एक ग्रास ही भोजन करता। भोजनोपरान्त वह प्रासाद स्थित मन्दिरोंमें पुष्पोंसे अर्चना करता तथा नर्तकियों द्वारा देव मूर्तियोंके सम्मुख दीपक नृत्यका आयोजन कराता। इस पूजा और अर्चनाके अनन्तर वह वाद्ययन्त्र तथा चारणोंसे संगीत सुनता। इसप्रकार दिन व्यतीत कर वह मस्तिष्कमें ध्यानकी भावना रख विश्राम करने जाता था।[1]

यद्यपि कुमारपालप्रतिबोधसे बहुत ही सीमित और संक्षिप्त ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त होती है फिर भी विद्वानोंने यह स्वीकार किया है कि यह संक्षिप्त जानकारी पूर्णतः विश्वसनीय और प्रामाणिक है। उक्त ग्रन्थका लेखक कुमारपालका केवल समसामयिक ही न था अपितु उसके व्यक्तिगत जीवनकी अंतरंग बातोंका भी ज्ञाता था। कुमारपालके धार्मिक गुरु हेमचन्द्रने अपने कुमारपालचरित्रमें उसकी दिनचर्याका जो विवरण दिया है वह सोमप्रभाचार्यके वर्णनसे पूर्णतः साम्य रखता है।[2]

धीधोर्वसूत राजाके दैनिक जीवनके कार्यक्रमका जो विवरण दिया है वह भी उक्त वर्णनसे समानता रखता है। उसका कथन है कि राजाकी निद्रा प्रभातकालमें राजकीय वाद्य तथा शंखनादसे भंग की जाती थी। राजा शैय्याका त्यागकर मन्त्रारोहणके लिए चला जाता था। मध्याह्नमें

---

[1] तो राया बहुवण्ण विसज्जिअं वियत चरम-जामम्मि
अत्थाणी मंडव मंडणम्मि ठिहासने ठाई।
सामंत मंति मंडलिय सेट्ठिपमुहाण दंसणं देइ
विम्हतीओ तेसिं सुणइ कुणइ तह पडीयारं।
कय-निव्विसेय जय विम्हियाई करि अंक मल्लजुद्धाई
रज्जट्ठिइ त्ति कइया वि पेच्छए छिन्नसंको वि।
कुमारपालप्रतिबोध पृ० ४४३।

[2] हेमचन्द्र : कुमारपालचरित्र सर्ग १, श्लोक ९९, ७४।

वह लोगोंकी प्रार्थनाएं और आवेदन-निवेदन सुनता था। राजसभाके द्वारपर सशस्त्र सैनिक रहते थे। ये ही समस्त लोगोंको प्रवेश करने देते अथवा निषेध करते थे। युवराज अथवा भावी उत्तराधिकारी राजाके पार्श्वमें रहता। मंडलेश्वर तथा सामन्त राजाके चारों ओर रहते थे। मन्त्रिराज अथवा प्रधान अन्य मन्त्रियोंके साथ वहां विद्यमान रहता था। प्रशम वह मितव्ययिता तथा सत्परामर्शके लिए सदा प्रस्तुत रहता था। परामर्शकी पुष्टि और प्रामाणिकताके लिए वह विविध व्यवस्था तथा पूर्वमें हुई उसी प्रकारकी घटनाओंकी परम्पराकी व्यवस्था—राज भी प्रस्तुत रखता था। आवश्यक कार्य समाप्त हो जानेपर पण्डित तथा विद्वान आमन्त्रित किये जाते थे और उनके साहित्य तथा व्याकरणशास्त्रका रसास्वादन होता और उनपर विचार-विमर्श होता।

शासन-परिषदका अध्यक्ष

उपर्युक्त आधिकारिक विवरणोंसे स्पष्ट है कि राजाको तीन प्रकारके कर्तव्य सम्पादन करने पड़ते थे। शासन—परिषद्के अध्यक्ष होनेके नाते उसे राजकीय व्यवस्थाका निरीक्षण करना पड़ता था। उक्त ग्रन्थोंके वर्णनोंसे स्पष्ट है कि दिनके चतुर्थ प्रहरमें (लगभग ३ बजे) राजा सभामें सिंहासनपर आसीन होकर राज-काजका निरीक्षण करता था।[1] महामंडलेश्वर तथा सामन्त उसके चतुर्दिक रहते थे। मन्त्रिराज या प्रधान अपने साथियों सहित साधुवादोंसे मितव्ययिताका परामर्श देते हुए विविध आधिकारिक व्यवस्था लिए सदा प्रस्तुत रहते थे। स्पष्ट राजाको न्यायार्थ सम्पादनमें इस सम्बन्धमें सहायता प्राप्त होती थी।

---

[1] कोषम्: रासमाला, अध्याय ११ पृ० २३०।
कुमारपालप्रतिबोध पृ० ४४१।
रासमाला अध्याय ११, पृ० २३०।

सैनिक कर्तव्य

राजा रणभूमिमें प्रधान सेनापति भी होता था परिणामस्वरूप उसे सेनाके प्रयासमकी भी देखभाल करनी पड़ती थी। यद्यपि दंडाधिपति या दण्डनायकपर ही प्रधान सेनापतिका समस्त उत्तरदायित्व रहता था और उसीपर सैनिक व्यवस्थाकी जिम्मेदारी थी फिर भी राजा स्वयं सैनिक दुकड़ियोंका निरीक्षण किया करता था। कुमारपालप्रतिबोधमें कहा गया है कि सदा कला राजकीय कर्तव्य पालन करनेके लिए कुमारपाल मल्लयुद्ध प्रतियोगिता हस्तियुद्ध तथा इसी प्रकारके अन्य आयोजनोंमें सम्मिलित होता था।[1] यह केवल मनोरंजनके निमित्त न था अपितु राजकीय कर्तव्यके अन्तर्गत था। इससे विदित होता है कि सैनिक प्रदर्शनों घुड़दौड़ों, हस्तियुद्धों आदिमें सम्मिलित हो कुमारपाल अपने आवश्यक 'सैनिक कर्तव्य'का पालन करता था।

वैधानिक कर्तव्य

न्यायाधिकरणके उच्चतम अधिकारीके रूपमें राजा जनपदके तर्क भी विनम सुनता था। राजा अपने राजदरबारमें सिंहासनपर आसीन होकर जनतासे पुनर्वाद सुनता तथा अपना निर्णय देता था।[2] राजा अपना यह वैधानिक कर्तव्य मुख्य परिषद्के अध्यक्ष रूपमें सम्पन्न करता था। इसके अतिरिक्त अधिष्ठानकके अधीन अनेक स्थानीय तथा प्रान्तीय न्यायालय रहे होंगे। राजा जहां महत्त्वपूर्ण पुनर्वाद सुना करता था वह सर्वोच्च न्यायालय था। यहां वह बहुत ही आवश्यक प्रश्नों तथा पुनर्वादों-को सुनता और मन्त्रियोंकी सलाहसे निर्णय दिया करता था। इसके

---

[1] कुमारपालप्रतिबोध, पृ० ४४३।

[2] रासमाला : अध्याय ११ पृ० २३७।

[3] कुमारपालप्रतिबोध पृ० ४४३।

मन्त्री जिनके विषयमें हम पहले ही देख चुके हैं निश्चित साधिकारिक व्यवस्था पत्र तथा प्रमुख विभागीय अध्यक्षोंद्वारा उपस्थापित वस्तुएँ रखते थे और न्याय सम्बन्धी राजाको हर प्रकारसे सहायता करते थे। इस प्रकार पूरा ध्यान रखा जाता था कि पूर्वाग्रह हुए निर्णयकारी व्यवस्था न हो।[1]

अन्य विभिन्न कर्तव्य

इनके अतिरिक्त भी राजाको अन्य विभिन्न कर्तव्योंका पालन करना होता था—यथा धार्मिक कर्तव्य आदि। वह विद्वानों तथा पंडित महर्षीय उपस्थित हो उनसे दार्शनिक और धार्मिक प्रश्नोंपर वाद-विवाद एवं विचार-विमर्श किया करता था। वह साधुओं संन्यासियोंको भोजन भिक्षा दिया करता था और सम्मानसे अतिथियोंकी भेंट करता। शासन कार्योंका सम्पादनकर, पंडित तथा विभिन्न ऋषियोंके साथ आनन्दित कर लिए जाते थे और साहित्य तथा व्याकरण सम्बन्धी चर्चा किया करते। इनमें भी अधिक आकर्षक कार्यक्रम होता था प्रशंसनीय चारण अथवा चित्रकारका आगमन। वे राम तथा विभिन्न प्राचीन कथायें सुनाते अथवा किसी स्त्री सुन्दरीके सौन्दर्यका चित्रण करनेवाले चित्र राजाके सम्मुख उपस्थित करते।[2] उपर्युक्त कार्य राजाके अतिरिक्त कर्तव्योंके अन्तर्गत थे जिनका सम्पादन उसे करने दैनिक उत्तरदायित्वोंका पालन करनेके साथ ही साथ करना पड़ता था।

राजा नियन्त्रित अथवा अनियन्त्रित

कौटिल्य राजा प्राचीन हिन्दू राजतन्त्रके अनुसार अनियन्त्रित राजा थे। राजा ही शासन सम्बन्धी समस्त विभागोंका अध्यक्ष और सर्वोच्च अधिकारी था। सिद्धान्ततः उसकी शक्ति और अधिकारमें कोई हस्तक्षेप

---

[1] राजधर्म अध्याय ११ पृ० २१७।

[2] राजधर्म अध्याय ११ पृ० २१७।

नहीं कर सकता था किन्तु व्यवहारमें राजाकी स्वेच्छाचारितापर नियन्त्रण तथा लकम स्थानवासी अनेक धनिकमां थीं। इसप्रकार सभी व्यावहारिक कार्योंके लिए वह वैधानिक शासक था।

कुमारपाल जैन आचार्य हेमचन्द्रके प्रभावमें सदा रहता था। उसके सिंहासनारूढ़ होनेमें राजमातीके सम्पन्न जैन वर्गोंने बड़ी सहायता की थी। वे जैन नरौद्रपति राजाकी स्वेच्छाचारितापर अत्यधिक प्रभाव डालते थे। पहले ही देखा जा चुका है कि कुमारपालके शासनकालमें बहुतसे वणिक उच्च पदोंपर आसीन थे। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपमें वे राजाको प्रभावान्वित करते थे। जैन व्यवसायी इतने शक्तिशाली थे कि एक समय पाटनके नगरसेठ और दंडनायक विमल मन्त्री अनेक सम्पन्न उद्योगपतियोंके साथ पाटन छोड़कर चले गये थे और उन्होंने चन्द्रावती नगर बसाया।[1] इसका कारण यही कहा जाता है कि बड़े बड़े जैन उद्योगपतियोंको राजपूत राजाओंका प्रभुत्व सहन न था। कर्णदेवके सम्बन्धमें तो यह प्रसिद्ध है कि वे जैन मन्त्रियोंके हाथकी कठपुतली थे।[2] इसप्रकार महान शक्तिसम्पन्न चौलुक्य राजाओं-की स्वच्छन्दचारिता नियन्त्रित होती थी।

मन्त्रि-परिषद्

इसमें कोई सन्देह नहीं कि चौलुक्य राजाओंको शासन कार्यमें मन्त्रियों द्वारा परामर्श और सहायता मिलती थी। प्राचीनकालसे ही राजकार्यमें मन्त्रियोंका अत्यधिक महत्त्व रहा है। कौटिल्यका कथन है कि राजाओंके मन्त्री अवश्य होने चाहिये क्योंकि राज्यकार्य सम्पादनमें सहायताकी आवश्यकता होती है। परामर्शदाताओं और सहायकों बिना राज्य उसी

---

[1] के० एम० मुन्शी : पाटनका प्रभुत्व खंड १, पृ० ३।
[2] वही पृ० ४५।

भांति न चलेगा जिसप्रकार एक पहियेका रथ। राजकीय सत्ता भी मन्त्रियोंके बिना ठीक इसी प्रकार असहायावस्थामें रहती है। अतएव राजाको मन्त्री नियुक्त करने चाहिये तथा उनसे सलाह लेनी चाहिये। मेरुतुंगने अपनी रचना "प्रबन्धचिन्तामणि"में सभाके अस्तित्वका उल्लेख किया है।[1] तत्कालीन लेखकोंकी रचनाओंसे विदित होता है कि कुमारपालके राजदरबारमें मन्त्रियोंकी परिषद् थी। कुमारपालप्रतिबोध द्व्याश्रय काव्य तथा प्रबन्धचिन्तामणिके रचयिता इस प्रकार एकमत हैं कि कुमारपालके यहां मन्त्रि-परिषद् थी। सोमप्रभाचार्यने कुमारपालके दैनिक कार्यक्रमका वर्णन करते हुए लिखा है कि वह अपने मन्त्रियोंके साथ हाथीपर सवार होकर कुमारविहार मन्दिर जाया करता था।[2] वह पण्डितोंकी सभामें उपस्थित होता था और उनसे विचार-विमर्श किया करता था। राजसभामें वह महामण्डलेश्वरों तथा सामन्तोंसे घिरा रहता था। मन्त्रिराज या प्रधान अपने साथियों सहित निश्चित आदेशानुसार सदा इस आशयसे प्रस्तुत रहते थे कि पूर्व परम्पराओंकी उपेक्षा अथवा उल्लंघन न होने पावे।[3] ये सभी तथ्य स्पष्टतः इस बातको सिद्ध करते हैं कि कुमारपालको राज्य-शासन संचालनमें मन्त्रियोंसे परामर्श तथा सहायता प्राप्त होती थी।

मन्त्रियों तथा मन्त्रि-परिषद्का अस्तित्व जयसिंह सिद्धराजके शासनकालमें भी विद्यमान था। कहा जाता है कि जब सिद्धराज मृत्यु शैय्यापर थे तब उन्होंने अपने मन्त्रियोंको कुमारको सिंहासनपर योग्य उत्तराधिकारी आसीन करनेका कार्य सौंपा था। इसके अतिरिक्त पहले देखा जा चुका है कि

---

[1] न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्
धर्मः स नो यत्र न चास्ति सत्यं सत्यं न तद्यच्छलनानुविद्धम्।
प्रबन्धचिन्तामणि चतुर्थ प्रकाश, पृ० ५१।

[2] कुमारपालप्रतिबोध पृ० ४२१—४४३।

[3] रासमाला अध्याय ११ पृ० २३०।

जब सिद्धराजके उत्तराधिकारीका निर्वाचन हो रहा था उस समय मन्त्रीगण सिंहासनके आकांक्षी राजकुमारोंसे प्रश्नकर उनकी योग्यताकी परीक्षा ले रहे थे। जब एक राज्यसिंहासनाकांक्षीसे पूछा गया कि वह सिद्धराजके अट्ठारह देशोंका शासन कैसे संचालित करेगा तो उसका यह उत्तर कि "आपके परामर्श तथा आदेशानुसार" उन मन्त्रियोंको उचित नहीं प्रतीत हुआ जो सिद्धराज जयसिंहके गम्भीरतापूर्ण आदेशोंके पालनके अभ्यस्त थे। इसलिए वह अयोग्य ठहराया गया।[1] प्रभावकचरितमें इस बातका उल्लेख है कि कुमारपालका राज्यारोहण भीमठ सम्माके द्वारा हुआ था जिसके व्यक्तित्वके सम्बन्धमें कुछ पता नहीं चलता।[2] इसीप्रकार कुमारपालप्रतिबोधका कथन है कि मन्त्रियोंने परस्पर विचार-विमर्शकर कुमारपालको सिंहासनारूढ़ किया।[3] द्वयाश्रय काव्यके प्रणेता हेमचन्द्रने भी लिखा है कि मन्त्रियोंने कुमारपालको राज्यसिंहासनपर आसीन किया।[4]

मन्त्री और उनका स्वरूप

इसप्रकार निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि एक न एक रूपमें

---

[1] प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ७८।

[2] प्रभावकचरित २२, १५६, ४१७।

[3] एवं परुप्परं मंतिऊण तह मिलिऊण सयलं
सामुद्दिय मोडुलिय साउम्मिय मेत्तिलिय भरान्तो।
रज्जम्मि परिट्ठविओ कुमारवालो महाय पुरिसेहिं
तत्तो भुवणमसेसं परिओसमरं व संपत्तं।
कुमारपालप्रतिबोध पृ० ५।

[4] तत्थ सिरि कुमरवालो आरूए सव्वमोवि नरिक पया
सुपरिट्ठ मंतिवारो सुरसद्दो आसि सारम्भो।
द्वयाश्रय काव्य सर्ग १ पृ० १५, श्लोक २८।

इस समय मन्त्रिपरिषद्का अस्तित्व अवश्य था और उसका कार्य था राजाको शासन संचालन तथा न्याय निर्णयमें सहायता प्रदान करना। इस मन्त्रि-परिषद्का अध्यक्ष सम्भवतः महामात्य मन्त्री अथवा सचिव होता था। इसप्रकार जयसिंहके मुञ्जाल कुमारपालके महादेव' अभय पालके नागड' तथा सोमेश्वर, भीम द्वितीयके रत्नपाल वीरधवल वस्तुपाल और तेजपाल वीसलदेवके नागड' अर्जुनदेवके मूलदेव मालदेव मधुसूदन तथा वेम्भा मन्त्री थे। यह भी कहा जा सकता है कि शक्तिशाली राजाओंके अधीन ये मन्त्री तदनुकूल नीति निर्धारित करते थे। यह हम पहले ही देख चुके हैं। राज्यके उत्तराधिकारीके चुनावके अवसरपर एक राजकन्याका यह कथन कि "माताके आदेश तथा परम्परानुसार" उन मन्त्रियोंको उचित उत्तर प्रतीत नहीं हुआ जो सिद्धराजके गम्भीरतापूर्ण आदेशोंके पालनके अभ्यस्त थे। यह बात स्पष्टतः सिद्ध करती है कि शक्तिशाली राजाओंके अधीन मन्त्रियोंके लिए राजकीय सत्ताका विरोधकर सर्वथा स्वतन्त्र नीतिका निरूपण कदापि सम्भव न था।

कुमारपाल बहुत शक्तिशाली राजा था। यह हम पहले ही देख चुके हैं कि वह पचास वर्षकी अवस्थामें सिंहासनारूढ़ हुआ। उसकी प्रौढ़ावस्था तथा विभिन्न देशोंमें पर्यटनसे प्राप्त अनुभवोंके फलस्वरूप उसमें तथा

'आर्केयॉलॉजिकल सर्वे आव इंडिया वेस्टर्न सर्किल: १९०७-८, ५४-५५।

'इंडि० ऐंटी० खंड १८, पृ० ३४७।

'वही, पृ० ११६।

एपि० इंडि०: खंड ८, पृ० २०९।

'इंडि० ऐंटी०: खंड ६, पृ० ११२।

'राद शिलालेख।

'इंडि० ऐंटी० खंड ४१, पृ० २१२ तथा बुम्बा ओरियंटलिस्ट जुलाई १९११ पृ० ७१।

उसके कतिपय पुराने उच्च कर्मचारियोंमें मतभेद उत्पन्न हो गया। पुराने मन्त्रियोंने अनुभव किया कि कुमारपाल जैसे योग्य तथा शक्तिशाली शासकके अधीन उनका प्रभाव एकदम विलुप्त हो गया है। परिणाम स्वरूप उन्होंने राजाकी हत्याकर अपनी पसन्दका राजा गद्दीपर बैठानेका निश्चय किया। सौभाग्यसे कुमारपालको इस षड्यन्त्रका पता लग गया और सभी षड्यन्त्रकारियोंको प्राणदण्ड मिला। निरंकुश तथा शक्तिशाली राजाओंके अधीन मन्त्रियोंकी स्थिति कैसी रहती थी यह उसका एक उदाहरण है।

केन्द्रीय सरकारका संघटन

गुजरातके चौलुक्योंके शासनकालमें विभिन्न शासन यन्त्रोंका विकसित तथा पुष्टस्वरूप विद्यमान था। ऐतिहासिक तथा तत्कालीन साहित्यिक रचनाओंके अतिरिक्त शिलालेखों ताम्रपत्रों आदिके भी ऐसे पुष्ट प्रमाण हैं, जिनसे विभिन्न राज्याधिकारियोंका पता चलता है। उनके कर्तव्योंपर प्रकाश डालते हुए वे विभिन्न प्रशासकीय इकाइयोंका भी नामोल्लेख करते हैं। कुमारपालका साम्राज्य बहुत लम्बा चौड़ा था इसलिए शासनकी सुविधा के विचारसे इसे केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारोंमें विभाजित किया गया था। केन्द्रीय सरकारमें विभिन्न अधिकारी और विभाग निम्नलिखित थे —

१ महामात्य[1]
२ सचिव
३ मन्त्री
४ महाप्रधान[2]
५ महामंडलेश्वर[3]

---

[1] आर्कि० सर्वे इंडिया वे रि० १९०७-८, पृ० ५४-५५।
[2] इंडि० एंटी० : खंड ११ पृ० ८३।
[3] इंडि० ऐंटी० खंड १० पृ० १५९, इपि० इंडि० खंड ८, पृ० २१९, इंडि० ऐंटी० : खंड १८, पृ० ८३ वही, खंड १० पृ० १६०।

६ हस्तिवर्षनि
७ हस्तवप्र
८ ऐन्द्र द्यक[1]
९ वर्णपुत्र
१० अपिष्टागद[2]
११ सौम्यपुराम
१२ भट्टपुत्र
१३ पिरपिक
१४ पट्टाविल[3]
१५ मानिपविषहद[4]
१६ द्रुमप[5]
१७ महाप्पटपिरद[6]
१८ राणाक
१९ टापर[7]

---

[1] आर्कि सर्वे इंडिया वा० र० १९०७-८ ४४-४५, ५१-५२, ५४-५५
[2] आर्किआलॉजी आव गुजरात अध्याय ८ पृ० २०१ तथा सौराष्ट्र
पराग्रय अंक ४ पृ ७८।
[3] वही।
[4] वही।
[5] वही तथा इंडि० ऐंटि० : खंड २१ पृ० २०४।
[6] इंडि० ऐंटि० खंड ११ पृ० ४४।
[7] इंडि० ऐंटि० खंड ४१ पृ० २०२।
[8] आर्किआलॉजी आव गुजरात अध्याय ८ पृ० २०१।
[9] इपि० इंडि० खंड ११ पृ० ४७-४८।
[10] वही।

शिलालेखों दानपत्रों तथा अन्य प्रामाणिक विवरणोंसे विदित होता है कि महामात्य महाप्रधान सचिव और मन्त्री राजाके परामर्शदाता थे। बाली शिलालेखमें इस बातका स्पष्ट उल्लेख है कि राजा कुमारपालके शासनकालमें श्रीमहादेव महामात्यके पदका भार ग्रहणकर राजकार्य संचालन करते थे।[१] इस तथ्यकी पुष्टि पाली 'किराडू' तथा नाना' शिलालेख भी करते हैं जिनका तिथिक्रम क्रमशः विक्रम संवत् १२ ९, १२०९ तथा १२०(?) है। कुमारपालके समयके इन सभी शिला-लेखोंमें कहा गया है कि महामात्य महादेव (महामात्य श्रीमहादेव) के अधीन ही राजमुद्रा रहती थी। सचिव और मन्त्री महामात्यके अधीन साधारण मन्त्री थे। अमात्य तथा महाप्रधानका उल्लेख केवल एक बार अजयपालके दानलेखमें हुआ है।[१]

दंडाधिपति तथा दंडनायक—ये क्रमशः प्रधान सेनापति तथा राज्य-पाल थे। दंडनायकका उल्लेख कुमारपालके अनेक शिलालेखोंमें हुआ है। भटिंडा' पाली तथा बाली' शिलालेखोंमें दंडनायक अजयदेव

---

[१] "श्रीमत्कुमारपालदेव कल्याण विजय राज्ये तत्पादपद्मोप-जीविनी महामात्य श्रीमहादेवे समस्त मुद्रा व्यापारान् परिपंथयति।" आर्कि॰ सर्वे॰ इंडिया वै सं॰ १९०७-८, पृ॰ ५४-५५।

[२] वही, पृ॰ ४४ ४५।

[३] इपि॰ इंडि॰ खंड ११ पृ० ४४।

पूना ओरियन्टलिस्ट, खंड १ उपखंड २, पृ॰ ४०।

[४] इंडि॰ एंटी खंड ११ पृ॰ ८१।

[५] आर्कि॰ सर्वे इंडिया वै सं॰ १९०७-८, पृ॰ ४४ ४५।

"श्रीमद्गुले दंड श्रीवयजलदेव प्रभृति " वही, पृ॰ ५४-५५।

"महामद्गुले मुग्यमात महाप्रबन्धं दंडनायक श्रीवैजाक" वही पृ॰ ५१-५२।

राजदरबारके ही किसी व्यक्तिको उक्त पदपर नियुक्त किया जाता था। यह मण्डलका सर्वोच्च प्रशासक तथा कार्याध्यक्ष होता था। विक्रम संवत् १२०२ (सन् ११४५ ईस्वी) के बोहाद प्रस्तर लेखमें भी "महामंडलेश्वर" का उल्लेख आया है। इसमें कहा गया है कि महामंडलेश्वर वपनदेवकी कृपासे राणा शंकरसिंह महान पदको प्राप्त कर सके। अनेक विद्वानोंका मत है कि यद्यपि इसमें शासन करनेवाले राजाका स्पष्ट नाम नहीं दिया गया है तथापि यह कुमारपालके शासनकालका ही है।[1]

अधिष्ठानक—राज्यके महत्त्वपूर्ण न्याय विभागका विचारक अधिष्ठानक कहा जाता था।

सान्धिविग्रहिक—राजनीतिक दूत थे जिनका सम्बन्ध शान्ति और युद्धसे था। इनका महत्त्वपूर्ण कर्तव्य था—केन्द्रीय सरकारको पर राष्ट्रीय परिस्थितियोंसे अवगत रखना। कुमारपालके शासनकालके किराडू शिलालेखमें सान्धिविग्रहिककी भी चर्चा हुई है। इसमें कहा गया है कि यह आदेश राजा कुमारपालके हस्ताक्षरसे प्रसारित हुआ तथा सान्धिविग्रहिक महादित्यने इसे लिखा था।[2]

विषयिक—मण्डलसे छोटे किन्तु ग्रामोंके समूहका सर्वोच्च शासक विषयिक होता था। यह सबसे बड़ा प्रादेशिक क्षेत्र होता था जिसे आधुनिक तालुका नाम कहा जा सकता है। प्रत्येक विषय अथवा पाठकके प्रशासनके लिए यह अधिकारी नियुक्त होता था तथा अपने उच्च अधिकारीके प्रति उत्तरदायी होता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्धिपाठक महामंडलेश्वर वपनदेवके शासनकालमें महामंडलेश्वर राणा सामन्तसिंह अमात्य नागदके अधीन थे। वपनदेवकी महत्तर योग्य

---

[1] भुव: इंडि० ऐंटी०: खंड १० पृ० १६०।

[2] एपि० इंडि० खंड ११ पृ० ४४ सूची संख्या २८७।

[3] इंडि० ऐंटी०: खंड ६, पृ० १५१।

देवके तत्कालीन उच्च अधिकारी सौराष्ट्रके महामंडलेश्वर सोमराज थ।[1]

पट्टकिल—यह गांवकी मालगुजारी एकत्र करनेवाला अधिकारी था।[2] आधुनिक पाटिल अथवा पटेल इसी शब्दसे बने हैं। कोंकणके शिलाहारोंके शिलालेखोंमें पट्टकिल शब्द व्यवहृत हुआ है। पट्टकिल ग्रामका उत्तर दायी अधिकारी था और उसका मुख्य कर्तव्य था मालगुजारी एकत्र कराना। प्रान्तीय सरकारके माध्यमसे उसका सम्बन्ध केन्द्रीय सरकारसे भी था।

दूतक तथा महाक्षपटलिक—ये क्रमशः राजदूत तथा अभिलेखपाल थे। महाक्षपटलिक राज्यका बहुत महत्त्वपूर्ण अधिकारी था। राज्यके समस्त अभिलेख इसीके अधीन रहते थे। कौटिल्यके अर्थशास्त्रसे हमें विदित होता है कि यह विभाग राज्यमें बहुत प्राचीनकालसे चला आ रहा था और इसके अन्तर्गत विस्तृत पद्धति प्रचलित था।

राणक तथा ठाकुर—ये भी राज्यके दो महत्त्वपूर्ण अधिकारी थे। यह दो उपाधियां ऐसी थीं, जो राष्ट्र अथवा राज्यके प्रति की गयी सेवाओंके विचारसे किसी व्यक्तिको प्रदान की जाती थीं। "राणक"का केवल गुजरातमें ही प्रयोग नहीं पाया जाता अपितु अन्य स्थानोंमें भी। सम्भवतः यह राजपूत उपाधि "राणा" का पूर्व रूप है।[3] ठाकुर भी राज्यके उच्च अधिकारी थे। कुमारपालके शासनकालमें ठाकुर भोलादित्य सान्धि विग्रहिकका कार्य सम्पन्न कर रहे थे।[4] कुमारपालके शिलालेखमें

---

[1] वही खंड १८ पृ० १११।

[2] आर्कियालाजी आव गुजरात अध्याय ९, पृ० २०१।

[3] एपि० इंडि० : खंड ३१ पृ० २०४।
अर्थशास्त्र : अध्याय २, श्लोक ७।

[4] आर्कियालाजी आव गुजरात : अध्याय ९, पृ० २०१।

[5] सान्धिविग्रहिक ठा० सोलादित्येन लि "किराडु शिला-लेख।

दूतक' 'राणा' तथा ठक्कुर' नामके अधिकारियोंके उल्लेख आये हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि कुमारपालके शासनकालमें केन्द्रीय सरकारका संघटन अत्यन्त व्यवस्थित था। केन्द्रीय सरकारको सफल बनानेवाले सभी महत्त्वपूर्ण विभाग राज्यमें संघटित थे। शिलालेखों दानलेखों अभिलेखों तथा अन्य साधनोंसे विभिन्न राज्य अधिकारियोंके पद तथा उनके कर्तव्योंका पूर्णरूपेण विवरण प्राप्त होता है।

प्रान्तीय सरकार

यह पहले ही देखा जा चुका है कि चौलुक्य राजाओंका राज्य सुदूर प्रदेशों तक विस्तृत तथा व्यापक था। केन्द्रीय सरकारके लिए यह सम्भव न था कि वह समस्त राज्यकी समुचित व्यवस्थामें समर्थ और सफल होती। फलस्वरूप सम्पूर्ण राज्य शासन-सञ्चालनकी सुविधाके विचारसे अनेक खंडोंमें विभाजित था जिसे प्रान्तकी संज्ञा दी जा सकती है।

मंडल—राज्यका सबसे बड़ा प्रादेशिक खंड था जिसकी समानता आधुनिक प्रान्तसे की जा सकती है। कहीं लाट और सौराष्ट्रको देश कहा गया है और कहीं गुर्जर मंडल। सम्भव है कि समस्त गुजरातके अर्थमें गुर्जरमंडलका प्रयोग हुआ हो। मंडलका प्रशासक महामंडलेश्वर पुकारा जाता था और उसकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा होती थी। जूनागढ़ शिलालेखमें अंकित है कि प्रमारपाटनके गुमदेवकी नियुक्ति कुमारपालने विक्रम संवत् ११९९ तथा १२२९के मध्यमें की थी।

---

[14] दूतकोऽत्र वेयकरणो महं सामन्तगुप्त" : इंडि ऐंटी० खंड ४१, पृ २०२ ।

[15] वोरिपद्रके राणा व्यापन राजे " इपि० इंडि० खंड ११, पृ ४७-४८।

[16] "स्वस्ति सोमाचारग्रामे ठा अणसीहुरय " : वही।

मानी जाती थी। एक स्थानमें गाम्भूत विषयके नामसे सम्बोधित कि
गया है तो दूसरे स्थानमें उसे पाठक कहा गया है।[1] प्रत्येक विषय व
पाठक एक पृथक अधिकारीके अधीन था। यह अधिकारी अपने उच
पदाधिकारीके प्रति उत्तरदायी होता था। कुमारपालके शिलालेखों
इन प्रादेशिक इकाइयोंका नामोल्लेख हुआ है। विक्रम संवत् १२०१
पाली शिलालेखमें पल्लिका विषय (श्रीमत्पल्लिका विषये) की च
आयी है जहां वामुण्डराज शासन कर रहे थे। यही प्राचीन पल्लि
नगर आधुनिक पाली है। इसीप्रकार ग्राम भी इस समय शासकीय इक
था। मैसूरके नड्डाई शिलालेखसे विदित होता है कि विक्रम सं
१०२३में चौलुक्यराज कुमारपालके शासनकालमें जब केल्हण नाडुल
तथा राजा अल्हण बोरिपद्रकके शासक थे उस समय सोनाग्राम
ठाकुर अर्णसिंह थ।[2] आहार, द्रोण मंडली तथा स्थली आदि शासकी
इकाइयोंका चौलुक्य शासनमें कोई उल्लेख नहीं मिलता। वलभी अभि
लेखोंमें इनकी इतनी अधिक चर्चा आयी है कि चौलुक्योंके समय इन
उल्लेख न होना आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। इसके दो कारण सम्भ
हैं। एक तो काठियावाड़के अनेकानेक स्थानोंका अभी तक उत्खनन न
हुआ है और दूसरा यह कि सम्भवतः ये मैत्रिकोंके बाद विलीन[3]
गयी हों।

---

[1] इंडि० ऐंटी० खंड ६, पृ० १९६-८ तथा (२) बा० भी खं
बी ३००। प्रथममें गाम्भूतको "पाठक" कहा गया और दूसरे
"विषय"।

[2] श्रीकुमारपालदेव विजय राज्ये श्रीनाडुल्य पुरात श्रीकेल्हण: रा
बोरिपद्रके राजा अल्हण राज्ये स्वतिशोनग्रामे का अलती हुस्य
इपि० इंडि० खंड ११, पृ० ४७-४८।

[3] आर्कलाजी आव गुजरात पृ० २०२।

अन्तमें केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारकी एक विशेष स्थिति ध्यान देने योग्य है। साधारणतः होता यह था कि विजयी राजाकी प्रभुसत्ता स्वीकार कर लेनेपर विजित प्रदेश उसके मूल शासकको पुनः लौटा दिया जाता था। जब तक अधीनस्थ राजा विश्वस्त बना रहता था यह स्थिति रहती थी। इसके विपरीत स्थिति होनेपर राज्य जब्त कर लिया जाता था। कुमारपालके किराडू शिलालेखमें उस घटनाका उल्लेख है जिसमें कहा गया है कि विक्रम संवत् ११९८में सिद्धराज जयसिंहकी अनुकम्पासे सोमेश्वरने सिन्धुराजपुर वापस प्राप्त कर लिया था।[1] विक्रम संवत् १२०१में कुमारपालकी कृपादृष्टिसे उसने अपने राज्यको और सुदृढ़ बनाया। इन घटनाओंसे ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः भीम प्रथमसे अपने सम्बन्ध अच्छे कर लिये थे किन्तु प्रभुसत्ता और अधीनस्थ में पुनः विग्रहकी स्थिति उत्पन्न हो गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि किराडू प्रदेश गुर्जरराज द्वारा हस्तगत कर लिये गये। बादमें उदयराज तथा उसके पुत्र सोमेश्वरने सिद्धराजको युद्धमें सहायता प्रदान कर प्रसन्न कर लिया था। फलस्वरूप उसका राज्य लौटा दिया गया था। सोमेश्वरने किराटकूपमें दीर्घकाल तक शासन किया। यही किराटकूप आधुनिक किराडू है। विक्रम संवत् १२०९के किराडू शिलालेखसे ज्ञात होता है कि किराटकूप चौहान अल्हणदेवके अधिकारमें कुमारपालकी कृपासे था किन्तु शिलालेखमें इस बातका भी उल्लेख है कि यह परमार वंशके अधिकारमें आया था।

स्थानीय स्वायत्त शासन

भारतमें अनवरत धार्मिक तथा राजनीतिक क्रान्तियाँ हुईं किन्तु

[1] इंडि॰ ऐंटी॰ खंड ६१ पृ॰ १३५, सूची संख्या ११२।
एपि॰ इंडि॰ खंड ११, पृ॰ ४३।

दोषग्रस्त होता है।[1] चौलुक्य राजाओंपर उद्योगपतिवर्गका कैसा प्रभाव था इससे स्पष्ट हो जाता है। राजधानी अणहिल्लपाटकमें वणिक श्रेणी अथवा संघ स्वायत्त शासनसे परिचालित होते थे और नगरपालिकाके शासनमें भी सहयोग प्रदान करते थे इस तथ्यको स्वीकार करनेके लिए अनेक कारण हैं।

आर्थिक व्यवस्था पद्धति

आर्थिक व्यवस्थाका विभाग राज्यका सबसे महत्त्वपूर्ण विभाग था। यह विदित था कि अर्थसे ही सभी कार्योंकी उत्पत्ति होती है। यही सभी धर्मोंका भी साधन है।[2] रामायणमें लंकाकांडमें लक्ष्मणने रामसे जो कथन व्यक्त किया है उससे धर्म तथा अर्थका महत्त्व सम्यकरूपेण स्पष्ट हो जाता है।[3] वास्तवमें राष्ट्रकी भौतिक उन्नतिके लिए अर्थ अनिवार्य है। वैदिककालसे ही करका संग्रह राजाके कर्तव्यके अन्तर्गत समझा जाता रहा है। यह परम्परा समयानुसार और भी विकसित हुई होगी और इसमें सन्देहका कोई कारण नहीं कि चौलुक्योंने भी इस व्यवस्था और विभागकी ओर समुचित ध्यान अवश्य दिया था।

---

[1] कष्टं भोः। कष्टम् मन्ये च समूहमेवामस्तीव करमोचेन व्यतिस्वयमन्। वही।

[2] वनपर्व : ३३·४८।

अर्थेभ्योऽहि विवृद्धेभ्यः संवृत्तेभ्यस्ततस्ततः
क्रियाः सर्वाः प्रवर्तन्ते पर्वतेभ्य इवापगाः
अर्थेन हि विमुक्तस्य पुरुषस्याल्पतेजसः
व्युच्छिद्यन्ते क्रियाः सर्वा ग्रीष्मे कुसरितो यथा।

वाल्मीकि रामायण।

"इयं ते राट् ध्रुवि स्या क्षेमराया कोषत्या"। शतपथ ब्राह्मण ५.२.२९।

भूमि ही आयका सबसे महत्वपूर्ण साधन थी। हिन्दू समाजके इतिहासमें भूमि का प्रश्न सर्वाके मौलिक हित और स्वार्थका प्रश्न था। कौशलोंके समकालीन लेखकों तथा ग्रन्थकारोंने इस विषयपर कोई विशेष प्रकाश नहीं डाला है और सम्भवतः इसीलिए कि यह तो समस्त संसारको विदित ही था। प्रसंगोंसे हमें ज्ञात होता है कि उपजमें राजाका भाग होता था। कभी राजा अपना यह भाग सीधे किसानसे या अपने कर्मचारी द्वारा जो "भत्री" कहलाते थे लिया करता था। कभी यह भी होता था कि किसानसे ग्रामका मुखिया अपना हिस्सा ले लेता था और राजा ग्रामके इन शासकों द्वारा अपना अंश प्राप्त करता था।

अकालके फलस्वरूप राजाका अंश किसान न दे पाता था और उसपर राजाका हिस्सा देनेके लिए दबाव डाला जाता था। किसान हठपूर्वक सिद्धान्त-की दुहाई देता और असहाय बालकके समान अपना दुःख प्रकट करता। दोनों पक्षोंमें बलात् प्रकारकी कठिनाइयां उपस्थित होतीं और एक न्यायालयमें अन्तिम समझौता होता। यह न्यायालय ठीक वैसा ही होता था जैसा न्यायालय आज भी स्थानीय नियमोंके अनुसार देशके विभिन्न मामोंमें ऐसे झगड़ोंका निर्णय किया करता है।[1] इसप्रकार आयका बहुत बड़ा भाग भूमिसे प्राप्त होता था। इसमें भूमिकी उपजका एक निश्चित अंश द्रव्य या अन्न रूपमें देनेका सिद्धान्त नियत रहता था। अकालमें ही उसका भाग देना अधिक अच्छा माना जाता था।[1] राजाको उपजका छठा हिस्सा करके रूपमें दिया जाता था। इसीलिए राजाको "षड्भागभृतराजा" "षड्भागभाक्" और षडंशवृत्ति कहा जाता था। इसप्रकार निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि राजाका हिस्सा भूमिकी उपजका षष्ठ भाग नियत था।

---

[1] रामायण अध्याय ११ पृ० २११ २१२।

हिन्दू एडमिनिस्ट्रेटिव इन्स्टीट्यूशन्स : अध्याय ४ पृ० १६३।

भूमि का विभाग ग्राम राज्यके अधिकारमें था। यह इस बातसे भी स्पष्ट है कि राजाओंने बहुतसी भूमि दान दी थी। मुख्यतः राजाओंने धार्मिक व्यक्तियों अथवा मन्दिरोंको उक्त भूमिखंडोंका दान किया था। इस प्रकारके अनेक उदाहरण अभिलिखित हैं। उदाहरणार्थ सिद्धपुर तथा सिहोर ग्राम ब्राह्मणों और जैन आचार्योंको राजाकी ओरसे दान दिये गये थे। राजा द्वारा इन भूमिखंडोंके पृथकीकरणको "ग्रास" कहा गया है। यह शब्द तत्कालीन धार्मिक दानलेखोंमें साभिप्राय प्रयुक्त हुआ है। राजपरिवारके लोगोंको भी भूमि या जागीरें मिला करती थीं। ऐसे लोगोंमें देवुली तथा बयेसके नाम उल्लेख्य हैं। द्वयाश्रयके सम्राट कुमारपालके सम्बन्धमें भी कहा जाता है कि उन्होंने संकटके समय अमूल्य सहायता प्रदान करनेवाले आलिग कुम्हारको सात सौ गांव लिखकर दान कर दिये थे।[1]

भूमिसे आयके अतिरिक्त वाणिज्य-व्यापारसे राजाको व्यापारसे भी पर्याप्त मोटी रकमकी आय होती थी। राज्यसे ले जाये जानेवाले सभी मालोंपर निकासी कर तथा "दान" लिया जाता था।[2] पोत, समुद्र व्यवसायी तथा समुद्री बेड़ोंका भी उल्लेख आता है। व्यवसायियों तथा उद्योगपतियोंको वणिज महत्तर वणिज और महाजन कहा जाता था। क्योंकि उद्योगपति अत्यधिक सम्पन्न थे। जिस व्यवसायीके पास एक करोड़की सम्पत्ति एकत्र हो जाती थी उसे कोटयाधीशकी पताका फहरानेका गौरव प्रदान किया जाता था। भोगराजके शासनकालमें

[1] ततनु चौलुक्यराजेन हृष्टेन चक्रवर्तिना आलिगकुलालाय सप्तशती ग्रामाङ्किता विचित्रा चित्रकूट पट्टिका ददे। प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश पृ० ८०।

[2] रासमाला अध्याय ११ पृ २१५।

[3] मोहराजपराजय अंक ३ पृ० ५०-७०।

एक विदेशी राजाका हाथी घोड़े और व्यापारके सामानोंसे भरा जहाज सोमेश्वर पाटनके बन्दरगाहपर बहकर आ लगा था। सिद्धराजके राज्य-कालमें समुद्रस्थ व्यापार करनेवाले सपादिक अथवा स्वयं समुद्री डाकुओंके भयसे गाठोंमें छिपाकर ले जाते थे। अणहिलपाटनके राजाके अधिकारमें उत्तरी कोंकण तथा समस्त गुजरातके समुद्री स्थान भी थे। स्तम्भतीर्थ तथा भृगुपुर क्रमशः सूरत तथा भड़ौचके बन्दरगाह हैं। सूर्यपुर सम्भवतः सूरत है तथा गुवावा गुणदेवी है। वेरम्म द्वारका देवपाटन माधा मांगनाथ आदि बन्दरगाह सौराष्ट्रके तटपर स्थित हैं।[1] स्पष्ट राजाको भारी पैमानेपर होनेवाले इस उद्योगसे राजकीय कोषमें पर्याप्त अच्छी धनराशि मिल जाती थी। अवश्य ही उद्योगके लिए उपयुक्त इन प्रसिद्ध बन्दरगाहोंसे भी राजकोषमें यथेष्ट परिमाणमें धन प्राप्त होता था।

राजकीय आयका इस समय एक और भी महत्त्वपूर्ण साधन था। वह यह था कि उत्तराधिकारी न छोड़नेवाले निःसन्तान लोगोंकी मृत्युके बाद उनकी समस्त सम्पत्ति राज्य हस्तगत कर लेता था। ऐसे लोगोंके बराबर अधिकार कर चुकने तथा एक पंचकमेटी (समिति) नियुक्तिके पश्चात् राज्याधिकारी सभी वस्तुएं जब उठा ले जाते थे तब कहीं शव अन्तिम क्रियाके निमित्त ले जाया जा सकता था। इसप्रकारकी घटनाका पता कुमारपालके समसामयिक यशपालके मोहराजपराजयसे लगता है। इसमें कहा गया है कि राजाके पास चार उद्योगोंसे इस आशय का समाचार लेकर पहुँचे कि राजधानीका कुबेर नामका एक लक्षाधिपति समुद्र यात्रामें निधन हो गया है इसलिए राज्याधिकारियोंको भेजकर उसकी सम्पत्तिपर राज्य अपना अधिकार कर ले।'[2]

---

[1] रासमाला अध्याय ११ पृ० २३५।

[2] वणिक्—देव! कुबेरस्वामी निपुत्र इति तस्मात्प्रोमरेण पुरमुपविष्टे। ततोदिवस्यमानस्य कोऽपिदेव तत्परिपृच्छते यत्—

मद्य तथा द्यूत भी राज्यकी आयके साधन थे। राजा तथा प्रजा दोनोंमें द्यूतका अत्यधिक प्रचार था। यह राज्यके नियन्त्रणमें होता था। यशपालने लिखा है कि द्यूत तथा मद्यसे राजकोषमें विशाल धनराशि आती थी।[1] वेश्यावृत्ति भी राज्यके निरीक्षणमें होती थी और यह भी राज्यकी आयका साधन थी।[2] खानें, चरागाह तथा जंगल राज्यकी आयके अतिरिक्त साधन थे जिनसे अच्छी आमदनी होती थी। राजकोषके विचारसे खान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण आयका साधन थीं।[3] जंगलोंसे बहुमूल्य इमारती लकड़ियां प्राप्त होती थीं। औषधिके लिए वनस्पति भी यहींसे मिलती थी और हाथी जो युद्धके महत्त्वपूर्ण साधन थे जंगलोंसे ही प्राप्त होते थे। आर्थिक दंड तथा न्यायालय शुल्क भी आयके साधन थे। असाधारण दिनोंमें सम्पन्न उद्योगपतियोंसे बहुमूल्य वस्तुओंकी मटाल्की पद्धति भी ग्रहण की जाती थी। फोर्बस्ने लिखा है तीर्थयात्रियोंसे "छूट" नामक कर भी लिया जाता था। इन विभिन्न साधनोंसे राजकोषमें विशाल धनराशि एकत्र हो जाती थी इसमें सन्देह नहीं।

न्याय विभाग

देशके शासनमें न्याय विभाग अत्यन्त आवश्यक विभाग था। जिसमें राजा मुकदमे सुना करता था। न्यायालयके द्वारपर सशस्त्र रक्षक रहते

सवस्वे वर्तेति महाजनस्त धौर्म्यदेहकामि'।—मोहराज पराजय, अंक ३, पृ ५२।

[1] "मनुजपं राजदूते द्रव्यं पूरयामः। देव। वयं द्यूतं पापनको मद्य सेवको राजरूपे प्रभूतं द्रव्यं पूरयामः। वही: चतुर्थ अंक: पृ० १०९-११०।

[2] "वेश्याव्यसनं तु वराकमुपेक्षणीयम्"। वही।

[3] "आकरो प्रभव कोषः" अर्थशास्त्र।

रासमाला: अध्याय ११ पृ० २१५।

थे जो अधिकारी व्यक्तिको ही प्रवेश करने देते और मदोन्मत्तोंका द्वारपर ही रोक देते थे। राजाके पासमें युवराज रहता और चतुर्विध महामंडलेश्वर तथा सामन्त। मन्त्रीराज या प्रधान भी अपने विभागके अधिकारियों सहित उपस्थित रहा करते थे। ये विचारपूर्वक मितभाषिताका परामर्श देते रहते थे और प्रमुख रहते थे पूर्वमें दिये गये लिखित निर्णयोंको लेकर, जिससे पहले दी हुई आज्ञा अथवा आदेशकी असमानता न हो।'
रासमालामें कौर्वमूल राजाके न्याय सम्बन्धी कार्योंका जो उक्त उल्लेख किया है उससे स्पष्ट है कि राजा न्याय सम्बन्धी अपना कर्तव्य मन्त्रियों की सहायतासे करता था। कुमारपाल प्रतिबोधमें भी राजाके इस महत्व पूर्ण कार्यकी चर्चा है। इसमें कहा गया है कि दिवसके चतुर्थ प्रहरमें (अपराह्न ३ बजे) राजा अपने दरबारमें सिंहासनपर आसीन हो जाता था। इसी समय वह शासन कार्य करता और जनतामें पुकारके सुनकर उनपर अपना निर्णय सुनाता।'

कुमारपालके जीवनचरित्र लिखनेवाले विद्वानोंका कथन है कि राजधानी अणहिल्लपुरमें राजा स्वयं न्याय करता था। किन्तु इस राजकीय सर्वोच्च न्यायालयके अतिरिक्त साधारण अभियोगों तथा मामलोंपर विचार करनेके लिए अन्य साधारण न्यायालय भी अवश्य रहे होंगे। यह हम पहले ही देख चुके हैं कि अधिष्ठानक विभाग था और उसका कर्तव्य न्याय विभागसे सम्बद्ध था। ये न्यायालय सम्भवतः दो प्रकारके

'रासमाला अध्याय ११ पृ० २३७।

'तो राया बहुवर्गं वित्तविवरं दिवस चरम जाममि
अत्थाणी मंडव मंडलम्मि सिंहासने ठाइ
सामंत मंति मंडलिय सेट्ठिप्पमुहाण दंसणं देइ
विण्णत्तीओ तेसिं सुणइ कुणइ तहा पडीयारं।
कुमारपालप्रतिबोध पृ० ४४३।

थे। एक दीवानी और दूसरा सैनिक। अपराधियोंका पता लगानेके लिए गुप्तचरोंकी नियुक्ति होती थी। मोहराजपराजय नाटकमें तत्कालीन सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितिका सच्चा चित्रांकन हुआ है। इसमें दिखाया गया है कि मन्त्री पुंडरीकने जाँच पड़ताल तथा सूचना प्राप्तिके निमित्त गुप्तचरकी नियुक्ति की थी और राजा उससे चूतकुमारको पकड़नेकी आज्ञा देता है।[1]

नियमों तथा शास्त्रसे न्याय किया जाता था। फोर्बसने लिखा है कि मन्त्रीराज अथवा प्रधान अपने कर्मचारियोंके साथ पूर्वकालमें हुए लिखित निर्णयोंको लेकर सदा प्रस्तुत रहते थे। इस बातकी ओर भी सदा ध्यान रखा जाता था कि पूर्व निर्णयोंकी अवहेलना न होने पावे। इससे स्पष्ट है कि विवादोंका निर्णय करनेके लिए लिखित आधिकारिक अधिनियम बने थे। तत्कालीन साहित्यमें प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दोंसे भी अपराधोंके दंडका स्वरूप समझा जा सकता है। कारागार, निर्वासन आदि ऐसे पारिभाषिक शब्द हैं।[2] मोहराजपराजय नाटकमें कुमारपाल सुधारकों शृंखलामें बद्ध करनेकी आज्ञा देता है। चौर्य कर्म करनेपर कठिन दंड दिया जाता था। गंभीर अपराधोंके लिए निष्कासनका दंड नियत था। उक्त नाटकमें धर्मकुंजर कुमारपालकी आज्ञा पाकर द्यूत और उसकी पत्नी असत्या कौड़ी मद्य आंगलक मूत तथा मारिको खोजने जाता है। ये सभी राजाके धर्म परिवर्तनकी चर्चा करते हुए अपने निष्कासनकी अपवादिता भी उल्लेख करते हैं। तत्पश्चात इन सभीको पकड़कर राजाके सम्मुख उपस्थित करता है। सभी अपने अपने पक्ष समर्थनमें तर्क उपस्थित करते हैं और क्षमा याचना करते हैं। राजा उनको एक

---

[1] मोहराजपराजय चतुर्थ अंक, पृ० ८३।

[2] मोहराजपराजय अंक ४ पृ० ८२ एवं तत्पश्चात्कारागार निपतितं कुरु।

नहीं सुनता है और सभीके निष्कासनकी आज्ञा देता है।[1] मृत्युदंड भी दिया जाता था। शिलालेख इस तथ्यको प्रमाणित करते हैं कि राजाज्ञा उल्लंघन करनेपर मृत्युदंड दिया जाता था। विक्रम संवत् १२०६के कुमारपालके किराडू शिलालेखमें कहा गया है कि शिवरात्रिके विशेष दिन जीवहिंसाके अपराधके लिए साधारण लोगोंको मृत्युदंड दिया जाता था और राजपरिवारके सदस्योंको अर्थदंड देना पड़ता था।[2] इन सभी साधनोंसे निस्सन्देह कहा जा सकता है कि चौलुक्य राजाओंने न्याय विभागका व्यवस्थित संगठन किया था और उसीके द्वारा प्रजाके निमित्त न्याय कार्य संपादित किया जाता था।

जन निर्माण विभाग

जनसेवाका कार्य सरकार अपने जननिर्माण विभाग द्वारा सम्पादित कराती थी। राजा केवल कर ही नहीं वसूल करता था अपितु प्रजाका हित चिन्तन भी उसके कर्तव्यका एक अंग था। राज्यको जल तथा स्थल मार्गसे अच्छे यातायातकी व्यवस्था करनी पड़ती थी। तालाब और कुओंका निर्माण मुख्यतः दो विचारोंसे होता था। एक तो यात्रियोंकी सुख-सुविधाका ध्यान रखकर और दूसरे सिंचाईके विचारसे। मोढ़ेरा सिहोर तथा अन्य स्थानोंमें जल संचित कर रखनेकी व्यवस्था थी। मोढ़ेराके निकट ही कोन्दरमें यूनानी क्रास सदृश भाँति चार छोटे कुओंके मध्य एक गोल बड़ा कुआं ही विचित्र है। सूत्रधार मुंजपुर, स्थानमें

---

[1] वही पृ० ८३ ११०।

[2] या कर्मानिषम्य जीवानां वधं कारयन्ति कुर्वन्ति वाऽनयान्या दोषोपलिप्यते यो जीव वधं कुरुते तदा समंचनपंचदंडनीय राजपुत्रास्तु वर्धनीयाः। स्वहस्तोऽयं महाराज श्रीआल्हणदेवस्य इपि० इंडि० जि० ११ पृ० ४४।

गोल आकारमें तालाब मिलते हैं। इन तालाबोंमें अनेककी गोलाई साठ सौ गज थी। इनके चतुर्दिक छोटे-छोटे मन्दिर बने रहते थे और इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि इनकी संख्या लगभग एक हजार थी।[1] मालदीपके निकट धोमोमें अब तक एक आयताकार तालाब है जिसका ध्वंसावशेष अब वर्गाकारकी तरह है। यह सिद्धराज जयसिंहका बनवाया हुआ कहा जाता है। इसका नाम 'घोनेरिया तालाब' है। जयसिंहकी माता मीनलदेवीके शासनकालमें दो प्रसिद्ध तालाब बने थे। इनमें एक धोलकामें "मुलाव" है तथा दूसरा वीरमगांवमें "मानसूर" है। "मानसूर' तालाबकी रचना शंखाकारमें हुई है। समरभूमिमें भारतीयोंके रणवाद्य शंखके आकारमें ही इसका निर्माण हुआ है। इसमें जल संचयकी भी वैज्ञानिक पद्धति है। इसमें चारों ओरके प्रदेशका जल पहले गहरे अष्ट कोणाकार तालाबमें एकत्र होता था। यहां जलका मिश्रित पदार्थ जम जाता था। फिर पानी एक नाली द्वारा प्रवाहित होकर तालाबमें जाता था।

देशके विभिन्न भागोंमें इस कालके जितने कुएं मिलते हैं वे दो प्रकारके हैं। एक तो गोलाईके आकारमें बने हैं और उनमें कई तह तक आवास योग्य स्थान बने हैं। दूसरे प्रकारके कुएं "बावली" के रूपमें निर्मित हैं। ये बावलियां जिनका संस्कृत रूप 'वापिका' है अत्यन्त भव्य बनी हुई हैं। कुएं और तालाबोंका निर्माण-निमित्त प्यासे जीवोंकी तृषा शान्त करना था। साथ ही पारलौकिक दृष्टि भी इसमें सम्मिलित थी। पशु पक्षियों और वीरानी मार्ग जीवोंके लिए इनका निर्माण हुआ था।[2] ये कुएं और तालाब प्रायः उन्हीं स्थानोंमें मिलते हैं जहां जलकी कमी रहती थी। उदाहरणार्थ रानिक देवीने पट्टनवारा स्थानको ऐसा जलकी कमी

---

[1] रासमाला अध्याय ११ पृ २४५।

[2] वही पृ० २४७।

द्वारा निर्मित तालाब और कुएं मानवताकी दृष्टिके साथ ही सिंचाईके निमित्त भी बनवाये जाते थे। सत्रागारोंकी स्थापनासे प्रकट होता है कि राज्यमें लोककल्याणकारी समाजवादी प्रवृत्ति भी विद्यमान थी। बाढ़ अग्नि महामारी आदिके प्रकोपोंका सामना करनेके लिए राजकीय व्यवस्था निश्चित रूपसे रही होगी इसमें सन्देह नहीं।

सेना विभाग

सेना विभाग द्वारा ही राजा आन्तरिक उपद्रवों तथा बाह्य आक्रमणोंसे देशकी रक्षा करता था। सैनिक विभागकी समुचित व्यवस्थाका महत्त्व उस समय बहुत अधिक हो गया था जब मुसलिम आक्रमणका संकट उत्पन्न हो गया था। सेना प्राचीनकालकी भाँति चतुरंगिणी थी। इस बातके स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं कि कुमारपालके शासनकालमें सैनिक संगठन पूर्णरूपेण व्यवस्थित था। उस समय पैदल घुड़सवार, हाथियों तथा रथ सेनाके विद्यमान होनेके प्रमाण मिलते हैं।[1] राजप्रासादके निकट चतुर्दिक विशाल भवनोंमें शस्त्रागार था, वहीं हस्तिसेना रहती थी। इन्हीं भवनोंमें अश्वों तथा रथोंके रहने तथा रखनेका भी प्रबन्ध था।[2] सेनामें हाथियोंका विशेष महत्त्व था। कुमारपालने जिन सैनिक अभियानों

---

[1]श्रीमान कुमारपालोऽपि नास्येति प्रणिपत्यर्च। कदाचित्तिनी निशां वाममामार्ग सम पुरुष्म्। पञ्चानां प्रतिमानामि शृंखलाम् मुकुटांस्तथा। अश्वानां कविका कम्रा दाम पल्ययनानि च रथानां किङ्किणीजाल चामरं युगमण्डिकाः। योधानां हस्तिका वीरवल्ल यानि च चन्द्रकान्। सुवर्ण रत्न माणिक्य सूचीमुक्तमयान्यपि। चतुरङ्गेऽपि सैन्येऽसौ भूषणानि ददौ मुदा।

प्रभावकचरित, अध्याय २२, पृ० २०१।

[2]रासमाला : अध्याय १३, पृ २११।

का नतृत्व स्वयं किया था तथा जिसका नेतृत्व उसके आदेशपर उसके सेनापतियोंने किया था दोनोंमें हाथीका वर्णन विशेष विवरण सहित प्राप्त होता है। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि युद्धमें सफलता या विफलता अत्यधिक अंशोंमें इन्हीं हाथियोंपर निर्भर करती थी।[1] युद्ध कालके सभी किलोंमें राजाकी सेना रहती थी। सीमान्त प्रदेशके कुछ किलोंमें सामरिक महत्त्वके कारण सेना रखी जाती थी। इस प्रकारके सैनिक किले दुर्भाई तथा मुनमुखाराम स्थित थे। सेनामें मुख्यतः क्षत्रिय ही रहते थे। किन्तु चौलुक्योंके शासनकालमें एक विशेष एवं विचित्र स्थिति दृष्टिगत होती है। वह यह कि इस समय सेनामें वणिक भी उच्च सैनिक पदोंपर नियुक्त थे। उदयन तथा उसके पुत्र सेनापतिके पदपर थे। सैनिक विभागमें वणिक पद व्यवस्था थी। सामन्त सैनिक अधिकारी होते थे। कहा जाता है कि सिद्धराजने अपने परिवारके एक सदस्यको सौ गाँवोंकी सामन्तशाही प्रदान की थी। जब कुमारपाल अर्णोराज विरुद्ध युद्धमें गया था तो उसकी सेनामें बीस और तीसकी सामन्तशाहीके सैनिक भी उपस्थित थे। इन्हें महाभूत कहा जाता था। एक सहस्रकी सामन्ती रखनेवालेको "भूराज" कहते थे। इससे भी उच्च अधिकारी "छत्रपति" तथा मौलव रखनेवाले कहे जाते थे। इन्हें छत्र और वाद्य व्यवहार करनेकी आज्ञा थी। यह हम देख चुके हैं कि बहुतसे उच्च सैनिक पदाधिकारी वणिक थे। उदाहरणार्थ मुंजराज तथा मुंजालके पिता सान्तु व इनके उत्तराधिकारी मुजाल पर्वसिंह सिद्धराजके सैनिक थे। कुमारपालके शासनकालमें उदयन तथा उसके पुत्र उच्च सैनिक पदोंपर नियुक्त थे। ऐसे सेनानि जो नियमित सेनाके अन्तर्गत न होकर भी समय-समय सैनिक सेवा करते थे मुख्यतः बाहरी प्रदेशोंके प्रधान होते थे। यथा "कमीयन" के

---

[1] प्रभावकचरित अध्याय २२ पृ० २०१ तथा प्रबन्धचिन्तामणि : प्रकाश ४ पृ ७९।

राजा तथा राठौर समाजी। राजपूत तथा पैदल सैनिकोंकी ऐसी चर्चा आयी है जिससे प्रकट होता है कि राजपूत निश्चित रूपसे पैदल सेनाके प्रतीक थे।[1] प्रबन्धचिन्तामणिके रचयिता मेरुतुंगका कथन है कि कुमारपालने अपनी सेनाके विभिन्न विभागों तथा अधीनस्थोंको बुलवाया तथा उन्हें मल्लिकार्जुनके विरुद्ध आक्रमणके लिए भेजा।[2] यह तथ्य बताता है कि कुमारपालके शासनकालमें सेनाके सभी विभाग पूर्णतः सुसंगठित थे।

कुमारपालचरित प्रबन्धचिन्तामणि तथा प्रभावकचरितके चित्र रणोंसे युद्धभूमिकी गतिविधिका सुस्पष्ट चित्र हमारे सम्मुख आ उपस्थित होता है। किसप्रकार किलेपर आक्रमण किया जाता था सैनिक संगठन की पद्धति क्या थी राजधानीपर आक्रमणका ढंग शत्रुका प्रतिरोध भीषण युद्ध वाद्य तथा ईंधनकी कमी आदि सभी बातोंका उल्लेख आया है। सेना दंडाधिपति तथा दंडनायकके अधीन रहती थी। कभी-कभी राजा सेनाके सर्वोच्च सेनापतिकी हैसियतसे स्वयं समरभूमिमें सैनिकोंका नेतृत्व करता था।[3] चौलुक्योंके समय प्रायः युद्ध हुआ करते थे इससे यह समझना अनुचित न होगा कि उनके पास विशाल सेना थी। शत्रु पक्षकी शक्ति तथा उसकी गतिविधिका पता लगानेके लिए गुप्तचर नियुक्त किये

---

[1] राममाला : अध्याय ११ पृ० २११-२१४।

[2] "तद् विज्ञप्ति तदनन्तरमेव तं नृपं प्रति प्रमाणाय दस्तनामकी पुरुष पंचाय प्रगर्भ दत्वा समस्त सामन्तं समं विसर्जे"। प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश पृ ८०।

[3] द्वयाश्रय काव्य सर्ग ४ श्लोक ४१,६४।
प्रबन्धचिन्तामणि प्रकाश ४ पृ० ७९-८०।
[4] प्रभावकचरित : अध्याय २२, पृ २०१।
[5] प्रबन्धचिन्तामणि चतुर्थ प्रकाश पृ० ७९।

प्राप्त थे। मोहराजपराजयमें कुमारपालके मन्त्रीने धर्मकुमारको इस निमित्त नियुक्त किया।[1]

चौलुक्य राजाओंका महान उद्देश्य आदर्श राजा विक्रमादित्यका अनुगमनकर आन्तरिक व्यवस्था एवं बाह्य आक्रमणोंसे अपनी प्रजाका रक्षण तथा चतुर्दिक्के राज्योंको पराजित कर अपनी राज्य-सीमाका विस्तार करना था। ये सैनिक अभियान विजय यात्राके नामसे सम्बोधित किये जाते थे। कभी-कभी तात्कालिक कारणोंसे भी युद्ध घोषित होते थे। यथा जब गूर्जरिपुके विरुद्ध धार्मिक युद्ध प्रचारित किया गया अथवा जब यशोवर्मनके राज्यमें सिद्धराज शामिल हुए थे। इतना होते हुए भी सर्वत्रका उद्देश्य नहीं रहता था। यदि शत्रु अपने मुखमें तृण रखकर 'कर' देनेके लिए प्रस्तुत हो जाता तो विजेता इतने ही से सन्तुष्ट हो जाता था। वे विजित प्रदेशपर स्थायी अधिकारका कभी प्रयत्न न करते। विजयका अर्थ होता था वार्षिक आयमें एक अंशकी प्राप्ति। यह कर जिस प्रकार देशवासियोंसे एकत्र किया जाता था उसी प्रकार विदेशी राजाओंके प्रदेशों पर आक्रमणकर प्राप्त किया जाता था। मूलराजके वंशजोंने कच्छ सोरठ उत्तरी कोंकण मालवा अजमेर तथा अन्य प्रदेशोंपर अनेकानेक आक्रमण किये किन्तु उन राज्योंके मूल शासकोंका मूलोच्छेद कर उन्हें अपने स्थायी अधिकारमें नहीं लिया। मूलराजने गूर्जरिपुको पराजित किया और उसको तलवारके घाट उतार भी दिया किन्तु [illegible] तथा [illegible] मूलोच्छेद नहीं किया। इसी प्रकार यशोवर्माको जयसिंह सिद्धराजने युद्धमें पराजित किया था फिर भी अनेक वर्षोंके पश्चात् मालवाके अर्जुनवर्मनने पुनः गुजरातपर हमला किया।

---

[1] एवमुक्त्वेतु परिक्षिप्य विप्रं पुरुषगवेषणार्थं निपुणो नित्यमप्रमत्त-परिभ्रमति धर्मकुमारोऽयम् लोकपालिक:—मोहराजपराजय अंक ४ पृ० ७८।

सपादलक्षमें (शाकम्भरी-सांभर प्रदेश) अणहिलवाड़ेके शासकोंकी विजय पताका फहराती थी किन्तु फिर भी अजमेरके नरेश चुलराजके वंशजोंके सदा विरोधी और प्रतियोगी बने रहे। इस वृत्तिका अन्त उसी समय हुआ जब चौहान तथा सोलंकी दोनों ही शक्तियां यवन आक्रमकोंसे समान रूपसे पराजित हुईं।[1]

परराष्ट्र नीति तथा कूटनीतिक सम्बन्ध

शक्तिशाली चौलुक्य राजाओंका प्रतिनिधित्व मित्रदेश राज्योंमें उनके कूटनीतिक दूत करते थे। ये दूत सान्धिविग्रहीक कहे जाते थे। इनका कार्य अपनी सरकारको विदेशमें होनेवाले घटनाचक्रोंसे परिचित रखना था। इस कार्यमें उन्हें स्थान-पुरुषों अथवा उसी देशके लोगों या गुप्तचरोंसे सहायता मिलती थी। वाराणसीके राजाने सिद्धराजके सान्धि विग्रहकसे अणहिलपुरके मन्दिरों दुर्गों तथा तालाबोंके आकार प्रकारके सम्बन्धमें प्रश्नकर उपालंभ किया था।[2] एक समय सपादलक्ष देशसे कुमारपालके राजदरबारमें एक दूत आया। राजाने उससे सांभर नरेशकी कुशलता और सम्पन्नताके सम्बन्धमें पूछा। इसपर उक्त राजदूतने कहा उनका नाम "विश्वल" संसारको धारण करनेवाला है। उनके सदा सम्पन्न होनेमें भला क्या सन्देह है। कुमारपालके पार्श्वमें विद्वान कवि कपर्दी मन्त्री उपस्थित था। उसने कहा 'शल" तथा "श्वल" धातुका अर्थ होता है "शीघ्र जाना"। इसप्रकार विश्वल वह है जो चिड़ियाकी भांति शीघ्र उड़ जाय। इसके बाद जब राजदूत स्वदेश लौटा तो उसने बताया कि राजाकी उपाधिके प्रति कैसा असम्मान प्रकट किया गया। इसपर वहांके राजाने विग्रहराजकी उपाधि ग्रहण की। दूसरे वर्ष वहीं

---

[1] रासमाला : अध्याय ११ पृ० २३४-२३५।

रासमाला : अध्याय ११ पृ० २४०।

थी। शत्रु जब द्वारपर आ जाता था तब हिन्दू राजा रक्षात्मक तैयारियाँ प्रारम्भ करते थे। इसीलिए आक्रमणात्मक होनेकी अपेक्षा वे प्रायः आक्रमणोंसे अपनी रक्षामात्र करते थे। हिन्दू राजाओंकी विदेशी नीति इतनी संकीर्ण हो गयी थी कि यद्यपि छपारकदामें अनहिलवाड़ेके राजाकी विजय पताका फहराती थी फिर भी अजमेरके राजे पृथ्वीराजके वंशजोंसे उस समय तक लगातार प्रतियोगिता करते रहे जब तक चौहान और सोलंकी दोनों ही यवन आक्रमणसे पराजित तथा पददलित न हो गये। कुमारपालके समयमें चौलुक्योंकी राज्यसीमाका विस्तार अपनी पराकाष्ठाको अवश्य पहुँच गया था किन्तु उसकी साम्राज्यविषयक नीति आक्रमणात्मक न होकर रक्षात्मक थी। शाकम्भरी मालवा और सुरस्थलीममें कोंकण नरेशसे उसे बाध्य होकर ही युद्ध करने पड़े। किन्तु इसका उद्देश्य साम्राज्यविस्तार न होकर सिद्धराज जयसिंह द्वारा छोड़े गये चौलुक्य साम्राज्यकी रक्षा था।

आर्थिक और
सामाजिक व्यवस्था

देशकी तत्कालीन सामाजिक तथा आर्थिक अवस्थाका वास्तविक चित्रण समसामयिक नाटक 'मोहराजपराजय'में सम्यकरूपेण मिलता है। इसके अतिरिक्त हेमचन्द्र मेरुतुंग तथा सोमप्रभाचार्यकी रचनाओंमें भी इस कालके सामाजिक और आर्थिक जीवनकी प्रामाणिक तथा वास्तविक झांकी देखनेको मिलती है।

समाज चार वर्णोंमें विभक्त था—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र। जातीयताकी भावना संकुचित होती जा रही थी और वंश परम्परागत हो रही थी। समाजमें ब्राह्मणोंका सबसे उच्च स्थान था और राजा और प्रजा सभी समान रूपसे उनका आदर करते थे। चौलुक्योंके शासन कालमें ब्राह्मणोंने देशके राजनीतिक तथा धार्मिक जीवनको विशेष रूपसे प्रभावान्वित किया था। मन्दिरोंके लिए बहुतसे दानपत्र लिखे गये थे जिनके पुजारी ब्राह्मण ही होते थे।[1] इनमेंसे चार ब्राह्मण परिवार कन्नौज तथा उज्जयिनीके बड़े मठसे आये[2] थे और इन्होंने भी गुजरातमें उसी प्रकारके मठोंकी स्थापना की। इसकालके बहुत पहले जो उज्जयिनी शैव मतका केन्द्र थी अब महाकाल पाशुपत वामदेव कापाला मतके शैवोंकी आदिभूमि बन गयी। ये शैव—गुजरात काठियावाड़ तथा आबू स्थित शिवमन्दिरोंके मुख्य पुजारी हो गये।

---

[1] आर्के० सर्वे० इंडिया, वे० स० १९ ७-८ पृ० ५४-५५।

[2] आर्केलजी आव गुजरात; अध्याय १०, पृ० २०१।

देशकी तत्कालीन सामाजिक तथा धार्मिक अवस्थाका वास्तविक चित्रण यशःपालविरचित नाटक 'मोहराजपराजय' में सुन्दररूपसे मिलता है। इनके अतिरिक्त हेमचन्द्र, मेरुतुंग तथा सोमप्रभाचार्यकी रचनाओंमें भी इस कालके सामाजिक और धार्मिक जीवनकी प्रामाणिक तथा वास्तविक झाँकी देखनेको मिलती है।

समाज चार वर्णोंमें विभक्त था—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र। जातीयताकी भावना संकुचित होती जा रही थी और वंश परम्परागत हो रही थी। इनमेंसे ब्राह्मणोंका सबसे उच्च स्थान था और राजा और प्रजा सभी सम्मान करके उनका आदर करते थे। चौलुक्योंके शासन-कालमें ब्राह्मणोंने देशके राजनीतिक तथा धार्मिक जीवनको विशेष रूपसे प्रभावित किया था। मन्दिरोंके लिए बहुतसे दानपत्र लिखे गये थे जिनके पुजारी ब्राह्मण ही होते थे।[1] इनमेंसे चार ब्राह्मण परिवार कन्नौज तथा उज्जयिनीसे यहाँ आकर बसे थे और इन्होंने भी गुजरातमें उसी प्रकारके मन्दिरोंकी स्थापना की। इसकालके बहुत पहले जो उज्जयिनी शैव मतकी केन्द्र थी अब महाकाल, पाशुपत कापालिक कालामुख मतके शैवोंकी कर्मभूमि बन गयी। ये शैव—गुजरात काठियावाड़ तथा आबू स्थित शिवमन्दिरोंके मुख्य पुजारी हो गये।[2]

---

[1] आर्कि० सर्वे० इंडिया, रि० स० १९०७-८, पृ० ५४-५९।

आर्केओलॉजी आव गुजरात अध्याय १० पृ० २०६।

समाजमें दूसरा स्थान क्षत्रियोंका था जो शासक वर्गके थे और जिनका आदर ब्राह्मणोंके बाद ही दूसरे क्रममें किया जाता था। ये शस्त्र चलाना जानते थे और इनका मुख्य धन्धा युद्ध करना था। राजाके साथ रणभूमिमें राजपूत जातिके योद्धा भी उपस्थित रहते थे। फोर्बसने इनका जो वर्णन किया है इससे इनके स्वरूपका सम्यक बोध हो जाता है। उसने लिखा है कि भाला और तलवार उसकी विशाल भुजाओंमें सुशोभित होता था। समरभूमिमें उसके नेत्र क्रोधसे आरक्त हो जाते थे। उसके कानके लिए रणनिनादका स्वर उतना ही परिचित था जितना राजमहलके मधुर वाद्योंकी ध्वनि था। वह शस्त्रधारी व्यक्ति होता था और क्षत्रियत्व प्रधान भी।[1] राज्यके शासन तथा सैनिक दोनों विभागोंमें ये महत्त्वपूर्ण उच्च पदोंपर नियुक्त होते थे। प्रायः सभी राजपूत घरोंके प्रधान बड़ी-बड़ी भूमिके स्वामी थे। इनमेंसे कुछ सामन्त अथवा सैनिक अधिकारी थे तो कुछ सेनामें सैनिकके रूपमें भी थे। राजपूत तथा पैदल सैनिकोंकी इसप्रकार चर्चा की गयी है जैसे वे निश्चित रूपसे पदाति सेनाके अन्तर्गत हों।[2] इसप्रकार राजपूत भूमिके स्वामी तथा राज्यमें कुलीनतन्त्रके प्रतिनिधि थे। इनका मुख्य कार्य सेना तथा प्रशासनमें योगदान देना था।

इस समय गुजरातमें वैश्य भी समाजके बहुत महत्त्वपूर्ण अंग माने जाते थे। उद्योग और व्यवसाय ही उनका मुख्य धन्धा था। राजधानी अनहिलवाड़ेके वणिक बहुत ही सम्पन्न थे। नगरमें अनेकानेक सत्ताधिपति थे और कोटिश्वरोंके भव्य भवनोंपर ऊंची पताकाएं तथा घंटे टंगे रहते थे। उनका वैभव पूर्णतः राजकीय वैभवके समान लगता था। उनके पास हाथी घोड़े थे और उन्होंने धर्मशालाओंकी भी व्यवस्था की थी।

---

[1] रासमाला : अध्याय ११ पृ० २१०-२११।
[2] रासमाला : अध्याय ११ पृ० २१४।

व्यापारी पोतोंसे विदेशी समुद्रमें जाकर व्यापार द्वारा विशाल धनराशि अर्जित करते थे।[1]

चौथा और अन्तिम वर्ण शूद्रोंका था। ये मुख्यतः खेतीमें लगे थे। बरठी मातामें इन शूद्रोंकी आवाज सरकारमें नहीं थी। सामाजिक ढांचेमें वे सबसे निम्नतम जातिके माने जाते थे। इसी वर्णके अन्तर्गत उस जातिके लोग भी थे जिनका काम श्रम करना था और जिनका आर्थिक स्तर अत्यन्त निम्न था। एक सुदृढ़ सामाजिक ढांचेका स्वरूप विलुप्त हो गया था। वर्णोंमें परिवर्तन सम्भव था किन्तु इसके लिए जाति परिवर्तनकी आवश्यकता न थी। मुसलिम आक्रमणोंके फलस्वरूप विदेशी तत्त्वोंका आत्मीयकरण त्याग दिया गया था और जातीय भावना अत्यन्त दृढ़ हो गयी थी।

चारों वर्ण अथवा जातियोंका पारस्परिक सम्बन्ध था। ब्राह्मण शिक्षक और प्रचारक थे। क्षत्रिय शासन कार्य और देशकी रक्षा करते थे। वैश्य अपने उद्योग एवं व्यवसाय द्वारा देशको सम्पन्न बनाते थे और शूद्र कृषि तथा अन्य शारीरिक श्रमका कार्य करते थे। इसप्रकार समाज की भावना अविच्छेद्य और परस्पर सहयोगी संघटनकी भांति थी। किन्तु इस समय समाजका उक्त आदर्शवादी स्वरूप व्यवहारमें दृष्टिगत न होता था। अनहिलवाड़ेमें ब्राह्मणों राजपूतों तथा वैश्योंमें राजनीतिक प्रभुत्वके लिए प्रतियोगिता होती थी। समाजके इस स्वरूपको समझनेके लिए उनके विस्तृत इतिहाससे परिचित होना आवश्यक है।

ब्राह्मणोंकी बस्तियां

आधुनिक गुजरातमें ब्राह्मणोंकी विभिन्न जातियोंकी प्रधानताका परिचय शिलालेखों द्वारा मिलता है। कनौजिया बडनागरा सिहोरिया ब्राह्मण प्राचीनकालमें कान्यकुब्ज आनन्दपुर तथा सिहोरसे आये

[1] मोहराजपराजय पृ १०।

थे।[1] एक राष्ट्रकूट अभिलेखसे इस प्रकारके आगमनका निश्चित रूपसे पता लगता है।[2] इसमें मोढ़ाकाको ब्राह्मण स्थान कहा गया है। इलयोगनका कथन है कि मोढ़ाका ब्राह्मण इस स्थानमें पाये जाते थे। उसका यह भी अनुमान था कि चौदहवीं शताब्दीमें वे गुजरातमें आये।[3] किन्तु राष्ट्रकूटोंके अनेक विवरणोंसे विदित होता है कि "मोढ़ाका" ब्राह्मण नौवीं सदीमें भी गुजरातमें थे। बहुत सम्भव है कि राष्ट्रकूटोंके अधिकारके दिनोंमें वे दक्षिणसे आये हों। इलयोगनका कथन है कि वे सम्भवतः वेदज्ञ थे।

एक परमार अभिलेखसे नागर ब्राह्मणोंकी प्राचीनता की शताब्दी पूर्व तक जाती है।[4] इसमें आनन्दपुरके ब्राह्मणोंको नागर कहा गया है। बड़नगर प्रशस्तिमें बादमें उक्त स्थानको द्विजमहास्थान तथा विप्रपुर कहा गया है।[5] मोढ़ ब्राह्मण विभिन्न शासन विभागोंमें सर्वप्रथम काम करते हुए दिखायी पड़ते हैं विशेषकर वे महासांधिविग्रहिकके पदपर थे।

---

[1] सिहोर (सिंहपुर) ब्राह्मणोंको अत्यन्त प्राचीन कालसे संरक्षण प्राप्त हुआ था किन्तु सिद्धराज जयसिंहने इन्हें बहुत बड़ी संख्यामें बसाया था। देखिये हेमचन्द्र कृत द्वयाश्रय सर्ग १५, पृ० २८७।

[2] भड़ौचके ध्रुव द्वितीयका दानलेख, इंडि० ऐंटी० खंड १२, पृ० १७९।

[3] फास्टर्स् एंड ट्राइब्स आव गुजरात : खंड १, पृ० २१४।

[4] वही।

[5] आनन्दपुरके एक नागर ब्राह्मणको मोढ़कदासक विषयके दो ग्राम कक्करोतक तथा सिहाचण, शिलादित्य द्वारा दिये गये थे। —एपि० इंडि० खंड १९, पृ० २११।

[6] एपि० इंडि० : खंड १, पृ० २९१ ३०५ तथा इंडि० ऐंटी० खंड १०, पृ० ११।

[7] इलयोगन : औ० सी० १ पृष्ठ २१८।

मूलराजने ब्राह्मणोंको श्रीस्थलपुर, ग्राम स्वर्ण रत्नादिके हारोंसे युक्त रत्नों सहित प्रदान किया था। उसने सिंहपुरकी सुन्दर तथा सम्पन्न नगरी अन्यान्य भेंटों सहित दस ब्राह्मणोंको दी थी। सिंहपुर और सिंहोरके निकट उसने बहुतसे ब्राह्मणोंको छोटे-छोटे गांव दिये थे। उसने स्तम्भ तीर्थ भी संन्यासियोंको साठ घोड़ों सहित दिया।[1] औदीच्य ब्राह्मणोंको जो उदीच्य (उत्तर)से आये थे कहा जाता है कि मूलराजने इन्हें उत्तरसे आमन्त्रितकर काठियावाड़ तथा गुजरातमें अनेक ग्राम दिये। इस सम्बन्धमें शिलालेख दानलेख तथा जो अभिलेख प्राप्त हुए हैं उनसे इनकी विशेष पुष्टि नहीं होती।[2] एक शिलालेखमें "उदीच्य ब्राह्मण"का उल्लेख आया है।[3] बहुत सम्भव है कि कन्नौज तथा मालवासे आये ब्राह्मण ही औदीच्य कहे जाते रहे हों। शिलालेखादिसे यह नहीं विदित होता कि चौलुक्योंके समय गुजरातमें उत्तरके ब्राह्मण आकर बसे हों।

इन विवरणों तथा प्रमाणोंसे इतना तो अवश्य ही स्पष्ट हो जाता है कि चौलुक्य राजाओंके शासनकालमें बड़ी संख्यामें ब्राह्मणोंको राज संरक्षण प्राप्त हुआ था। इनकी गतिविधि धार्मिक कृत्यों तक ही सीमित न थी अपितु ये शासनविधानमें भी उत्तरदायी पदोंपर कार्यकर राजाको प्रभावित करते थे।

ब्राह्मणवादका पुनरोदय

यह प्रश्न करना स्वाभाविक ही है कि ब्राह्मणोंको इसप्रकारका राज

---

[1] रासमाला : अध्याय ४ पृ० ६४-६५।

[2] आर्केलाजी आव गुजरात अध्याय १० पृ० २०८।

[3] जर्नल आव बम्बई ब्रांच रायल एशियाटिक सोसायटी १९० अतिरिक्त अंक ४९।

आर्केलाजी आव गुजरात अध्याय १० पृ० २०८।

थे"।' दूतक महाक्षपटलिक आदिके महत्त्वपूर्ण पदोंपर भी ब्राह्मण कार्य करते थे।' फोर्बसने लिखा है कि चौलुक्योंकी राजसभामें नमी पीढ़ीके ब्राह्मण थे।' विक्रम संवत् १२११के कुमारपालके नाडोल पत्र लेखमें उसके मन्त्रीका नाम महादेव लिखा है। यह सम्भवतः उसके प्रारम्भिक राज्यकालमें उदयनका पुत्र था जो प्रधान सेनापति अर्थात् दण्डाधिपति होनेके साथ ही प्रधान मन्त्री या महामात्य भी था। किन्तु पाली शिलालेखमें महामात्यका नाम महादेव लिखा है इससे विदित होता है कि उसने पुनः शोभा प्रभुत्व प्राप्त कर लिया था। नागर ब्राह्मणों तथा वैश्य वणिकोंमें प्रभुत्व प्राप्तिकी जो पुरानी प्रतियोगिता चली आती रही है उसे मन्त्रिमंडलके इन परिवर्तनोंसे भली प्रकार समझा जा सकता है।' देशके सामाजिक तथा राजनीतिक जीवनको ब्राह्मण अत्यधिक प्रभावान्वित करते थे इसमें सन्देह नहीं।

वैश्योंका उदय

ब्राह्मणवादकी परम्परा और गुजरातमें इसके विभिन्न सम्प्रदायोंके प्रचार-प्रसारका श्रेय यदि ब्राह्मणोंको है तो यहांके वैश्योंकी देन भी कुछ कम नहीं। गुजरातके वैश्यों वणिको या वणिकोंने ही मुख्यतः जैनधर्म और संस्कृतिका प्रचार किया। इन्होंने भव्य कलापूर्ण मन्दिरोंका निर्माणकर गुजरातको उन्नत कलाओंसे अलंकृत किया तथा राजनीतिक क्षेत्रमें पदार्पण कर यामनमूल हस्तक्षेप करनेमें भी सफलता प्राप्त की। इसमें प्रायः

'इपि॰ इंडि॰ खंड ९, पृ॰ २९१।
'इनयौबेन ओ॰ सी॰ पृ॰ २२८-२२९।
रासमाला अध्याय १३ पृ॰ २११।
इंडि एँटी॰ खंड ४१, पृ॰ २०२-३।
आर्केलाजिकल सर्वे आफ इंडिया, वेस्टर्न सरकिल।

जो पोरवाड़ तथा प्राग्वाटके नामसे प्रसिद्ध हैं विशेष उल्लेख्य हैं। देलवाड़ा मन्दिरोंके निर्माणकर्ता वस्तुपाल तथा तेजपालने अपने और अपने सम्बन्धियों विषयक अनेकानेक अभिलेख अंकित कराये थे। तदनन्तर जैनधर्मके स्तम्भ होनेके अतिरिक्त उनके पूर्वज राज्यके योग्य मन्त्री भी हो चुके थे।[1] इसी प्रकारकी मोढ़ोंकी भी परम्परा थी। एक शिलालेखमें कहा गया है कि ये बहुत उच्च और राजाकी प्रशंसाके मान्य माने जाते थे।[2] इनमें तथा पोरवाड़ों दोनोंमें जैन[3] तथा अन्य धर्मावलम्बी होते थे। इस समय वैश्योंकी उपजाति कायस्थोंका भी उल्लेख आया है जो अभिलेख आदि विशेषकर भूमि सम्बन्धी दानपत्र लिखा करते थे। उनके इस कार्यसे सम्बन्धके कारण ही "कायस्थ माथुर" का अस्तित्व हुआ और जिसकी प्रसिद्धि वालभ्य कहलाने की।[4] यह भी ध्यानमें रखनेकी बात है कि राज्यके उच्चतम अधिकारियोंमें प्रमुख वणिक ही थे। यथा युवराज तथा मुञ्जके आम्र धर्माढ्य सिद्धराजके समय मुंजाल और कुमारपालके समय उदयन उसके पुत्र तथा अन्य लोग।[5]

इस राजनीतिक प्रभावके अतिरिक्त वणिक वर्ग ही उद्योगपतियों और

---

[1] मार्कसकी आव गुजरात : अध्याय १० पृ० २१०।

[2] वही। इसमें जैनके सूर्य मन्दिरका उल्लेख है जिसे एक जैनने बनवाया था। ऐसा प्रतीत होता है कि मोढ़ और प्राग्वाट परस्पर सम्बन्धी थे। आबू शिलालेखमें लिखा है कि वस्तुपाल प्राग्वाटने जो मोढ़ था उसके लिए बनवाया।

[3] बी० पी० एस० आई० पृ० २४० सूची संख्या ६१९।
एपि० इंडि० खंड ८ पृ० २२१। श्रीमाली तथा ओसवाल आबू जैन शिलालेखोंमें अंकित हैं।

[4] मार्कसकी आव गुजरात अध्याय १० पृ० २११।

[5] रासमाला : अध्याय १३ पृ० २११।

व्यवसायियोंका भी वर्ग था। सम्पत्तिके अनुसार वणिकोंकी विभिन्न श्रेणियां थीं। इसीके अनुसार वे बनिया वणिक महत्तर वणिज और महाजन कहलाते थे। सबसे अधिक सम्पन्न तथा वैभवशाली उद्योगपति नगरश्रेष्ठि होता था।[1] जैन धर्माधिपति इस बातकी प्रतिज्ञा करते थे कि वे धन सम्पत्तिका एक निश्चित भाग ही लेंगे और शेष धार्मिक कार्योंमें व्यय करेंगे। कुबेरने छ करोड़ स्वर्ण मुद्रा आठ सौ तुला चांदी आठ तुला बहुमूल्य रत्न दो सहस्र अमके कुम्भ, दो सहस्र तेलकी झारी पचास सहस्र घोड़ एक सहस्र हाथी अस्सी सहस्र गाय पांच सौ हल घर गाड़ी दिक्के आदि रखनेकी प्रतिज्ञा की थी।[2] इन जैन उद्योगपतियोंकी शक्ति यहां तक पहुंच गयी थी कि नगरसेठ तथा दण्डनायक विमल पाटन छोड़कर चले गये थे और चन्द्रावती नामक नगर बसाया था। बहुतसे सम्पन्न उद्योगपति वहां गये और जाकर वहीं बस गये। राजधानीकी राजनीतिसे मुक्त होकर उन्होंने पंचायतके माध्यमसे कार्य प्रारम्भ किया। उनपर राजधानीका प्रभाव तथा नियन्त्रण केवल नामका था।[3]

जैन तथा राजपूतोंमें गहरी प्रतियोगिताकी भावना थी और प्रायः यह संघर्षका रूप धारण कर लेती थी। जैन वणिक धनी और शक्तिशाली दोनों थे। चालुक्य चौलुक्य राजाओंके सम्मुख यह समस्या रहती थी कि किसप्रकार धनी शक्तिशाली तथा प्रभावशाली जैन श्रावकोंको अनुकूल एवं नियन्त्रित रखा जाय। कर्णदेवके शासनकालमें राजधानीमें जैनोंका प्रभुत्व बढ़ गया था। बहुतसे श्रावक पाटन लौट आये और कर्णदेवकी दुर्बलताका लाभ उठाकर अपनी नीति कार्यान्वित करनेमें सफल हुए। उनकी यह धारणा बन गयी थी कि राजा तो नाममात्रका राजा है वास्त

[1] मोहराजपराजय अंक ३ पृ० ५९।

[2] वही, पृ० १०-११।

[3] के० एम० मुन्शी : पाटनका प्रभुत्व पृ० ३ तथा ४१।

िक शक्ति तो उनके हाथमें थी।[1] अभिप्राय यह कि जैन श्रमियों तथा नगर श्रेष्ठियोंका राजनीतिमें प्रभाव दिन प्रतिदिन अधिक होता जा रहा था और वे एक नयी शक्तिके रूपमें अग्रसर हो रहे थे।

ब्राह्मणोंके पुनरोदय वैश्योंकी शक्ति नेतृत्व और उदारभावना क्षत्रियोंकी सुदृढ़ रक्षात्मक तथा प्रोत्साहनपूर्ण कार्यपद्धति और सन्तुष्ट चतुर्थ वर्णके कर्तव्योंके फलस्वरूप मध्यकालीन गुजरात वैभव एवं उन्नतिकी ओर अग्रसर हो रहा था।[2]

विवाह संस्था

विवाहकी संस्था इस समय अच्छी तरहसे संघटित और व्यवस्थित थी। आठ प्रकारके विवाह साधारणतः होते थे। सगोत्र तथा सपिण्डमें विवाह नहीं होता था। बहुविवाहके बहुतसे उदाहरण मिलते हैं। क्षत्रिय राजा धर्म अधिकतर एकसे अधिक पत्नियाँ रखता था। इस बातका उल्लेख मिलता है कि कुमारपालने तीन रानियोंसे विवाह किया था। प्रभावकचरित्रमें उसकी रानीका नाम भोपालदेवी लिखा है।[3] ऐतिहासिक नाटक मोहराजपराजयमें कुमारपाल और रूपासुन्दरीसे विवाहका वर्णन मिलता है जो जिनमण्डनके अनुसार संवत् १२१६में हुआ था।[4] कुमारपालने मेवाड़ प्रान्तकी सिसोदिया रानीसे विवाह किया था,

---

[1] के० एम० मुन्शी : गुजरातका प्रभुत्व, पृ० ३ तथा ४३।

[2] ग्लोरीज आव गुजरात : अध्याय १० पृ० १११।

[3] "तस्य भोपालदेवीति कलत्रमनुपमम्भवत्"। प्रभावकचरित : अध्याय २२, पृ० १९६।

[4] रूपासुन्दर्याः संवत १२१६ मार्गशुदि द्वितीयादिने पाणिग्रहणं श्री कुमारपाल महीपालः श्रीमदर्हद्देवता समक्षम्। जिनमण्डन कुमारपाल-प्रबन्ध।

इसका भी उल्लेख मिलता है।[1] ब्राह्मणोंके धार्मिक कथाप्रसंगमें भी उक्त विवादकी चर्चा आयी है।[2] यह कथा इस प्रकार है। जब सिसौदिया रानीने यह सुना कि राजाने प्रतिज्ञा की है कि राजमहलमें प्रवेश करनेके पूर्व उसे हेमाचार्यके मठमें जाकर जैनधर्मकी दीक्षा लेनी होगी तो रानीने पाटन जाना अस्वीकार कर दिया जब तक उसे इस बातका आश्वासन न दे दिया जाय कि उसे हेमाचार्यके मठमें न जाना होगा। इसपर जब कुमारपालके चारण जयदेवने इसका दायित्व अपने ऊपर लिया तब रानी पाटन आयी। उसके आगमनके कई दिन बाद हेमाचार्यने राजासे बातें कीं कि सिसौदिया रानी मेरे मठमें नहीं आयी। इस पर राजाने रानीसे कहा कि उसे अवश्य जाना चाहिये। इधर रानी अस्वस्थ हो गयी। उसकी बीमारीका हाल सुनकर चारणकी पत्नी उसे देखने गयी। रानीकी कहानी सुनकर चारणकी पत्नी उसका वेश परिवर्तनकर चुपचाप अपने घर ले आयी। रातमें चारणोंने नगरकी एक दिवार तोड़कर एक द्वार बनाया और उसी मार्गसे रानीको घर पहुंचानेके लिए रवाना हुए। जब कुमारपालको इस घटनाका पता लगा तो वह दो हजार घुड़सवारोंके साथ उसकी खोजमें निकला। चारणने रानीसे कहा कि मेरे साथ दो सौ घुड़सवार हैं। हममेसे कोई भी जब तक जीवित रहेगा घबड़ानेकी आवश्यकता नहीं। रानीसे इतना कहकर वह पीछा करनेवालोंकी ओर मुड़ा पर रानी का साहस जाता रहा और उसने गाड़ीमें ही आत्महत्या कर ली। उधर युद्ध चल रहा था और पीछा करनेवाले गाड़ीकी ओर आगे बढ़ ही रहे थे कि दासियोंने चिल्लाकर कहा "लड़ाई बन्द करो। रानी अब नहीं रही।" कुमारपाल तथा उसके सैनिक राजधानी लौट गये।

ब्राह्मण तथा जैनधर्मकी इस संघर्षमयी कहानीसे कुमारपालके उस

---

[1] रासमाला, अध्याय ११, पृ० १९२-१९३।

[2] वही।

विवाहका पता चलता है जो मेवाड़के मण्डलमें हुआ था। इसप्रकार कुमार पालकी तीन रानियोंका उल्लेख मिलता है। कुमारपालके जीवनवृत सम्बन्धी प्रामाणिक ग्रन्थों तथा समसामयिक साहित्यमें उसके इस विवाहका उल्लेख नहीं मिलता और न इस घटनाकी चर्चा ही आयी है। इससे इसकी सत्यता संदिग्ध है। यह हम पहले ही देख चुके हैं कि राज्यारोहणके समय कुमारपालने अपनी रानी भोपालदेवीको पट्टरानी बनाया।

एक बात ध्यान देने योग्य है कि इसकालमें अन्तरजातीय विवाहके भी उदाहरण मिलते हैं। भीमदेवकी तीन रानियां थीं। जिनमें एक वणिक कन्या बकुलादेवी भी थी।[१] देवप्रसाद और मयणसेठ मुंजालकी बहन हंसाका विवाह जो वणिक थी इस प्रकारके विवाहका दूसरा उदाहरण है।[२] इससे स्पष्ट है कि सामाजिक सम्पर्क और सम्बन्धपर प्रतिबन्ध न था। स्वयंवरकी कोटिके विवाह भी इस समय होते थे। संयुक्ताके स्वयंवरकी घटना पृथ्वीराज रासोमें अंकित है। कोर्बसने भी "स्वयंवर मंडप"का उल्लेख किया है जिसमें राजकुमारी अपने इच्छित योद्धाको वरमाला पहनाती थी। उसने उक्त समामंडपको विवाहका 'प्रकाशमय स्थल' कहा है जहां प्रेमकी देवी अपने देवके पार्श्वमें विराजमान रहती थी।[३]

सामाजिक रीति और रिवाज

यह काल राजपूतोंकी वीरता तथा गौरवके युगका था। समाजका नैतिक स्तर बहुत उच्च था। चरित्र तथा सम्मानके अभावमें लोग पापके पश्चातापपूर्ण जीवनके बदले मृत्युको उत्तम समझते थे। अपदेव चारणका

---

[१] प्रबन्धचिन्तामणि अध्याय ९, पृ० ७७ तथा के० एम० मुन्शी : ग्लोरी आफ गुर्जर देश, पृ० ४२।

[२] पाटनका प्रभुत्व पृ० ४५।

[३] रासमाला : अध्याय १६, पृ०

उदाहरण हम देख चुके हैं जिसने सिसोदिया रानीको ले जाने तथा अपने वचनके पालनमें जान तक दे दी। चारण जयदेवने देखा कि अब उसका वचन भंग हो रहा है और उसका नैतिक पतन हो गया है इसलिए उसने मृत्यु वरणका निश्चय किया। वह सिद्धपुर चला गया और वहाँसे उसने अपनी जातिके लोगोंको लाल स्याहीसे पत्र लिखा। उसने पत्रमें लिखा था कि "हमारी जातिका सम्मान चला गया इसलिए जो मेरे साथ चितामें जलनेके इच्छुक हों वे प्रस्तुत हो जायें।" ईखकी ढेर लगायी गयी और जो सपत्नीक जलना चाहते थे उन्होंने दो और जो अकेले थे उन्होंने एक ईख उठायी। चिताएं प्रस्तुत की गयीं। चिता और चबूतर तैयार किये गये।[1] सिद्धपुरमें सरस्वती नदीके किनारे प्रथम चबूतर बनाया गया था। दूसरा पाटनसे थोड़ी दूर (बालकी धूरी)पर और अन्तिम चबूतर नगरके प्रवेश द्वारपर बनाया गया था। प्रत्येक चबूतरपर सोलह सोलह भाट अपनी पत्नी सहित जलकर भस्म हो गये। जयदेव चारणकी बहनका एक लड़का कनौजमें था। उसे भी एक पत्र लिखा गया था किन्तु उसकी माताने और कोई दूसरा पुत्र न होनेके कारण उसे जाने न दिया।

चबूतरपर चारणोंके भस्म हो जानेपर उनके पुरोहितने उन भस्मोंको गंगामें प्रवाहित करनेका निश्चय किया। भस्म बैलगाड़ीपर लादी गयी और पुरोहित उसे लेकर कनौजकी दिशामें गया। संयोगसे जय देवका भतीजा कनौजमें चुंगी विभागमें था। उसने इस गाड़ीको व्यापारिक वस्तुओंकी गाड़ी समझ कर निकासी कर मांगा। इसपर पुरोहितने सारा विवरण बताते हुए कहा कि बैलगाड़ीमें कैसी भस्म लदी है। इसपर भाट अपने परिवारको एकत्रकर पाटन आये। एक स्त्री जिसे कुछ समय पूर्व ही बालक उत्पन्न हुआ था अपना शिशु पुरोहितको सौंप अपने पतिके

[1] फोर्बसने लिखा है कि चिता केवल एक व्यक्तिके जलनेके लिए थी और चबूतर एकसे अधिकके लिए।

साथ भस्म हो गयी। अब तक पाटन जिलेमें भाट और चारण अपनेको उक्त चिताका ही वंशज बताते हैं।[1] फ़ोर्बस् द्वारा उल्लिखित उक्त कथाकी पुष्टिका अभाव तथा उसके समर्थनमें अन्य प्रामाणिक सूत्रोंका मौन उसकी सत्यतापर सन्देह उत्पन्न करता है। विशेषकर जब कि इस कालकी धार्मिक सहिष्णुता भारतके इतिहासमें अभूतपूर्व रही है। इस प्रकारकी धार्मिक संकीर्णताके लिए कुमारपालके राज्यकालमें कोई सम्भावना ही न थी। अतः ऐतिहासिक घटनाके रूपमें और स्पष्ट प्रमाणोंके अभावमें रानीकी आत्महत्या तथा चारणोंका चितामें भस्म होना सत्य नहीं अपितु धर्म-विशेषकी विरोध भावनाकी कल्पना मात्र ही प्रतीत होता है।

इस कथाका विश्लेषण करनेपर उस युगके चरित्र विशेषका परिचय मिलता है। चिता और अमूरपर लोग अपना अन्तिम संस्कार करते थे। उस समय लोग अपने सम्मान तथा प्रतिष्ठाके लिए चिता अथवा अमूरपर जीवित जलकर भस्म हो जाते थे। इस समय कर्तव्य तथा ईमानदारीकी जैसी उच्च नैतिक भावना थी उसका उदाहरण संसारके इतिहासमें कहीं नहीं मिलता। प्राचीन भारतीय इतिहासमें राजपूतोंकी वीरता लोक-प्रसिद्ध थी। चितापर जलनेकी उक्त प्रथामें सती प्रथाका रूप भी देखा जा सकता है। उक्त कथासे यह भी विदित होता है कि मृत शरीरकी भस्म गंगामें बारहवीं शताब्दीमें भी प्रवाहित की जाती थी।

आर्थिक अवस्था

कुमारपालचरित[2] और कुमारपालप्रतिबोधमें राजधानी अनहिल-वाड़ाका जो वर्णन है उससे हमें तत्कालीन आर्थिक जीवनकी झाँकी प्राप्त हो जाती है। यही नहीं उनसे राज्यकी विविध आर्थिक गतिविधि तथा जनताके उद्योग धन्धोंपर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। अनहिल-

[1] रासमाला अध्याय ११, पृ० १९३ १९४।

[2] हेमचन्द्र : कुमारपालचरित, प्रथम सर्ग।

पाटक बारह कोस लगभग २४ मीलके घेरेमें बसा था। इसमें अन
मन्दिर तथा उच्च विद्यालय थे। इसमें चौरासी महल्ले थे। इतनी
संख्या यहांके बाजारोंकी भी थी। यहां स्वर्ण और रजतकी मुद्रा ढाल
वाले गृह भी थे। सभी वर्गोंका अपना पृथक्-पृथक् क्षेत्र था। व्यापार
वस्तुओंमें हाथीदांत रेशम हीरे, मोती आदि उल्लेख्य थे। मुद्रा-विनिम
करनेवालोंका अपना अलग बाजार था तो सुगन्धके विक्रेताओंका भे
भी पृथक था। चिकित्सकों कलाकारों स्वर्णकारों और चांदीका का
करनेवालोंके अलग-अलग बाजार थे। नाविकों, चारणों तथा कथावाचियों
विचरण स्थानवालोंके स्थान पृथक्-पृथक् थे। अट्ठारहों "वरण" नगर
वास करते थे और सभी प्रसन्नतापूर्वक रहते थे। राजप्रासादके चतुर्दि
मध्य भवनोंकी पंक्तियां थीं। हाथी, घोड़े रथ तथा शस्त्रागारके लि
भवन बने थे। राज्याधिकारियों और धन आय-व्यय निरीक्षकोंके लि
भी पृथक स्थान थे।

प्रत्येक प्रकारके मालके लिए पृथक्-पृथक् चुंगीघर बने थे। या
आयात-निर्यात तथा विक्रय कर एकत्र किया जाता था। कर तथा चुं
लगनेवाली वस्तुओंमें मसाला फल, दवाइयां कपूर, धातु तथा दे
विदेशकी सभी बहुमूल्य वस्तुएं थीं। यह समस्त संसारके व्यापार
केन्द्र था। इस स्थानमें प्रतिदिन एक लाख गुद्राम (टका) कर रू
एकत्र होता था। यहांकी सम्पन्नताका इसी बातसे सरलतापूर्वक अनुमा
किया जा सकता है कि पानी मांगनेपर दूध मिलता था। यहां बहुत
जैन मन्दिर थे। एक झीलके तटपर सहस्रलिंग महादेवका मन्दिर निर्मि
था। यहांकी जनसंख्या गुलाबी तेरों चम्पक आम्रवृक्षों तथा विभि
प्रकारकी लताओंके मध्य उन फुहारोंके मध्य विचरणकर प्रसन्नता
अनुभव करती थी जिनके जल अमृतके समान थे।[1]

---

[1] दास वणिक्मीमांसा पृ० १५५-८।

उद्योग और धन्धे

उपर्युक्त विवरणमें विभिन्न धन उद्योग धन्धोंका उल्लेख आया है। जैन व्यवसायी बड़े उद्योगपति थे इसका भी वर्णन मिलता है। विदेशोंसे व्यापार होता था। इसका प्रमाण हमें उस प्रसंगसे मिलता है जिसमें कहा गया है कि राजधानीके कुबेर नामक कोट्याधीशका निधन समुद्र यात्रामें हो गया।[1] कुबेर विदेशोंसे व्यापार करनेके लिए पाटनसे भरूच (भृगुकच्छ) गया था और वहांसे १० पोतोंमें माल भरकर विदेश गया। विदेशोंमें अपना सारा माल बेचकर उसने चार करोड़ रुपयेका लाभ प्राप्त किया। वहांसे स्वदेश लौटते समय समुद्रमें भीषण आंधी आयी और उसकी सभी नावें छिन्न-भिन्न हो गयीं। कुछ नावें भरूच बन्दरगाहपर आ गयीं किन्तु कुबेरका कहीं पता न लगा। इसप्रकार समुद्रमें विशाल और बहुसंख्यक पोतों द्वारा व्यवसायका वर्णन भी मिलता है। पत्तनों, समुद्रमें व्यापार करनेवालों तथा समुद्री डाकुओंका भी उल्लेख आया है। वहुटी (वोहुटी) पत्तनके पारसी, व्यापारी अत्यधिक धनी व्यवसायी होते थे। विदेशसे समुद्रपर व्यवसाय करनेवाले सांयात्रिक कहे जाते थे।

योगराजके शासनकालमें एक विदेशी राजाका हाथी घोड़े तथा अन्य व्यापारिक वस्तुओंसे भरा जहाज सोमेश्वर पाटनके बन्दरगाहमें प्रवाहित होकर चला आया था। सिद्धराज जयसिंहके कालमें सांयात्रिक (समुद्र व्यवसायी) डाकुओंके भयसे नावों और जहाजोंमें स्वर्ण छिपाकर ले चलते थे।[2] इन सभी बातोंसे विदित होता है कि चौलुक्योंके शासन

---

[1] "कुबेर नगर वणिग्मूर्धन्यः कुबेरनामा श्रेष्ठी विपिनो वैवस्व स च अर्णववर्त्मनि प्रवासेऽवसथा स्वाभिपाशमाय वैवस्वतामसिमिपत।" मोहराजपराजय, अंक ३, पृ० ५१-५२।

[2] रासमाला अध्याय ११, पृ० २१५।

कालमें बड़े पैमानेपर देशी-विदेशी व्यापार होता था। उस प्राचीन दिनोंमें पाटन भारतका वेनिस था। कृषिका धन्धा भी महत्त्वपूर्ण धन्धोंमें एक था। आजकल जैसे किसान अपने कृषिकर्ममें लगे दिखायी देते हैं वैसे ही किसानोंका चित्रण हमें उस समय भी मिलता है। जब अनाजके अंकुर निकलते हैं तो वे अपने खेतका घेरा ठीककर उसके चतुर्दिक काँटेकी झाड़ियाँ लगा देते हैं। जब अनाजके पौधे बड़े हो जाते हैं, तो किसान चिड़ियोंसे उसकी रक्षा करते हैं। धानके खेतोंकी रखवाली करती हुई किसानोंकी स्त्रियाँ जिसप्रकार लोकगीत आजकल गाती हैं ठीक उसीप्रकार उस समय भी वे खेतोंमें अपने सुमधुर गायनोंसे आनन्द एवं आह्लादकी धारा प्रवाहित कर समस्त वातावरण संगीतमय कर देती थीं।[1]

सुवर्णकार तथा रत्नकारोंके भी वर्णन मिलते हैं। रत्न तथा अन्य ऊँचे-ऊँचे भवनोंका अस्तित्व उस समय था। इसलिए इस कलाके शिल्पि विद्यमान होनेमें कोई सन्देह ही नहीं किया जा सकता। इस समय समुद्री व्यापार तथा यात्राका प्रामाणिक वर्णन मिलता है।[2] इसप्रकार निश्चय ही जनसंख्याका एक वर्ग नौका संचालनका धन्धा भी कर उदरपोषण करता होगा। नाविकोंका स्पष्ट उल्लेख भी मिलता है। राजधानीमें इनके निवासका एक पृथक भाग ही था। इसप्रकार अनहिलवाड़ेमें एक उन्नत तथा वैभवपूर्ण सम्पन्न देश और समाजके सभी उद्योग-धन्धे तथा कार्योंकी व्यवस्था थी।

भोजन, वस्त्र और अलंकार

इस समय भोजनमें गेहूं चावल जौ आदिके अतिरिक्त लोग मांसका भी व्यवहार करते थे। किराडू तथा रत्नपुर प्रस्तर लेखोंसे विदित होता

---

[1] वही, पृ० २३२।

[2] मोहराजपराजय : अंक ३ पृ० ५१-५२।

है कि लोग मांसाहारी थे। इन लेखोंमें कतिपय विशेष दिन पशुवधका जो निषेध किया गया है उससे भी उक्त कथनकी पुष्टि होती है। पशुवधकी इस निषेधाज्ञाका उल्लंघन दंडनीय अपराध था।[1] किराडू शिलालेखमें इस आशयकी राजाज्ञा है कि पवित्र दिनोंमें पशुवधके अपराधके लिए राजपरिवारवालोंको आर्थिक दंड नियत था और साधारण लोगोंके लिए तो इस अपराधमें मृत्युदंडका विधान था। यह आज्ञा कुमारपालके राज्यारोहणके थोड़े ही दिन बाद उसके हस्ताक्षरसे प्रचारित हुई थी। चौलुक्य राजाओंकी परम्पराके सम्बन्धमें फोर्बस् लिखता है कि सन्ध्यामें दीप जलने तथा देवमूर्तिकी अर्चनाके पश्चात् राजा "चन्द्रशाला" नामक ऊपरी भवनमें चला जाता था और वहाँ विशिष्ट एवं विशेष भोजन करता था। इसमें मांस तथा मदिरा भी रहती थी। सामन्तसिंहका अत्यधिक आसव पानकी दशामें ही अन्त हुआ था।[2] चौलुक्योंके पुरोगामी चावड़े भी मद्यपान करते थे। स्वयं अणहिलपुरके संस्थापक वनराजको मद्य बहुत प्रिय था। उसके पश्चात् भी यहांके राजमहलोंमें मदिरादेवीका खूब सत्कार होता था। मन्त्री मद्यपानके वर्णनसे यह स्पष्ट है। प्रबन्धगत प्रमाणोंसे प्रतीत होता है कि कुमारपाल जैनधर्मानुयायी होनेके पहले मांसाहार तो करता था लेकिन मद्यपानसे उसे हमेशा घृणा थी। यहां तक कि उसके कुलमें यह वस्तु त्याज्य थी। हेमचन्द्रके योगशास्त्रमें आये हुए एक उल्लेखसे प्रतीत होता है कि चौलुक्य कुलमें मद्यपान ब्राह्मण जातिकी तरह ही निन्द्य था।[3] इसप्रकार स्पष्ट है कि भोजनके साथ मांस और मदिरा भी ग्रहण की जाती थी। हेमचन्द्रके शिष्य होने पर कुमारपालने मांसभोजन तथा मदिरापानका त्याग कर दिया

---

[1] भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स : पृ० २ ५ २०७।

[2] रासमाला, अध्याय ११, पृ २१७।

[3] राजर्षि कुमारपाल : मुनि जिनविजय, पृ० १९।

था।[1] मांसभोजन, आसवपान तथा पशुवधके पापको रोकनेकी आज्ञा कुमारपालने दी थी।[2] वनराज तथा सभी चावड़े राजा अधिक आसव पानके अभ्यस्त थे।[3] युवावस्थामें कुमारपालको भी मांस खानेका व्यसन था और पर्यटनकालमें तो उसने मुख्यत मांसपर ही निर्वाह किया था।

उस समय भी लोग धोती और उत्तरीय वस्त्र उसीप्रकार ओढ़ते थे जिसप्रकार आजकल शाल और चादर धारण करनेकी चाल है। आधुनिक कालकी भांति ही स्त्रियां साड़ी पहनती थीं।[4] फोर्बसका कथन है कि जब राजा भोजन कर चुकता था तो चन्दनकी सुगन्ध उसके शरीरमें लगायी जाती थी। सुपारी खाकर वह कन्धोंमें लटकाये झूलनेवाले बिछावनपर विश्रामकी मुद्रामें आसीन होता था। उसकी लाल रंगकी राजकीय पोशाक कोष और हथियारपर फेंका दी जाती थी।[5] जैन आचार्योंकी लम्बी सफेद पोशाकका भी वर्णन आया है। पुरुष उस समय धोती उत्तरीय वस्त्र तथा पगड़ी पहनते थे। स्वर्णकारों तथा रत्नकारोंका

---

[1] मोहपराजय तथा कुमारपालप्रतिबोध सभी इसका उल्लेख करते हैं।

[2] मोहराजपराजय : अंक ४, पृ० ८३।

[3] वनराजस्याहं बहुमतोऽभूवमितपुरस्थितमधुना
इय धवल हरे मुखिरं चाउक्कूडराय स्मारिकौर्वासियो।
मोहराजपराजय अंक ४, पृ० ४०।
घालताउ किमुह देव। निज्वमज्झंतवसस्सहो अहयं
महुताहिज्झेव तथा कंपाइ वेलंतराइं तए। वही।

[4] के० एम० मुंशी : पाटनका प्रभुत्व, खंड २, पृ० १००।

[5] रासमाला : अध्याय ११, पृ० २१७-२१८। यह प्रथा आज भी गुजरात और महाराष्ट्रके घरोंमें व्यापकरूपसे प्रचलित है।

[6] वही।

[7] पाटनका प्रभुत्व : खंड २, पृ० १०४।

अनेक स्थानोंमें उल्लेख हुआ है। जैन तीर्थंकरोंके चित्रोंसे मोतीकी मालाओं, कंकण कड़ा, कानकी ऐरन आदि आभूषणोंके विवरण मिलते हैं। आबू मन्दिरकी मूर्तियों-चित्रोंसे ज्ञात होता है कि उस समय लोग दाढ़ी-मौछ रखनेके साथ ही कलाइयों तथा बाहोंमें आभूषण पहने थे और कानमें गोल अंगूठी (बाली) तथा गलेमें हार एवं मोतीकी माला भी धारण करते थे। स्नानादिके निमित्त मन्दिर जाते समय उनका वस्त्र एक छोटीसी धोती और उत्तरीय होता था। उत्तरीय वस्त्रको दोनों कन्धोंपर डालकर बाहोंपर लटका लिया जाता था। स्त्रियां कंचुकीके अतिरिक्त दो वस्त्र पहनती थीं। इनका ऊपरी वस्त्र आधुनिक ओढ़नी जैसा था। स्त्रियां कानपर एक कर्णफूल धारण करनेके अतिरिक्त बाहों और हाथोंमें कड़ा तथा चूड़ियां धारण करती थीं।[1] यशपालके नाटक 'मोहराजपराजय'में भी सुन्दर वस्त्राभूषणोंका वर्णन मिलता है।[2]

चौलुक्यकालीन सिक्के

चौलुक्यराजाओंके सम्बन्धमें जब प्रभूत एवं प्रचुर ऐतिहासिक सामग्री मिलती है, तो यह वस्तुतः आश्चर्यका विषय हो जाता है कि उस कालकी मुद्राएं क्यों दुर्लभ और अप्राप्य हैं। बारहवीं शताब्दीमें गुजरातका साम्राज्य आर्थिक सम्पन्नताके विचारसे अत्यधिक समृद्ध था। समसामयिक साहित्य विदेशी इतिहासकारोंके विवरण तथा अन्य साधनोंसे इसकी पुष्टि होती है। तत्कालीन नाटक 'मोहराजपराजय'में यशपालने कुबेरके वैभवका वर्णन करते हुए लिखा है कि कुबेरके पास ६ करोड़ स्वर्णमुद्रा[3] और आठ

---

[1] आर्कलाजी आव गुजरात अध्याय ४, पृ० ११८।

[2] पौराः ! कर्पूरविपणि पटकीमसालपांशु पयोभिर्मुक्ताफहारै रुचिर वसनैर्हृद्यैरोमी विरच्य । मोहराजपराजय ; अंक ४ पृ० ९२।

[3] स्वर्णस्य षट्कोटिमुपस्थाप्य स्थाप्य मुक्ताफलानि च महार्घाणि अयीनानिवद्धः
—मोहराजपराजय।

थी सोना रजत बहुमूल्य रत्न आदि-आदि थे। गुजरातकी राजधानी पाटन तत्कालीन सारतकी वेनिस नगरी कही जाती थी। गुजरातके स्तम्भतीर्थ (सूरत) भृगुपुर (भुँडाया) द्वारका देवपाटन मोरा तथा गोपनाथ आदि बन्दरगाहोंसे विदेशी व्यापार बड़े पैमानेपर होता था। समुद्रमें व्यापारके लिए गये कुबेरके निधनके विवरणसे स्पष्ट है कि उस समय पाटन संसारके प्रमुख व्यापारकेन्द्रोंमें था और यहाँसे व्यापारिक पोतोंका विशाल समूह विदेशोंसे व्यापार करने जाता था। ऐसी स्थितिमें यह कहना कि चौलुक्यकालीन राजाओंने अपने सिक्कोंका प्रचलन न किया होगा हास्यास्पद लगता है। उत्तरप्रदेशमें मिली सिद्धराज जयसिंहकी स्वर्णमुद्रासे विदित होता है कि उस समय सिक्के ढाले जाते रहे हैं और अर्थविभागके अन्तर्गत इसकी व्यवस्था अवश्य रही थी।[1] कुमारपाल-चरितके प्रथम सर्गमें तथा कुमारपालप्रतिबोधमें राजधानी अनहिल्लवाड़ा-का जो वर्णन मिलता है उनमें पाटनमें स्वर्ण तथा रजत मुद्राओंको ढालने-वाले गृहोंका भी उल्लेख आया है। यहाँ चौरासी बाजार थे यहाँ आयात-निर्यात तथा विक्रय कर लेनेकी व्यवस्था थी। यहाँ प्रतिदिन एक लाख तुगास (टका) कर के रूपमें एकत्र होता था।[2] अब प्रश्न है कि ऐसी समृद्धिशील आर्थिक स्थितिमें चौलुक्यकालीन सिक्कोंका अभाव क्यों है? इसके अनेक कारण हो सकते हैं। प्रथम तो यह कि कुमारपालके उत्तराधिकारियोंके समय और उसके बाद जितने यवन आक्रमण हुए, उनमें स्वर्णके भूखे आक्रमणकारियोंने मनमानी लूटपाट की। बहुतसी स्वर्ण और रजत मुद्राएँ तो इसप्रकार नष्ट हो गयी होंगी अथवा विदेश ले जायी गयी होंगी। दूसरा कारण सिक्कोंका प्रचलन सम्बन्धी वह साधारण नियम है, जिसके अनुसार राज्यपरिवर्तन अथवा नवीन राजाके

---

[1] जे० आर० ए० एस० बी०, लेटर्स, ३, १९३७ नं० २ आर्टिकिल।
[2] राव : एनल्स आव वेस्टर्न इंडिया पृष्ठ १६६।

अधिकारग्रहणके बाद उसके पूर्वके अवशिष्ट सिक्कोंका नयी मुद्रा बनानेके लिए गला दिया जाता है। जब सिद्धराज जयसिंहकी स्वर्णमुद्राका पता चला है तो कोई कारण नहीं कि उसके उत्तराधिकारी कुमारपालने राज्यारोहणके उपरान्त अपनी मुद्राएं न प्रचलित की हों। विशेषकर उस स्थितिमें जब कि उसीके शासनकालमें गुजरातका साम्राज्य उन्नतिकी पराकाष्ठापर था। यह केवल अनुमान ही नहीं अपितु अन्य सूत्रोंसे भी विदित होता है। एक सूत्रसे पता चलता है कि अलाउद्दीनके मुद्रा-अधिकारी लोगोंसे प्राचीन सिक्के लेते थे और द्रव्यपरीक्षा कर उसका मूल्यांकन नये सिक्कोंमें करते थे। ऐसे ही एक प्रसंगमें 'कुमारपालीय मुद्रा'का उल्लेख आया है।[1] इस प्रकार विदेशी आक्रमणकारियोंकी लूटपाटसे अवशिष्ट सिक्के यवनराज्यकी स्थापनाके कारण नये सिक्कोंके लिए गला दिये गये होंगे। इसके पश्चात भी बचे हुए सिक्के बहुत सम्भव है कि तत्कालीन वैभवकेन्द्रोंके मलबेके नीचे दबे पड़े हों। हम लिख चुके हैं कि पुरातत्त्ववेत्ता श्री ईकालियान जब उक्त क्षेत्रोंमें सिक्कोंके सम्बन्धमें पूछताछ की तो उन्हें पता लगा था कि सहस्रलिंग तालाबके निकट, नगरकी सीमाके बाहर जब एक सड़कका निर्माण हो रहा था तो कुछ सिक्के सागर गच्छके मुनि पुण्यविजयजीको मिले थे। इन स्थितियोंमें यह स्वीकार करनेमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं कि चौलुक्य राजाओं तथा उनमें सर्वप्रमुख कुमारपालने अपनी मुद्राएं अवश्य ही प्रचलित की होंगी। निकट भविष्यमें प्राचीन ऐतिहासिक स्थलोंके उत्खननपर, इस सम्बन्धमें और अधिक प्रकाश पड़नेकी सम्भावना है।

मनोरंजन और खेलकूदके साधन

ऐसे सम्पन्न और उन्नतिशील समाजमें विविध प्रकारके खेलकूद तथा मनोरंजनके साधन होने स्वाभाविक ही थे। कुमारपालप्रतिबोधमें

[1] मुनिकान्तिसागर : ठक्कुर फेरु और उनके ग्रन्थ।

मल्लयुद्ध प्रतियोगिता हस्तियुद्ध तथा अन्य मनोरंजनोंके वर्णन मिलते हैं। द्यूत खेलनेकी प्रथा राजा और प्रजा दोनोंमें बहुत प्रचलित थी। धार्मिक समारोहोंपर तो लोग सार्वजनिक और स्वतन्त्र रूपसे जुआ खेलते थे। द्यूत-क्रीड़ाके पांच भेदोंका वर्णन मिलता है। प्रथम भेद अक्ष था जो नित्य राजा लोगों द्वारा वस्त्रके टुकड़ेपर बने चर्मपर खेला जाता था। *दूसरा प्रकार नालक था, जिसे सम्पन्न लोग सुवर्ण लेकर खेलते थे।* तृतीय चतुरंग था जो आधुनिक कालका शतरंज है। द्यूतका चतुर्थ भेद राढ था जिसे खेलकर कौरवोंने विजय प्राप्त की थी। पांचवां प्रकार वराट नामका था जिसे कौड़ियोंकी सहायतासे खेला जाता था। जुआ खेलनेवालोंका भी वर्णन मिलता है। कुछ लोगोंके हाथ पैर और नाक काट लिये जाते थे। कुछ लोगोंके तो नेत्र भी निकाल लिये जाते थे। दंडस्वरूप जुआ खेलनेवालोंकी नाक जीभ तथा कुछके पैर तक काट लिये जाते थे। कुछ लोगोंको इस अपराधमें नग्न कर दिया जाता था।[1]

द्यूत खेलनेवालोंमें निम्नलिखित राजवंशके सदस्योंके नाम मिलते हैं—(१) मेवाड़के राजाका पुत्र (२) सोरठके राजाका भाई, (३) चन्द्रावतीका राजा, (४) नाडुलके राजाका भतीजा (५) गोधरा नरेशका भतीजा, (६) मालवनरेशका भांजा, (७) शाकम्भरी राजके श्वसुर, (८) कच्छ नरेशका साला (९) कोंकण राजका सौतेला भाई, (१०) मारवाड़के राजाका मामा तथा (११) चौलुक्य राजका चाचा। द्यूत क्रीड़ामें वे इतने निमग्न रहते थे कि परिवारमें माता-पिता या पत्नीकी मृत्यु भी हो जाती तो उसपर बिना शोक प्रकट किये वे अपने खेलमें ही व्यस्त रहते।[1] कहते हैं पुष्करने अपना साम्राज्य द्यूत क्रीड़ासे ही हस्तगत कर लिया

केवि कप्पिय चरण करकम, किवि कड्ढियनयणजुय केविनास अहरहिं विवज्जिय। किवि मूल लम्बायत केवि जेण सवस्य बलज्जिय।

[1]मोहराजपराजय : चतुर्थ अंक, श्लोक २२।

था।[1] राजप्रासाद तथा नगरमें संगीत तथा नृत्यका भी उल्लेख मिलता है। कुमारपालके दैनिक कार्यक्रमम हमने देखा है कि जब वह राजप्रासादके मन्दिरोंमें पूजन-अर्चन समाप्त कर लेता तो नर्तकियां दीप लेकर देवताओंके सम्मुख नृत्य करती थीं। भोजनके उपरान्त वह चारणों तथा अन्य लोगोंसे वाद्यसंगीत और गायन सुनता।[2] वेश्यावृत्ति कोई विशेष और बड़ा पाप नहीं समझा जाता था।[3] समारोहोंपर नागरिक सड़कोंपर छिड़काव कराते थे तथा मोतियोंके हार और सुन्दर वस्त्रोंसे अपनी दुकान सुसज्जित करते थे। प्रमुख स्थानोंमें उन्हें स्वर्णघट रखने पड़ते थे और सुसज्जित रंगमंचपर नर्तकियां नृत्यकलाका प्रदर्शन करती थीं। समाजके शिष्टवर्गसे वेश्याओंका घनिष्ट सम्पर्क रहता था। वेश्याओंकी स्थिति भी आजकी भांति हल्की और व्यभिचारपोषक न थी। वेश्याओंका स्थान समाजमें एक प्रकारसे उच्च समझा जाता था। राजदरबारमें हमेशा उनकी उपस्थिति रहती थी। देवमन्दिरोंमें भी नृत्यसंगीत आदिके लिए उनकी उपस्थिति आवश्यक समझी जाती थी। व्यक्तिगत और सार्वजनिक

---

[1] वही, श्लोक २९।

[2] कुमारपालप्रतिबोध : पृ १८।

[3] मोहराज पराजय, पृ० ११—'वेश्याव्यसनं तु वराकमुपेक्षणीयम्। न तेन किंचिद्दृष्टेन स्पृष्टेन वा।'

[4] 'भो भोः पौराः। महाराज श्रीकुमारपालदेवो युष्मानाज्ञापयति। पञ्चमेन रथयात्रामहोत्सवो भविष्यति। ततः

पौराः। कुर्वं विपणिपदवीमस्तपांशुं पयोभि-
र्मुक्ताहारै रुचिरवसनैर्हट्टशोभां विदध्वम्।
स्थाने स्थाने कनककलशान् स्थापयध्वं भवन्तः
पंक्तिस्त्रीभिः सुरगृहसभासु मंडपान् भूपवेषु।

वही, चतुर्थ अंक, श्लोक १९।

महोत्सवोंमें भी उनका स्थान प्रमुख रहता था। कला और नृत्यकलाकी वे शिक्षिका मानी जाती थीं। नाटकों तथा अन्य मनोरंजक कार्यक्रमोंके आयोजनोंके भी वर्णन मिलते हैं। हेमचन्द्रने लिखा है कि सिद्धराज जयसिंह वेष परिवर्तनकर इन स्थानोंमें आया करते थे। जगमग उद्योत पथियोंके मध्य-भवनोंके उज्ज्वल प्रकाश या अन्य समारोहके स्वयं उसके आकर्षणके विषय थे। अज्ञात समझकर भी वह जहाँ जाता और उसका आदर होता था। कभी वह शिव मन्दिरोंके प्रांगणमें होनेवाले संगीत अथवा हास्यसे आकर्षित होकर जाता, जहाँ अभिनेता अपनी बुद्धि एवं अभिनय कलासे जनसमूहको आह्लादित करते थे। एक समय जयसिंह सिद्धराज वेष बदलकर कर्ण मेरुप्रासादमें अभिनीत होनेवाले एक नाटकमें उपस्थित थे। ऐसे प्रदर्शनोंमें पर्याप्त धनराशिका व्यय होता था और धनाढ्य ही इसका आयोजन करनेमें समर्थ हो सकते थे। इसप्रकार एक सम्पन्न एवं पूर्ण उन्नत समाजमें प्राप्य समस्त प्रकारके खेल-कूद, प्रदर्शन सांस्कृतिक आयोजन कलात्मक अभिनय तथा मनोरंजनके विविध साधन इस समय उपलब्ध थे।

धार्मिक और सांस्कृतिक अवस्था

सोलंकीराज कुमारपालका शासनकाल भारतके धार्मिक एवं सांस्कृतिक इतिहासमें विशेष महत्त्व रखता है। जैन इतिहासोंमें यह बात स्पष्ट लिखी है कि जैसे-जैसे कुमारपाल प्रौढ़ावस्थाको प्राप्त हो रहा था उसी प्रकार क्रमशः उसपर हेमचन्द्रका अधिकाधिक प्रभाव होता जाता था और अन्तमें वह जैनधर्ममें दीक्षित हो गया। कुमारपालके बीससे अधिक शिलालेखोंमें उसे "उमापति वरलब्ध"—शंकरका भक्त कहा गया है[1] तथा अनेक शिलालेखोंमें उसके सम्बन्धमें परम माहेश्वर सूचक विरुदका उल्लेख आता है। गुजरातके बहुतसे प्रतिष्ठित परिवारोंमें जैन और शैव दोनों धर्मोंका पालन किया जाता था। किसी घरमें पिता शैव था तो पुत्र जैन किसी घरमें सास जैन थी तो बहू शैव। किसी गृहस्थका पितृकुल जैन था तो मातृकुल शैव। किसीका मातृकुल जैन था तो पितृकुल शैव। इसप्रकार गुजरातमें वैश्य जातिके कुलोंमें प्राय दोनों धर्मोंके अनुयायी थे। निष्कर्ष यह कि शैव और जैन दोनों मुख्यरूपसे गुजरातके प्रजाधर्म थे।[2] दोनों धर्मोंमें समन्वयकी स्थिति थी तोभी सामान्यरूपसे राजधर्म शैव ही माना जाता था और गुजरातके राजाओंके उपास्य शिव

---

[1] इंडि० ऐंटी० : खंड १८, पृ० ३४१-४३ तथा इपि० इंडि० - ४१९, सूची संख्या २०९।

[2] मुनिजिनविजय राजर्षि कुमारपाल, पृ० ५।

थे।[1] दसवीं शताब्दीमें जब मूलराजने अनहिलवाड़ामें चौलुक्य राजवंशकी स्थापना की तो उस समय भी सोमनाथका पवित्र मन्दिर सर्वप्रसिद्ध था।[2] सिद्धपुरमें रुद्रमहालयका निर्माण कर मूलराजने उत्तरी गुजरातमें भी शैवमतका बीजारोपण किया। सिद्धराज जयसिंहके समय भी शैव मतकी अत्यधिक उन्नति हुई। उसने सहस्रलिंग तालाबका निर्माण करा उसके चतुर्दिक मन्दिरोंमें एक सहस्र शिवलिंगोंकी स्थापना करायी। इतना ही नहीं झीलके चारों ओर अन्य देवी-देवताओंके मन्दिरोंका भी उसने निर्माण कराया।[3] निश्चय ही कुमारपालने जयसिंह सिद्धराजकी भाँति शैवधर्म को राजसंरक्षण नहीं प्रदान किया और उसका झुकाव जैनधर्मकी ओर ही अधिक था। फिर भी हेमचन्द्रने लिखा है कि कुमारपालने अनहिलवाड़ामें कुमारपालेश्वर नामक शिवमन्दिरकी स्थापना की। इसके अतिरिक्त उसने सोमनाथके मन्दिरका पुनर्निर्माण कराया तथा केदार मन्दिरको बनवानेका आदेश भागवतको दिया।[4] उसके उत्तराधिकारी अजयपालने शैवमतका प्रचार-प्रसार बड़े उत्साहसे किया। इस समयसे लेकर चौलुक्य वंशके अन्त तक शैवधर्मको राज्य समर्थन एवं संरक्षण प्राप्त रहा।

---

[1] हेमचन्द्रके द्व्याश्रय काव्यमें जो चौलुक्यकालीन गुजरातकी प्रामाणिक रचना है, मूलराजसे जयसिंह सिद्धराज तकके वर्णनमें जैनधर्मका कहीं नामोल्लेख भी नहीं मिलता।

[2] द्व्याश्रयमें मूलराजकी सोमनाथ यात्राका उल्लेख है। जिसकी शिलालेखके अनुसार लक्ष्मण राजा ई० सन ९९०में सोमेश्वरकी आराधना करने गया था। इपि० इंडि० : खंड १, पृ० २९८।

[3] द्व्याश्रय : सर्ग १५, श्लोक ११४, १२२ तथा मयकामीत "सरस्वती पुराण"।

[4] वही, सर्ग २० श्लोक १०१।
द्व्याश्रय महाकाव्य : सर्ग २०, श्लोक ९५।

शैवमतका प्राधान्य

इस संक्षिप्त सिंहावलोकनके पश्चात् इस निर्णयपर पहुंचना उचित होगा कि कुमारपालके जैनधर्ममें दीक्षित होनेके पूर्व शैवधर्म ही राज्यधर्म था। कुमारपाल अपने उत्तरार्ध जीवनमें जैनधर्मको मुख्य मानने लगा था। सिद्धराजके इष्टदेव अन्त तक शिव ही थे किन्तु कुमारपालके इष्टदेव पिछले जीवनमें जिन थे।[1] कुमारपालके शासनकालमें भी शैव सम्प्रदायकी अवनति नहीं हुई। इस बातके प्रमाण मिलते हैं कि शैव और जैनधर्म दोनों साथ-साथ फल-फूल रहे थे। प्रबन्धचिन्तामणिके अनुसार हेमाचार्यके गुरु देवसूरिसे जब कुमारपालने पूछा कि उसका नाम किस प्रकार चिरस्मरणीय हो सकता है तो देवसूरिने उत्तर दिया—'समुद्रकी लहरोंसे ध्वस्त सोमनाथके काष्ठ मन्दिरका ऐसा नवीन निर्माण कराओ जो एक युग तक ठीक रहे। कुमारपालने मन्दिर निर्माण करना स्वीकार किया तथा सोमनाथ स्थित धर्माधिकारी गंडभाव बृहस्पतिकी अध्यक्षतामें एक पंचकुल अथवा मन्दिर निर्माण समितिका संघटन किया।[2]

भावबृहस्पतिकी प्रशस्तिमें यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि "कालके वश सोमनाथके मन्दिरको ध्वस्त देखकर उसने (कुमारपालने) देवमन्दिरके पुनर्निर्माणकी आज्ञा दी।" कुमारपालने जब मन्दिरके शिलान्यासका समाचार सुना तो हेमचन्द्रके आदेशके अनुसार यह प्रतिज्ञा की कि जब तक मन्दिरका पूर्ण निर्माण न हो जायगा तब तक वह मांसभक्षिका त्याग रखेगा। अपनी इस प्रतिज्ञाकी शान्तीके लिए उसने हाथमें जल लेकर नीलकंठ महादेवपर छोड़ा जो सम्भवतः उसके इष्टदेव थे। दो वर्षोंमें मन्दिर बनकर तैयार हो गया और उसपर पताका फहराने लगी। हेमाचार्यने

---

[1]राजर्षि कुमारपाल, पृ० ६।

[2]प्रबन्धचिन्तामणि चतुर्थ प्रकाश।

राजासे उस समय तक अपनी प्रतिज्ञा न तोड़नेका परामर्श दिया जब तक नवीन मन्दिरमें वह देवका दर्शन नहीं कर आता। राजाने यह स्वीकार किया और सोमनाथ गया। हेमाचार्य भी पहले ही पैदल रवाना हुए और शत्रुंजय तथा गिरनार हो आनेके बाद सोमनाथ आनेका भी वचन दिया। सोमनाथ पहुंचनेपर कुमारपालका भव्य स्वागत वहांके राज्याधिकारी गंड बृहस्पतिने सोमनाथकी जनता तथा मन्दिर निर्माण समितिकी ओरसे किया। कुमारपालकी राज-सवारी नगरके मुख्य मार्गोंसे होती हुई, सोमनाथ महादेवके नवनिर्मित मन्दिर तक निकाली गयी। मन्दिरकी सीढ़ियोंपर राजाने अपना मस्तक नत किया। गंडबृहस्पतिके निर्देशनके अनुसार उसने देवका पूजन कर, हाथियों और अन्य बहुमूल्य वस्तुओंकी भेंट रखी। उसने सिक्कों द्वारा अपना तुलादान भी किया और वह समस्त धनराशि मन्दिरमें अर्पित कर दी। इसके पश्चात् कुमारपाल अनहिलपुर वापस लौटा।[1]

फोर्बस् लिखता है कि मूलराज तथा उसके उत्तराधिकारी सिद्धराज जयसिंह और उसके बाद कुमारपाल (उस समय तक जब कि कुमारपालने हेमचन्द्राचार्यसे अर्हतके सिद्धान्तोंको ग्रहण न किया था) शैव मतावलम्बी थे।[2] कुमारपालने केवल सोमनाथका नवीन मन्दिर निर्माण ही न कराया अपितु शैवधर्मके प्रति अपनी श्रद्धा चित्तौर तथा उदयपुर (ग्वालियर) स्थित समिद्धेश्वर और उदयलेश्वरके शिवमन्दिरोंको दानमें ग्राम देकर भी प्रकट की थी। कुमारपाल जीवनके उत्तरकालमें जैनधर्ममें दीक्षित हो जानेपर भी शैवमतका संरक्षक था इसका प्रमाण चित्तौरगढ़ उत्कीर्ण लेख द्वारा मिलता है। इस शिलालेखका प्रारम्भ जैनवचनके 'ओम नम: सर्वज्ञ' तथा साथ ही शिव प्रार्थनासे होता है। इसमें इस घटनाका भी उल्लेख है कि शाकंभरी भूपालसे जब वह युद्ध करने जा रहा था तब उसने

---

[1] प्रबन्धचिन्तामणि चतुर्थ प्रकाश।

[2] रासमाला अध्याय ११, पृ० २९७।

चित्रकूट पर्वतपर स्थित समिद्धेश्वर महादेवका पूजन किया था और भेंटके अतिरिक्त एक ग्राम दान भी किया था।[1] इसीप्रकार उदयपुर प्रस्तर लेखमें उदयपुर नगरके उदयलेश्वर मन्दिरमें महाराजपुत्र वसन्तपाल द्वारा दान दिये जानेका उल्लेख है। यह शिलालेख शाकंभरी तथा अवन्तिराजको पराजित करनेवाले धर्माहिल्लपाटकके राजा कुमारपालके शासनकालका है।[2] कुमारपाल जीवनके प्रारम्भमें शिवका अनन्य भक्त था इस तथ्यकी पुष्टि उसके बहुसंख्यक शिलालेखों द्वारा होती है जिनमें उसे उमापति शिवका प्यारा "उमापति वरलब्ध" कहा गया है।[3] इसप्रकार अपने पूर्वजोंकी भांति कुमारपाल शासनकालके प्रारम्भमें शिवका पक्का भक्त था और जनसंख्याका बहुत बड़ा दल भी इसी धर्म मार्गका अनुयायी था।

जैनधर्मका उदय और उत्कर्ष

जैनसूत्र तथा साहित्यका दावा है कि यहां अतीत प्राचीनकालसे जैनधर्मका प्रचार था। सम्भव है कि गुजरात तथा काठियावाड़में जैन धर्मकी प्रथम लहर ईसा पूर्व चौथी शताब्दीमें उस समय फैली जब भद्रबाहु दक्षिणकी ओर गये थे।[4] चालुक्योंके अधीन गुजरातमें जैनधर्मके प्रचारका

---

[1] एपि० इंडि० : ४१९, सूची संख्या २७९।

[2] इंडि० ऐंटी० : खंड १८, पृ० १४१ ४३।

[3] आर्कलाजिकल सर्वे आव इंडिया वेस्टन सर्किल, १९०८, पृ० ५१, ५२। वही ४४ ४५, पूना ओरयंटलिस्ट खंड १, उपखंड २, पृ० ४०, एपि० इंडि०—खंड ११, पृ० ४४ आदि आदि।

[4] संकालिया दि पेद रिलतस्थिसेस आव नेमिनाथ इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टरली जून १९४०।

[5] आर्केयालाजी आव गुजरात अध्याय ११ पृ० २११।

पता किसी प्राचीन ऐतिहासिक भवन या लेखादिसे नहीं प्राप्त होता। अवश्य ही कर्णाटकमें प्राचीनकालसे दिगम्बर जैनधर्मका प्रचार था।[1] चौलुक्यकालमें गुजरात श्वेताम्बर जैनधर्मका सबसे बड़ा केन्द्र बना। हरिभद्रने आठवीं शताब्दीमें इस सम्प्रदायकी प्रमुखता और प्रसिद्धि करायी।[2] राजपूताना और उत्तरी गुजरातमें जैनधर्मके प्रचारका पता उन जैनमन्दिरोंसे भी लगता है जो दसवीं शतीमें हस्तिकुंडी वंशके राष्ट्रकूट राजा विदग्धराज द्वारा बनवाया गया था। चावड़ वंशके संस्थापक वनराजका पालन पोषण एक जैनसूरिने किया था इससे भी जैनधर्मके प्राचीन प्रचलनकी स्थिति विदित होती है।

जो हो, महर्षि हेमचन्द्रके कालमें गुजरातमें जैनधर्मकी स्थिति अत्यधिक सुदृढ़ ही न हुई अपितु कुछ समयके लिए यह राज्यधर्म भी बन गया। यह किस प्रकार हुआ इसका विवरण जैनमुनि हेमचन्द्राचार्य द्वारा ही विदित होता है। वह अपने द्वयाश्रय काव्यमें लिखते हैं कि वास्तवमें पहलेके राजाओंमें जैनधर्मके प्रति विशेष उत्साह नहीं था। समय-समयपर भले ही उनकी सदिच्छा इस धर्मके प्रति जाग्रत हुई हो और उन्होंने जैनमन्दिरोंके निर्माण भी कराये हों, किन्तु इससे यह अर्थ कदापि नहीं किया जा सकता था कि वे राजे जैन थे। इन राजाओंके शैव होनेपर भी जैनधर्मपर उनकी आदरदृष्टि थी। विद्वान जैन आचार्य राजाओंके पास निरन्तर आते रहते थे और राजा लोग भी अपने गुरुओंके समान ही उन्हें आदर करते थे। शैवधर्मके आदर्श प्रतिनिधि सिद्धराज भी जैनोंसे काफी सम्बन्धित थे। सिद्धपुरमें रुद्रमहालयके साथ-साथ उसने 'रायविहार' नामक आदि नाथका जैनमन्दिर भी बनवाया था। गिरनार पर्वतपर नेमिनाथका जो मुख्य जैन-मन्दिर आज विद्यमान है, वह भी सिद्धराजकी उदारताका

---

[1]विंटरनित्स : हिस्ट्री आव इंडियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ४११।
[2]आर्कलाजी आव गुजरात अध्याय ११, पृ० २३५।

ही फल है। शत्रुंजय तीर्थका कर चुकानेके लिए उसने बारह गांव उसके साथ क्षमा देनेके लिए अपने महामात्य आम्बाकको आज्ञा दी थी।[1] हाँ यह अवश्य है कि हेमचन्द्रने इसका उल्लेख किया है कि जयसिंह सिद्धराज जब सोमनाथसे यात्रा कर लौट रहे थे तो उन्होंने नेमिनाथका पूजन-अर्चन किया था।[2] जयसिंह सिद्धराजने सिद्धपुरमें महावीरका एक चैत्य भी बनवाया था।[3] किन्तु इससे नहीं पता चलता है कि गुजरातमें जैनधर्मके व्यापक प्रचार प्रसारके लिए उपयुक्त वातावरण बन चुका था। कुमारपालके राज्यकालमें जैनधर्मको राज्य संरक्षण तो मिला ही साथ ही सम्पूर्ण गुजरातमें इसका व्यापक प्रचार भी हुआ। कुमारपालने जैनधर्म स्वीकारकर ऐसी अहिंसा नीतिका राज्यभरमें प्रवर्तन किया जिसने देशके भावी इतिहासको प्रभावित किया और जिसकी स्पष्ट छाप आज भी भारतीय जीवन और संस्कृतिपर दृष्टिगोचर होती है।

आचार्य हेमचन्द्र और कुमारपाल

कुमारपालप्रतिबोधके लेखकका कथन है कि जैनधर्मके इतिहासमें महर्षि हेमचन्द्रका व्यक्तित्व महान् है। जैनधर्मावलम्बियों तथा आचार्योंमें उनका बहुत उच्च स्थान है। हेमचन्द्रने जैनधर्मके उत्कर्षके लिए महान् आचार्यका कार्य किया। वह अपने समयके महापंडित भी थे। इनी पांडित्यपर विमुग्ध होकर राजा जयसिंह सिद्धराज उनसे सभी शास्त्रीय प्रश्नोंपर परामर्श लेकर पूर्णतया सन्तुष्ट हो जाते थे। यह हेमचन्द्रकी शिक्षा तथा उपदेशका ही प्रभाव था कि सिद्धराज जैनधर्मके प्रति आकृष्ट हुए और उन्होंने एक जैनमन्दिरका निर्माण कराया। हेमचन्द्रके प्रति

---

[1] मुनिजिनविजय राजर्षि कुमारपाल, पृ० ६।
[2] द्वयाश्रय काव्य सर्ग १५, श्लोक १६, ७५।
[3] वही, श्लोक १६।

राजाका ऐसा भाव हो गया था कि जब तक वह उनके अमृत समान उप देशका श्रवण न कर लेते थे उन्हें प्रसन्नताका अनुभव ही न होता था।[1] कहा जाता है कि मन्त्री वाहडने कुमारपालसे कहा कि यदि वह सच्चे धर्मकी संप्राप्ति करना चाहता हो तो उसे श्रद्धायुक्त होकर आचार्य हेमचन्द्रके पास जाना चाहिये। अपने मन्त्रीके परामर्शानुसार कुमारपाल हेमचन्द्रसे उपदेश ग्रहण करने लगा।[2] पहले हेमचन्द्रने पशुहिंसा, द्यूत मांसाहार, मद्यपान वेश्यागमन तथा लूटपाटकी बुराइयोंको दिखानेवाली कथाओं द्वारा कुमारपालको उपदेश दिया। उसने कुमारपालसे राजाज्ञा निकलवाकर राज्यमें इनका निषेध करनेकी भी प्रेरणा की। तब उसने जैनधर्मके अनुसार सत्यदेव, सत्यगुरु और सत्यधर्मका उपदेश करते हुए असत्देव असत्गुरु तथा असत्धर्मकी बुराइयोंको दिखाया।[3] इसप्रकार कुमारपाल धीरे-धीरे जैनधर्मका भक्त हो गया और इसके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करनेके निमित्त उसने विभिन्न स्थानोंमें जैनमन्दिरोंका निर्माण कराया। पहले उसने पाटनमें मन्त्री वाहड और अम्बड बंसके गर्गसिठके सर्वदेव तथा सांबसेठ नामक दो पुत्रोंके निरीक्षणमें कुमारपाल विहार नामक भव्य मन्दिर बनवाया। इस विहारके मुख्य मन्दिरमें उसने श्वेत संगमरमरकी विशाल

---

[1] गुरु पय पंकयमसिणो मुणत पडिबुद्धस्स सिद्धरायस्स।
संतप्पएसु तम्मेसु पुण्णविरओ इओ जाओ॥
जम्मसिद्ध देवजयणा निम्मियं सिद्धहेम वागरणं
नीसेस-सद्द-लक्खण निहाण मिमिणा मुणिवेण।
—कुमारपालप्रतिबोध पृ० २२।

[2] इय सम्मं धम्म-सरूव-साहणी साहिमो अमच्चेणं
तो हेमचन्द्र सूरि कुमर-नरिंदो न माइ निवं।—कुमारपालप्रतिबोध।

[3] वही, पृ० ४०, ११४।

[4] "कारुय य आएसं "कुमर विहारो" करावियोऽएत्य
अट्ठावओ व्व रम्मी चउवीस-जिणालओ तुंगो। वही पृ० ११३।

पार्श्वनाथकी मूर्तिकी प्राणप्रतिष्ठा की और साथके अन्य चौबिस मन्दिरोंमें चौबिस तीर्थंकरोंकी स्वर्ण रजत तथा पीतलकी मूर्तियां प्रतिष्ठापित कीं। इसके पश्चात् कुमारपालने इससे भी विशाल एवं भव्य त्रिभुवन विहार नामक मन्दिरका निर्माण कराया। इसके साथके बहत्तर छोटे मन्दिरोंमें विभिन्न तीर्थंकरोंकी मूर्तियां स्थापित की गयीं। इस मन्दिरका शिखर भाग स्वर्ण मंडित था। केन्द्रीय मन्दिरमें तीर्थंकर नेमिनाथकी अत्यन्त भव्य मूर्ति प्रतिष्ठित थी। विभिन्न बहत्तर छोटे मन्दिरोंमें अन्य तीर्थंकरोंकी पीतल धातुकी बहत्तर मूर्तियां स्थापित थीं। इसके अतिरिक्त केवल पाटनमें ही कुमारपालने चौबिस तीर्थंकरोंके चौबिस मन्दिर बनवाये। इनमें त्रिविहार मन्दिर प्रमुख था। पाटनके बाहर अपने राज्यके विभिन्न स्थानोंमें भी कुमारपालने इतनी अधिक संख्यामें जैनमन्दिरोंका निर्माण कराया जिसकी ठीक-ठीक संख्या निश्चित करना भी कठिन है। इनमें तारंगा पहाड़ीपर गुर्जेश्वर जयसिंहके पुत्र यशदेवके निरीक्षणमें निर्मित अजितनाथका विशाल कलामण्डित मन्दिर विशेषरूपसे उल्लेखनीय है।[1]

शिलालेखोंकी साक्षी

कुमारपालने अपने आध्यात्मिक गुरु हेमचन्द्रसे विक्रम संवत् १२१६में एकत्र जन समक्ष जैनधर्मकी दीक्षा ली थी और कुमार विहारका निर्माण कराया था इसका उल्लेख केवल विभिन्न जैनग्रन्थोंमें ही नहीं, शिलालेख तथा अभिलेखोंमें भी मिलता है। विक्रम संवत् १२४२के जालोर शिलालेखमें लिखा है कि "कुमार विहार"में पार्श्वनाथका मूलबिम्ब प्रतिष्ठित था। इसकी स्थापना परमार्हत गुर्जरधरापीश महाराजाधिराज चौलुक्य कुमारपालने जावालीपुर (आधुनिक जालोर)के कंचनगिरि किलेमें प्रभु हेमसूरिसे दीक्षा लेनेके उपरान्त की थी। सोलंकी राजा कुमारपालने

[1]कुमारपालप्रतिबोध। पृ० १४३, १४४।

इसका निर्माण कराया था और इसीलिए उसके नामपर इसका नामकरण "कुमार विहार" रखा गया।[1]

जैन समारोहोंका आयोजन

कुमारपालने इन मन्दिरोंका निर्माण कर जैनधर्मके प्रति अपने कर्तव्यकी इतिश्रीका अनुभव कर लिया हो, ऐसी बात नहीं। जैनधर्मके अन्य अनुयायी और श्रावककी भाँति वह जैनमन्दिरोंमें जाकर मूर्तियोंके समक्ष आराधन भी करता था। धर्मकी महत्ताका प्रभाव जनतापर डालनेके लिए वह बड़े समारोहपूर्वक अष्टाह्निका महोत्सवका आयोजन कराता था। प्रतिवर्ष चैत्र तथा आश्विन शुक्लपक्षके अन्तिम सप्ताहमें पाटनके प्रसिद्ध "कुमार विहार"में यह समारोह मनाया जाता था। उत्सवके अन्तिम दिन सन्ध्या समय हाथियों द्वारा खींचनेवाले विशाल रथमें पार्श्व नाथकी सवारी नगरसे होती हुई राजप्रासाद जाती थी। इसमें राजाके अन्य अधिकारी तथा प्रमुख नागरिक भी सम्मिलित रहते थे। चारों ओर जनसमूह नृत्य और गायन करता रहता था और इस हर्षोल्लासपूर्ण वातावरणके मध्य राजा स्वयं जाकर मूर्तिकी पूजा करता था। रात्रिमें रथ राजप्रासादमें ही रहता था और प्रातः राजप्रासादके द्वारपर निर्मित विशाल मैदानमें चला जाता था। यहाँ राजा भी उपस्थित रहता था। राजा द्वारा पूजन-अर्चनके पश्चात् रथ नगरके प्रमुख मार्गोंसे होकर जाता था। मार्गमें बनाये गये मैदानोंमें ठहरता हुआ यह रथ अपने मूलस्थानको

---

[1] संवत १२११ श्रीजाबालिपुरीय कांचन(न) गि(रि) गढस्योपरि प्रभु श्रीहेमसूरि प्रबोधित गुर्जरधराधीश्वर परमार्हत चौलुक्य महारा(जा)धिराज श्री(कु)मारपाल देव कारिते श्रीपा(र्श्व)नाथ सत्कमू(ल) बिंब सहित श्रीकुवर विहाराभिधाने जैन चैत्ये (।) सद्विधि प्रव (र्त)नाय एपि० इंडि० : खंड ११, पृ० ५४, ५५।

लौट जाता था।[1] राजा स्वयं तो यह समारोह मनाता ही था साथ ही अपने अधीनस्थोंको भी इसका समारोहपूर्वक आयोजन करनेका आदेश देता था। अधीनस्थ राजाओंने भी अपने-अपने नगरोंमें विहारोंका निर्माण कराया।

इस समारोहका विस्तृत विवरण सोमप्रभाचार्यने ही केवल नहीं किया है अपितु अन्य ग्रन्थोंमें भी इसका उल्लेख आया है। नाटककार यशपालने रथके इस महोत्सवको, अपने नाटकमें—जिसका नायक कुमारपाल है रथयात्रा महोत्सव कहा है। इसमें नागरिकोंको सूचना दी जाती है कि महाराज कुमारपालदेवने रथयात्रा महोत्सव मनानेकी आज्ञा की है, इसलिए समारोहकी समस्त तैयारी होनी चाहिये।[2] हेमचन्द्रके महावीरचरितमें भी इस रथयात्रा महोत्सवका विवरण मिलता है।[3]

---

[1] प्रेङ्खन्मङ्गलतूर्य सत्यरसदं नृत्यत्पुरन्ध्रीजनं
वाद्यन्मालमुदंचदुन्दुभिध्वनी सत्वरं स्फुरत्तोरणम्।
विश्वार्हन्नरथोत्सवे पुरमिदं व्याकोचितं कौतुका-
ल्लोका नेत्र सहस्र निर्मितिकृते चक्रुर्विधे प्रार्थनाम्।

—कुमारपालप्रतिबोध, पृ० १७५।

[2] भो भोः पौराः महाराज श्रीकुमारपालदेवो युष्मानाज्ञापयति। यस्मिन् रथयात्रा महोत्सवोऽभविष्यति। तत—

पौराः! दुर्वाविचित्रितधौतपट्टं पांसु पयोभि
मुक्ता हारे रचिर वल्लभिहु शोभां विदध्यु
स्थाने स्थाने कनक कलशान् स्थापयेयुर्भवन्त
पंक्तयोर्मि पुरभूरुहवान् मंचकान सूपवेषु।—

मोहराजपराजय, चतुर्थ अंक, श्लोक ११।

[3] प्रतिग्रामं प्रतिपुरमासमुद्रं महीतले
रथयात्रोत्सवं सोऽर्हत्प्रतिमानां करिष्यति।—

महावीरचरित सर्ग १२, श्लोक ७६।

कुमारपालकी सौराष्ट्र तीर्थ-यात्रा

एक समय जैनयात्रियोंका एक दल सौराष्ट्र (काठियावाड़)के मन्दिरों-की तीर्थयात्राके लिए जाता हुआ पाटनमें ठहरा। यह देख कुमारपालके मनमें भी ऐसी ही तीर्थयात्राकी इच्छा उत्पन्न हुई। एक बड़ी सेनाके साथ आचार्य हेमचन्द्र एवं जैन समाजके सहित कुमारपालने सौराष्ट्रकी यात्रा की। इस तीर्थयात्राके प्रसंगमें वह गिरनार (जूनागढ़) ठहरा किन्तु शारीरिक निर्बलताके कारण वह पर्वतके ऊपर न जा सका। इसलिए उसने अपने मन्त्रियोंको पूजनके लिए भेजा। यहांसे वह दल शत्रुंजय पहाड़ीपर स्थित ऋषभदेवके मन्दिरकी ओर अग्रसर हुआ। कुमारपालके आगमनके पूर्व राजाकी आज्ञासे मन्त्री वाहड़ द्वारा इस मन्दिरकी आवश्यक मरम्मत हुई थी। इस तीर्थयात्राके पश्चात् कुमारपाल राजधानी वापस आया। जब वह लौटा तो उसे गिरनार पर्वतपर न चढ़ सकनेका अत्यन्त खेद रहा। उसने इस आशयका आदेश जारी किया कि उक्त पहाड़ीपर सीढ़ियां बनायी जायं। कवि सिद्धपालके सुझावपर उसने अमरको सौराष्ट्रका सूबेदार नियुक्त कर यह कार्य सौंपा। प्रबन्धचिन्तामणि[2] तथा पुरातन प्रबन्धसंग्रहमें भी कुमारपालकी इस तीर्थयात्राका विस्तृत विवरण मिलता है।

कुमारपालकी जैनधर्ममें दीक्षा

आचार्य हेमचन्द्रने कुमारपालके समक्ष जैनधर्मकी द्वादश प्रतिज्ञाएं रखते हुए प्राचीनकालके महान जैनभक्तों आनन्द तथा कामदेवके साथ ही तत्कालीन पाटनके सबसे धनी जैनचड्डुआका उदाहरण दिया। राजाने

---

[1] "तम्मि कुमारवालो सत्तुंजय सिहर गमणत्थं
कुमारपालप्रतिबोध, पृ० १७९।

[2] प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश, पृ० ९१।

अगाध श्रद्धाके साथ सभी प्रतिज्ञाएं कीं और इसप्रकार पूर्णतया जैनधर्ममें दीक्षित हो गया। राजा सर्वदा असीम भक्तिके सहित प्रसिद्ध जैन नमस्कार मन्त्रका पाठ करता था और कहा करता था कि जो वस्तु वह अपनी शक्तिशाली सेनासे नहीं प्राप्त कर सकता था वह केवल इस मन्त्रके उच्चारणसे सुलभ हो जाती थीं। इस मन्त्रकी शक्तिमें उसकी इतनी अगाध श्रद्धा थी कि इससे उसके शत्रुओंका दमन होता था। गृहयुद्ध तथा विदेशी आक्रमणका संकट दूर होता और उसके राज्यमें कभी अकाल नहीं पड़ता था।[1]

जयसिंह रचित कुमारपालचरितके पांचवें सर्गसे दस सर्गोंमें उन परिस्थितियोंका वर्णन किया गया है जिनके कारण वह जैनधर्ममें दीक्षित और जैनधर्मके प्रसार-प्रचारमें प्रवृत्त हुआ। इसमें कहा गया है कि आचार्य हेमचन्द्रके कथनपर उसने सर्वप्रथम मांस तथा मदिराका त्याग किया।[2] इसके पश्चात् हेमचन्द्रके आदेशानुसार राजा कुमारपाल उसके साथ सोमनाथ गया। हेमचन्द्रने शिवका आह्वान किया और शिवने प्रकट होकर जैनधर्मकी प्रशंसा की। फलस्वरूप कुमारपालने अनेक नियम को स्वीकार किया तथा जैनधर्मके गूढ़ सिद्धान्तोंपर अपना ध्यान केन्द्रित किया। दीक्षा धारण करते समय उसने मुख्यरूपसे निम्नलिखित प्रतिज्ञाएं की थीं—राजरक्षा निमित्त युद्धके अतिरिक्त यावज्जीवन किसी प्राणीकी हिंसा और आखेट न करना। मद्यमांसका सेवन त्याज्य समझना। नित्य जिनप्रतिमाका पूजन-अर्चन करना। अष्टमी और चतुर्दशीके सामयिक और पौषध आदि विशेष व्रतोंका पालन करना तथा रात्रिको भोजन न करना आदि-आदि।

जयसिंहने आगामी अध्यायमें हेमचन्द्र तथा कुमारपालके मध्य एक

---

[1] पुरातनप्रबन्धसंग्रह, पृ० ४२, ४३।

[2] कुमारपालप्रतिबोध, पृ० १११-११५।

धार्मिक वादविवाद कराया है। सातवें सर्गमें हमें विदित होता है कि उसने हेमचन्द्रसे अठावर्म स्वीकार कर राज्यमें पशुहत्यापर प्रतिबन्ध लगाया था।[1] इस ग्रन्थके रचयिताका कथन है कि यह आज्ञा सौराष्ट्र लाट, मालवा कोंकणमेवापाट, मारी तथा सपादलक्षदेशमें लागू हो गयी थी।[2] इस आज्ञाका इतनी कठोरतासे पालन होता था कि सपादलक्षके एक व्यापारीने रायसके समान रक्त चूसनेवाले एक कीड़ेकी हत्या कर दी तो उसे चोरकी भाँति पकड़ लिया गया और उसे यूक विहारके निर्माणके लिए समस्त सम्पत्ति त्याग देनेके लिए बाध्य होना पड़ा।[3]

किराडू शिलालेखमें जो कुमारपालके समयका है, यह लिखा है कि शिवरात्रि चतुर्दशी तथा कतिपय अन्य निश्चित दिनोंमें कुमारपालने राजाज्ञा निकालकर पशुवधका निषेध कर दिया था। राजपरिवारका सदस्य आर्थिक दंड देकर तथा साधारण व्यक्ति प्राणदंडके लिए प्रस्तुत होकर ही उपर्युक्त दिन किसी पशुकी हत्या कर सकता था। इसी आशयका आदेश रत्नपुरी नगरके एक शिलालेखमें भी प्राप्त हुआ है।[4] इस शिलालेखम गिरिजादेवीकी उस निषेधाज्ञाका उल्लेख है जिसमें विशेष तिथियों-को पशुवधपर प्रतिबन्ध लगा था। इस आज्ञाका उल्लंघन करनेवालोंके लिए अर्थदंडकी व्यवस्था थी। नवरात्रमें बकरियोंका वध रोक दिया गया था और कुमारपालने अपने मन्त्रियोंको पशुहिंसा रोकनेके लिए काशी भेजा। जयसिंह कृत कुमारपालचरितके आठवें और नवें सर्गमें विभिन्न जैन तीर्थोंकी यात्रा तथा चैत्यों और मन्दिरोंके निर्माणका वर्णन है। दसवें

---

[1] जयसिंह : कुमारपालचरित, छठा अध्याय, ५७७।
[2] वही, ५८१-८२।
[3] वही, ५८८।
[4] इपि० इंडि० खंड ११, पृ० ४४।
[5] बी० पी० एस० आई०, २०५-७ सूची संख्या १५२३।

सर्गमें राजा कुमारपाल अपने गुरुको "कलिकाल सर्वज्ञ"की उपाधि प्रदान करता है।[1]

यशःपालके तत्कालीन नाटक मोहराजपराजयमें भी कुमारपालके जैनधर्ममें दीक्षित होनेकी चर्चा आयी है। इस नाटकमें कुमारपालने चार व्यसनोंपर जो प्रतिबन्ध लगाया था उसपर विशेष प्रकाश डाला गया है।[2] राज्य द्वारा निःसन्तान मरनेवालोंकी सम्पत्तिपर अधिकार करलेना जो प्राचीन और परम्परागत नियम चला आ रहा था उसका कुमारपालने निषेध कर दिया था इसका भी इस नाटकमें उल्लेख हुआ है।[3] नाटकमें राजा अपने दंडपाशिकको द्यूत, मांसाहार, मदिरापान, हत्या-कूट तथा व्यापारियोंमें मिलावटकी अवैध पद्धतिके दमन और विनाशका आदेश देता है।[4] यह आश्चर्यकी बात है कि वेश्या व्यसन तत्कालीन गुजरातमें गम्भीर पाप न समझा जाता था।

जैनधर्म दीक्षाकी समीक्षा

समस्त जैन ग्रन्थकार कुमारपालके जैनधर्म की दीक्षा लेने के विवरण पर एकमत हैं। शिलालेखादिके उल्लेखोंके आधारपर यह स्वीकार करना होगा कि उक्त वर्णन सत्य और ऐतिहासिक घटनाके ही बोधक हैं। किराडु[5] तथा रत्नपुर[6] शिलालेख विशेष तिथियोंपर पशुवधका प्रतिषेध

---

[1] कुमारपालचरित सर्ग १०, १०६। इसने परमार्हतकी उपाधि भी प्रदान की थी।

[2] मोहराजपराजयः अंक ४ तथा ५।

[3] वही, अंक ४।

[4] वही।

[5] इण्डि० एण्टि० खंड ११ पृ० ४४।

[6] बी० पी० एस० आई० २ ५-७।

करते हैं तो जालोर शिलालेखमें कुमारपालको परमार्हत कहा गया है। इतना होते हुए भी इस तथ्यके प्रमाण मिलते हैं कि कुमारपालने अपने परम्परागत शैवधर्मका कभी तिरस्कार नहीं किया न उसके प्रति अपनी आदर श्रद्धाकी भावनाका ही परित्याग किया। जैन ग्रन्थकारोंने भी लिखा है कि कुमारपाल सोमेश्वरकी आराधना करता था और उसने सोमनाथका मन्दिर निर्मित कराया था।[2]

वेरावल शिलालेखमें कुमारपालको "महेश्वर नृप" कहा गया है। यह शिलालेख सन् ११६९का है और इसीके कुछ वर्ष बाद ही सन् ११७४में उसकी मृत्यु हो गयी। उसके अधिकांश शिलालेखोंमें शिवकी प्रार्थना अंकित है तो अनेकमें जैनदेवताओंकी प्रार्थना भी मिलती है। विक्रम संवत् १२४२के जालोर शिलालेखमें उसे 'परमार्हत' कहा गया है। चित्तौरगढ़ उत्कीर्ण लेखके प्रारम्भमें ही 'ओम नमः सर्वज्ञ' तथा साथ ही शिवकी प्रार्थना मिलती है।[3] जैन इतिहासोंमें हेमचन्द्रके प्रभावके प्रति ब्राह्मणोंके द्वेषकी भी चर्चा आती है। इस संघर्षमें ब्राह्मण सदा पीछे पड़ जाते थे और राजाके कोपभाजन ब्राह्मणोंकी रक्षा दयालु हेमचन्द्र द्वारा ही होती थी। किन्तु जैनोंके साथ राजाके पक्षपातकी बात सन्देहास्पद है। वह समानभावसे शैवों और जैनोंका आदर करता था। कुमारपाल जैन सिद्धान्तोंको हार्दिकतासे स्वीकार करता था और उसके अनुसार

---

[1] एपि० इंडि० : खंड ११, पृ० ५४-५५। "हेमसूरिप्रबोधित गुर्जर धराधीश्वर परमार्हत चौलुक्य महाराजाधिराज श्रीकुमारपालदेवेन"।

[2] द्वयाश्रयकाव्यमें अणहिलवाड़ामें कुमारपालेश्वर महादेवके मन्दिरके निर्माणका उल्लेख है। केदारेश्वर मन्दिरका पुनर्निर्माण भी कराया गया था। वही। मन्दिरोंकी मरम्मतके सम्बन्धमें देखिये वसन्तविलास, ३:२६।

[3] एपि इंडि० : ४१९, सूची संख्या २०९।

व्यावहारिक जीवनमें आचरण भी करता था। उसने जैनधर्म प्रतिपादित उपासक अर्थात् गृहस्थ-श्रावक धर्मका दृढ़ताके साथ पालन किया। ऐतिहासिककालमें कुमारपालके सदृश जैनधर्मका अनुयायी राजा शायद ही कोई हुआ हो।[1] इस प्रकार जैनधर्ममें कुमारपालका दीक्षित होना मुख्यतः उसकी आन्तरिक श्रद्धा और विश्वास भावनाका ही परिणाम था। यों तो अनहिल्लपुरके संस्थापक वनराज चावड़ासे लेकर सिद्धराज जयसिंहके राज्यकाल तक प्रजावर्गमें जैनोंकी प्रतिष्ठा और प्रतिभा समाज तथा राजनीति दोनोंको प्रभावित कर रही थी किन्तु कुमारपालके शासनकालमें उनका प्रामुख्य और प्राधान्य हुआ। महर्षि हेमचन्द्राचार्य मौढ़ बनिया थे और महामात्य उदयन भी श्रीमाली जातिके सम्पन्न उद्योगपति थे।[2] बारहवीं शताब्दीके गुजरातमें शैव और जैनधर्मोंमें जैसी परम्परागत सहिष्णुता बनी आ रही थी उसे ध्यानमें रखकर यह कभी नहीं स्वीकार किया जा सकता कि जैन कुबेर और श्रेष्ठिपतियोंके किसी प्रभाव विशेष अथवा दबावके कारण उसने जैनधर्म स्वीकार कर, उसे राजधर्म घोषित किया था। हेमचन्द्राचार्य द्वारा जैनधर्ममें कुमारपालकी दीक्षाके मूलमें उसकी अपनी श्रद्धा और जैनधर्मके सिद्धान्तोंके प्रति उसके हार्दिक विश्वास ही प्रधान कारण थ।

अन्य धार्मिक सम्प्रदाय

इन दो प्रमुख धार्मिक सम्प्रदायोंके अतिरिक्त देशमें अन्य धार्मिक सम्प्रदायोंका भी अस्तित्व था। चौलुक्यकालमें सूर्यपूजा भी प्रचलित थी यद्यपि इस समयके राजा सूर्यके प्रति भक्तिभावना व्यक्त करनेवाला विरुद धारण नहीं करते थे। द्वयाश्रयमें जयसिंह द्वारा अनेक देवी-देवताओंके

[1] मुनिजिनविजय राजर्षि कुमारपाल, पृ० १२।

[2] प्रबन्धचिन्तामणि पृ० ८२। इसी ग्रन्थमें जैनदस द्वारा कुमारपाल-को सिंहासनारूढ़ करनेमें योग देनेका प्रसंग वर्णित है।

होती। फोर्बसकी 'रासमाला'में ब्राह्मण और जैन आचार्योंमें सघर्ष और कटुभावनाको व्यक्त करनेवाली अनेक कहानियोंका उल्लेख मिलता है जिनमेंसे प्रमुख निम्नलिखित है—ब्राह्मण परम्पराके अनुसार कुमारपालने मेवाड़के सिसौदिया वंशकी राजकुमारीसे विवाह किया था। जब रानीने राजाकी यह प्रतिज्ञा सुनी कि राजमहलमें प्रवेशके पूर्व उसे हेमचन्द्रके मठमें जाना होगा तो उसने अनहिल्वाड़ा जाना अस्वीकार किया। कुमारपालके चारण जयदेवने रानीको विश्वास दिलाया और इसपर रानी अनहिल्वाड़ा गयी। उसके आनेके कई दिन बाद हेमाचार्यने सिसौदिया रानीके अपने मठमें न आनेकी बात कही। कुमारपालने रानीसे वहां जानेके लिए कहा तो उसने अस्वीकार कर दिया। इसी बीच रानी बीमार पड़ी और चारणोंकी स्त्रियां उसे अपने घर ले आयी। चारण उसे घर पहुंचाने ले जाने लगा। जब कुमारपालने यह सुना तो उसने दो हजार घुड़सवारोंके साथ पीछा किया। रानीने जब यह सुना तो उसका साहस जाता रहा और उसने आत्महत्या कर ली।[1] पहले ही कहा जा चुका है कि उक्त ब्राह्मणों और चारणोंकी परम्परा तात्कालीन ऐतिहासिक तथ्योंकी कसौटीपर खरी नहीं उतरती और न इस धार्मिक द्वेषकी भावनाका इतिहास-सम्मत सामान्य आधार ही मिलता है।

ब्राह्मणों और जैनोंमें पारस्परिक संघर्षका परिचय करानेवाली एक दूसरी कहानी भी है। एक दिन कुमारपाल जब मार्गमें जा रहा था तो उसने हेमाचार्यसे एक शिष्यके द्वारा पूछा कि आज मासकी कौन तिथि है। वास्तवमें उस दिन अमावस्या थी किन्तु जैन साधुने भ्रमवश पूर्णिमा कह दिया। कुछ ब्राह्मणोंने जब यह सुना तो जैनसाधुकी हँसी उड़ाते हुए कहा 'ये सिर घुटाये हुए साधु क्या जाने कि आज अमावस्या है।" कुमारपालने यह सब सुन लिया था। राजप्रासाद पहुंचते ही उसने हेमाचार्य

---

[1] वही, अध्याय ११ पृ १९२ १९३।

तथा ब्राह्मणोंके प्रधानको बुला भेजा। इसी बीच हेमचन्द्रका शिष्य अत्यन्त दुखी और लज्जित हो मठमें पहुंचा। हेमचन्द्रने उससे सारा विवरण पूछा और दुखित न होनेकी बात कही। तब तक कुमारपालका सन्देश वाहक वहां पहुंच चुका था। संवाद पाकर हेमाचार्यने राजभवनकी ओर प्रस्थान किया। कुमारपालने उनसे पूछा कि आज कौनसी तिथि है? ब्राह्मण आचार्यने कहा कि आज अमावस्या है किन्तु हेमचन्द्रने कहा कि आज पौर्णिमा है। ब्राह्मणोंने कहा कि सन्ध्याका चन्द्रमा ही वास्तविक स्थिति बता देगा। यदि पूर्णिमाका चन्द्र निकला तो सभी ब्राह्मण इस राज्यसे निकल जायंगे। यदि चन्द्रमा न निकले तो जैनसाधुओंका निष्कासन हो। हेमाचार्यने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और मठ वापस पहुंचे। उनकी एक सिद्धदेवी थी उन्हींकी सहायतासे पूर्व दिशामें ऐसी कृत्रिमता उत्पन्न की गयी जिससे सभीको विश्वास हो गया कि आज पूर्णिमा है। इसके पश्चात् घोषित किया गया कि ब्राह्मण हार गये और सभीको राज्य छोड़कर चले जाना चाहिये। दूसरे दिन प्रात कुमारपालने ब्राह्मणोंको बुला राज्य छोड़कर चले जानेकी आज्ञा दी।

इसी समय शंकर स्वामीका पाटनमें आगमन होता है। शंकर स्वामीने आगे बढ़कर कहा राज्यसे किसीको निष्कासित करनेकी क्या आवश्यकता है। "नौ बजे समुद्र अपनी मर्यादा सीमा तोड़कर सम्पूर्ण देशको जलरस्थ कर देगा।" राजाने हेमचन्द्रको बुला भेजा और पूछा कि क्या यह सत्य है? हेमचन्द्रने जैन सिद्धान्तोंके अनुसार कहा कि यह संसार न कभी निर्मित हुआ और न कभी नष्ट होगा। शंकर स्वामीने एक जलघड़ी मंगवायी और कहा देखना चाहिये क्या होता है। तीनों वहीं बैठ गये। जब नौ बजा तो वे प्रासादके ऊपरी भवनमें पहुंचे वहांसे उन्होंने देखा कि समुद्रकी लहरें उमड़ती हुई चली आ रही हैं। लहरें बढ़ती गयीं और सारा नगर जलमग्न हो गया। राजा तथा दोनों आचार्य ऊपरी मंजिलोंमें चढ़ते रहे किन्तु जलका वेग ऊपरकी ओर निरन्तर बढ़ता ही

गया। अन्तमें वे सातवीं और अन्तिम मंजिलपर पहुँचे। सबसे ऊँचे वृक्ष तथा मन्दिरके शिखर जलमें समाविष्ट थे। उमड़ती हुई समुद्रकी भयंकर लहरोंके अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता था। कुमारपालने भयभीत होकर शंकर स्वामीसे बचनेका उपाय पूछा। शंकर स्वामीने कहा कि पश्चिम दिशासे एक नाव आवेगी जो इस वातायनके निकटसे ही जायगी। जैसे ही यह हमारे निकट आवे हम उछलकर उसपर बैठ जायं। तीनोंने अपने वस्त्र संभाले और नावमें तत्परतासे बैठ जानेका उपक्रम किया। तत्काल बाद ही एक नौका दिखायी दी। शंकर स्वामीने राजाका हाथ पकड़कर कहा कि हम दोनों नावमें बैठनेमें एक दूसरेकी सहायता करेंगे। इतनेमें नौका वातायनके निकट आयी और राजाने उसमें कूदनेका प्रयत्न किया किन्तु शंकर स्वामीने उन्हें पीछे खींच लिया। हेमचन्द्र खिड़कीसे कूद गये थे। समुद्र और नौका वस्तुतः और कुछ नहीं मायाकी रचना थी। इसके पश्चात् जैन साधुओंपर उत्पीड़न होने लगा और कुमारपाल शंकरस्वामीका शिष्य हो गया।

धार्मिक संघर्षकी इन कथाओंमें उस समय धर्म विशेषकी धार्मिक संकीर्णताकी स्थितिका परिचय मिलता है। जैनधर्मका अभ्युदय और उत्कर्ष न देख सकनेवाले संकीर्ण लोगोंकी कल्पना ही इन कथाओंका आधार है। न तो इस प्रकारकी घटनाओंका तत्कालीन साहित्यमें उल्लेख मिलता है और न कोई प्रामाणिक एवं मान्य आधार। इन्हें ऐतिहासिक तथ्य न मानकर कपोल कल्पनाकी ही कोटिमें रखना उचित होगा।

नवीन युगका समारम्भ

ब्राह्मण और जैनधर्मकी पारस्परिक सद्भावनापूर्ण स्थिति इस युगकी ऐतिहासिक विशेषता थी। यदि सामाजिक अभ्युत्थानका विचार किया जाय तो विदित होगा कि जैन धर्मके अभ्युदयके साथ देशमें एक नवीन वातावरण और संस्कृतिक युगका समारम्भ हुआ था। कुमारपालप्रतिबोध

तथा मोहराजपराजयके रचयिताओंने समाजमें प्रचलित उन बुराइयोंका उल्लेख किया है जिनसे सामाजिक स्तर निम्नतर होता जा रहा था। पशु हिंसा द्यूत क्रीड़ा मांस मदिरा सेवन वेश्याव्यसन शोषण आदिसे जनताका धन-धर्म विलुप्त और मानसिक पतन होता जा रहा था। यह पहले ही देखा जा चुका है कि कुमारपालने किस प्रकार विभिन्न तिथियोंको पशुवधका प्रतिषेध कर दिया था। यह तथ्य विभिन्न जैन ग्रन्थोंमें ही वर्णित नहीं किराडू[1] तथा रतनपुर[2] शिलालेखोंमें भी उत्कीर्ण है। यशपालने अपने नाटक मोहराजपराजयमें कुमारपालको अपने दंडपाशिकको यह आदेश देते हुए चित्रित किया है कि जूआ मांसाहार, मदिरापान तथा पशुहत्याके पापका दमन किया जाय। चोरी और खाद्यपदार्थोंसे मिलावटको नगरसे निष्कासित कर दिया गया था। दंडपाशिक इनकी खोजमें जाता है और सबको पकड़कर लाता है। सभी राजाके समक्ष उपस्थित किये जाते हैं। वे अपने पक्ष समर्थनका तर्क देते हुए क्षमाकी याचना करते हैं। वे यह भी कहते हैं कि उन्हींके द्वारा राज्यको बहुत भारी आय होती है। किन्तु राजा उनकी एक भी नहीं सुनता और सभीके निष्कासनकी आज्ञा देता है।[3]

इस समयकी एक क्रूर राजनीतिक परम्परा और प्रथा यह थी कि यदि कोई राज्यमें निस्सन्तान मर जाता तो उसकी समस्त सम्पत्ति राज्य अपने अधिकारमें कर लेता था। ऐसे व्यक्तिकी मृत्यु होते ही राज्याधिकारी उसके घर तथा उसकी सारी सम्पत्तिपर अब अधिकार कर लेते और जब पंचकुलकी नियुक्ति हो जाती तभी शव अन्तिम संस्कारके लिए सम्बन्धियोंको दिया जाता था। इससे जनताको घोर कष्ट और व्यथा होती थी। जैनधर्मकी शिक्षाका राजापर सबसे बड़ा जो प्रभाव दृष्टिगत

---

[1] एपि० इंडि० : खंड ११ पृ० ४४।
[2] पी० पी एस० आई० २०५-६, सूची संख्या १५२१।
[3] मोहराजपराजय चतुर्थ अंक, पृ० ८९-११०।

हुआ यह यह कि उसने निस्सन्तान मरनेवालोंकी सम्पत्तिपर अधिकार करनेका राजनियम (मृतधनापहरण) वापस ले लिया।[1] निर्वंशकी सम्पत्तिपर राज्याधिकारके प्रजापीड़क नियमकी कुमारपालपर कैसी और प्रतिक्रिया हुई और उसका कैसा प्रभाव पड़ा था इस सम्बन्धमें प्रबन्धों और मोहराजपराजयमें विशद विवरण मिलते हैं। हेमचन्द्राचार्यने द्व्याश्रयमें ऐसे एक प्रकरणका उल्लेख करते हुए लिखा है कि एक दिन जब रात्रिके समय कुमारपाल प्रगाढ़ निद्रामें सो रहा था तो निस्तब्धतामें उसे एक स्त्रीका रुदन सुनाई पड़ा। वेश बदलकर जब वह राजमहलसे उक्त स्थानपर पहुंचा तो उसने देखा कि वृक्षके नीचे एक स्त्री गलेमें फन्दा लगाकर आत्महत्याकी तैयारी कर रही है। राजाने उससे इसका कारण पूछा। तब उस स्त्रीने अपने पति और पुत्रकी मृत्युका घटना प्रकरण बताते हुए कहा कि अब मेरी समस्त सम्पत्तिपर राजाका अधिकार हो जायगा और मेरा कोई आधार न रह जायगा। इससे अच्छा है कि मैं आत्मघात कर लूं। इसपर राजाने उसे ऐसा करनेसे मना किया और आश्वासन दिया कि उसकी सम्पत्तिपर राज्याधिकारी अधिकार न करेंगे। प्रातःकाल राजाने मन्त्रियोंको बुलाकर 'मृतधनापहरण'की समाप्त करते हुए उसके निषेधकी आज्ञा निकाली। कहते हैं कि इसप्रकार प्रतिवर्ष राजकोषमें एक करोड़ रुपये आते थे किन्तु कुमारपालने इसकी तनिक परवाह न की और उक्त प्रथाका निषेध कर दिया। इसी प्रकारकी एक दूसरी घटनाका वर्णन यशपालके नाटक मोहराजपराजयमें मिलता है। कुबेर नामक करोड़पति नगरसेठकी मृत्यु हो जाती है। वह निःसन्तान था पर उसकी माता जीवित थी। वह शोकमें विह्वल थी। पुत्रशोक और धनशोकके कारण उसके दुःखका पारावार न था। राजाको इसकी सूचना मिलती है। वह बहुत उद्विग्न होता है। राज्यकी क्रूर नीतिका बीभत्स तथा

---

[1] मोहराजपराजय अंक ३, पृ० ६०–७०।

शोकसंतप्त परिवारका करुण दृश्य उसके सम्मुख उपस्थित होता है। वह कुबेरकी माताके यहाँ जाता है। नगरके वैभवको देखकर आश्चर्य-चकित होता है। कुबेरके विषयमें वह सारा विवरण पूछता है। कुमारपाल कुबेरकी माताको सान्त्वना देता है और कहता है कि मैं भी तुम्हारा ही पुत्र हूँ। उधर राज्यके अधिकारी कुबेरकी समस्त सम्पत्तिको एकत्रकर ढेर लगा देते हैं। कुमारपाल नगरसेठों और महाजनोंके सम्मुख घोषणा करता है कि आजसे निस्सन्तान मृतकोंके धनको राज्यकोषमें लेनेके नियम का मैं निषेध करता हूँ। राजा अपने राजप्रासादमें लौटता है और मन्त्रियों-से परामर्शकर निषेधाज्ञा घोषित करता है—

निःपुत्रैः र्मुक्तं न यदुपतिभिरस्यक्तं क्वचित् प्राक्तनैः
पत्न्याः क्षार इव क्षते पतिमृतौ यस्यापहारः किल।
मापापीदिकुमारपालनृपतिर्देवो व्रतस्था घनं
विश्राणः सदय प्रजासु हृदयं मुंचत्ययं तत् स्वयम्॥

कुमारपालके इस महान सामाजिक और राजनीतिक सुधारकी प्रशंसा करते हुए जैन आचार्य हेमचन्द्र कहते हैं —

न यन्मुक्तं पूर्वं रघु-नहुष-नाभाक-भरत
प्रभृत्युर्वीनाथैः कृतयुगकृतोत्पत्तिभिरपि।
विमुञ्चन् सन्तोषात् तदपि रुदतीवित्तमधुना
कुमारक्ष्मापाल! त्वमसि महतां मस्तकमणि ॥

निस्सन्तान मृतजनकी सम्पत्तिको राज्यकोषमें न लेनेकी घोषणा ऐतिहासिक और युगप्रवर्तक थी। सत्ययुगके महान राजा रघु, नहुष नाभाक और भरत आदि परमधार्मिक नरेशोंने भी जैसी कीर्तिका अर्जन न किया था वैसी अवलकीर्ति कुमारपालने अपने इस कार्यसे अर्जित की। एक प्रसिद्ध इतिहासकारने लिखा है कि "बारहवीं शतीमें गुजरातके राजा कुमारपालने बड़ी तत्परतासे पशुओंके वधका निषेध किया और इस नियमका उल्लंघन करनेवालोंपर कठोर दंडकी व्यवस्था की। एक अभागे व्यापारीको एक सिरके जीवेकी हत्याके अपराधमें अनहिलवाड़ाके विशेष

न्यायालयमें उपस्थित किया गया और उसकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गयी। उक्त सम्पत्तिसे एक मन्दिरका निर्माण कराया गया। कुमारपाल द्वारा निर्मित इस विशेष न्यायालयकी कार्यसीमा और निर्णय, अशोकके धर्ममहामात्योंके कार्यों एवं निर्णयोंकी भाँति थी।[1]

जैनधर्मकी शिक्षासे प्रभावित होकर कुमारपालने एक सत्रागारकी स्थापना की जहाँ अनेक जैनसाधकोंको भोजन वस्त्र दिया जाता था। इसीके निकट एक मठ (पौषधशाला)का भी निर्माण किया गया जहाँ धार्मिक प्रवृत्तिके लोग एकान्त साधना कर सकते थे। इन दातव्य संस्थाओंकी व्यवस्थाका भार सेठ अभयकुमारको सौंपा गया था।[2] इस प्रकार धर्मके प्रभावसे राजनीति और समाजके स्तर दोनोंमें परिवर्तन हुए थे। निर्धन और असहायकी सहायताके लिए मानवीय हितके कार्य प्रारम्भ किये गये। इन धार्मिक तथा सामाजिक नव व्यवस्थाओंके निर्धारणने भारतीय इतिहास और समाजको अत्यधिक प्रभावान्वित किया था, और उसका प्रभाव आज भी देखा जा सकता है। कुमारपालकी इस अहिंसा प्रवर्तक नीतिका यह फल है कि वर्तमानकालमें भी सबसे अधिक अहिंसक प्रजा गुजरातकी प्रजा है और सबसे अधिक परिमाणमें अहिंसा धर्मका पालन गुजरातमें होता है। गुजरातमें हिंसक यज्ञ-याग प्रायः बहुत समयसे बन्द हो गये हैं और देवी-देवताओंके निमित्त होनेवाला पशुवध भी दूसरे प्रान्तोंकी तुलनामें बहुत कम है। गुजरातका प्रधान निवासी वर्ग भी मांसत्यागी है। भले ही अतिशयोक्ति हो और उसका उपहास भी हो, किन्तु यह तथ्य है कि इसी पुण्यमय परम्पराके प्रतापसे युगकी सबसे श्रेष्ठ अहिंसामूर्ति महात्माको जन्म देनेका अद्वितीय गौरव भी गुजरातको प्राप्त हुआ है।[3]

---

[1]विंसेंट स्मिथ : भारतका इतिहास, पृ० १६१-२। [2]कुमारपाल प्रतिबोध। [3]मुनिजिनविजय : राजर्षि कुमारपाल, पृ० १८।

साहित्य और कला

चौलुक्य शासनकालमें उत्तरी गुजरातमें एक नवीन साहित्यिक चेतना और जागृतिके दर्शन होते हैं। इसका प्रादुर्भाव आकस्मिक और अचानकसा प्रतीत होता है किन्तु बात ऐसी न थी। जयसिंह सिद्धराज तथा कुमारपालके संरक्षणमें वस्तुतः यह जैन साधकों और आचार्योंके एकान्त मनन और साधनाका सुपरिणाम था। इसका प्रभाव अन्य क्षेत्रोंपर भी पड़ा और फलस्वरूप संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश तथा प्राचीन गुजराती भाषामें धार्मिक तथा साहित्यिक रचनाओंकी एक नई लहर और बाढ़सी आ गयी। इस कालमें प्रणीत प्रचुर साहित्य अब भी जैन भंडारोंमें भरे पड़े हैं। अनेक वर्ष पूर्व पाटनके भंडारोंमें रखे ताड़पत्री पांडुलिपियोंकी संक्षिप्त सूची प्रकाशित हुई है।[1] इधर उसकालकी अनेक कृतियोंका प्रकाशन हो रहा है यह शुभ लक्षण है। इनका सिंहावलोकन करनेसे चौलुक्यकालीन साहित्यके विभिन्न अंगोंपर प्रकाश पड़ता है। इनमें व्याकरण नाटक, काव्य दर्शन वेदान्त इतिहास आदिकी प्रभूत रचनायें मिलती हैं। विंटरनित्जने उस समय तक जितनी रचनाएं प्राप्त हुई थीं उनका विभाजन उसने प्रबन्धकथा काव्य कोश तथा उपदेशात्मक साहित्यके अन्तर्गत किया है।[2] श्रीकन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शीने भी प्राप्य सामग्रीपर विश्लेषण और विचार किया है।[3]

---

[1] डिस्क्रिप्टिव कैटलाग आव मैनुस्क्रिप्ट्स इन जैनभंडारस् एट पाटन जी० ओ० एस०, ७६, बड़ौदा १९३७।

[2] हिस्ट्री आव इंडियन लिटरेचर जिल्द २, पृ० ५०२-

[3] गुजरात एंड इट्स लिटरेचर, पृ० १६-४७

जयसिंह और कुमारपाल साहित्यके महान संरक्षक थे। बडनगर प्रशस्ति (१०वीं पंक्ति)में कहा गया है कि जयसिंह सिद्धराजने श्रीपालको अपना भाई माना था और वह कविचक्रवर्ती कहे जाते थे। प्रबन्धोंमें इस बातका उल्लेख है कि कवि चक्रवर्ती श्रीपाल जयसिंहदेवका राजकवि था। वैरोचन पराजय उसकी प्रमुख कृति थी। वह दुर्लभराज मेरु तथा श्रीस्थल सिद्धपुरमें रुद्रमहालयके लिए प्रशस्ति लिखता था इसका वर्णन प्रभावकचरितमें मिलता है।[1] पाटन अनहिलवाड़ाके निकट जयसिंह द्वारा निर्मित सहस्रलिंग तालाबकी प्रशंसामें श्रीपालने जो प्रशस्ति लिखी थी उसका उल्लेख मेरुतुंगने भी किया है।[2] इस प्रशस्तिमें लिखा है कि कुमारपालके समय भी वह अपने पदपर बना रहा। सोमप्रभाचार्यने इसका उल्लेख किया है कि कवि सिद्धपाल कुमारपालके राजदरबारमें था।[3] कुमारपालकी दिनचर्याका वर्णन करते हुए कहा गया है कि भोजनोपरान्त वह विद्वानोंकी सभामें उपस्थित हो धार्मिक एवं दार्शनिक विषयोंपर विचार विमर्श करता था। इनमें कवि सिद्धपाल मुख्य थे और ये सदा राजाको कहानियाँ तथा कथा प्रसंग सुनाकर प्रसन्न करते थे।[4] फोर्ब्सने भी लिखा है कि कार्य समाप्त हो जानेपर पंडित और विद्वान आते थे और अमूल्य साहित्य तथा व्याकरणपर विचार एवं विवेचन होता था।[5] इससे ही स्पष्ट हो जाता है कि कुमारपाल महान् साहित्यप्रेमी था।

---

[1] प्रभावकचरित अध्याय २२, पृ० २०६-८।
[2] प्रबन्धचिन्तामणि पृ० १५५-६।
[3] कुमारपालप्रतिबोध।
[4] वही, पृ० ४२१।
[5] वही, पृ० ४२८।
[6] रासमाला : अध्याय ११, पृ० २१७।

हेमचन्द्रकी साहित्यिक कृतियाँ

जैन आचार्य हेमचन्द्र अपने समयका महापंडित तथा महान प्रतिभा सम्पन्न ग्रन्थकार हुआ है। कहा जाता है कि उसने साढ़े तीन करोड़ श्लोकोंकी रचना की थी।[1] उसकी प्रथम रचना सिद्ध हेम शब्दानुशासन है। यह आठ अध्यायोंकी रचना है जो सिद्धराजकी प्रार्थनापर उसके स्मारक रूपमें प्रस्तुत की गयी थी। हेमचन्द्रने स्वयं इस रचनापर बृहत् टीका लिखी जो अष्टदश सहस्रीके नामसे विख्यात है। इसीके साथ एक न्यास भी लिखा गया जो चौरासी हजार ग्रन्थोंके बराबर था। अपने नवीन व्याकरणके नियमोंका उदाहरण प्रस्तुत करने तथा चौलुक्य राजाओंके गौरवगानके निमित्त उसने द्वयाश्रय महाकाव्यकी रचना की। इसका कुमारपालके राज्यकालका प्राकृत अंश कुमारपालके शासनकालमें ही जोड़ा गया। इसके व्याकरणकी अन्य टीकाओंकी भी इसी समय रचना हुई थी। अनेकार्थ संग्रहके साथ अभिधान चिन्तामणि देशीनाममाला तथा निघंटु, काव्यानुशासन विवेक छन्दोनुशासन तथा प्रमाणमीमांसाकी रचना सिद्धराजके शासनकालमें ही हुई थी। इसप्रकार सिद्धराजके राज्यकालमें ही हेमचन्द्राचार्य अपनी अधिकांश साहित्य साधना कर चुके थे। कुमारपालके शासनकालमें उन्होंने जो रचनाएं कीं वे अधिकतर धार्मिक ग्रन्थ थे। योगशास्त्र तथा वीतरागस्तु, कुमारपालके उपदेशार्थ प्रणीत हुए। तीर्थंकरोंके जीवनवृत्तके ग्रन्थ 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्रकी' रचना उसने कुमारपालकी प्रार्थनापर की थी। हेमचन्द्रका जन्म विक्रम संवत् ११४५में हुआ था और विक्रम संवत् १२२९में चौरासी वर्षकी वृद्धावस्थामें उसका निधन हुआ। मागध साहित्य और व्याकरणके क्षेत्रमें उसकी महान देन आज भी इतिहासके सुनहरे पृष्ठोंपर अंकित है।

---

[1] व्याकरणं पंचांगं प्रमाणशास्त्रं प्रमाणमीमांसा
छन्दोऽलंकृति चूडामणी च शास्त्रे विभुर्व्यधत।

सोमप्रभाचार्य और उसकी रचनाएं

कुमारपालप्रतिबोधका रचयिता सोमप्रभाचार्य प्रसिद्ध जैन विद्वान था। कुमारपालकी मृत्युके ग्यारह वर्ष बाद विक्रम संवत् १२४१में उसने उक्त रचना की। इससे स्पष्ट है कि वह कुमारपाल तथा उसके गुरु हेमचन्द्रका समसामयिक था। राजकवि श्री श्रीपालके पुत्र सिद्धपालके निवास स्थानपर रहकर उसने इस ग्रन्थकी रचना की। यहीं रहकर उसने अपनी दूसरी महान कृति "सुमतिनाथचरित्र"का भी प्रणयन किया। कुमारपाल-प्रतिबोधके अतिरिक्त उसके तीन ग्रन्थोंमें सुमतिनाथचरित्र उल्लेख्य है। इसमें पांचवें तीर्थंकर सुमतिनाथकी जीवन गाथा वर्णित है। कुमारपाल-प्रतिबोधके समान ही इसका अधिकांश भाग प्राकृत भाषामें लिखा गया है और उसीकी भांति इसमें जैनधर्मकी शिक्षाको समझानेवाली कहानियां भी हैं। इसमें साढ़े नौ हजार श्लोक हैं। सूक्ति मुक्तावली सोमप्रभाचार्य की उल्लेखनीय रचना है जिसमें विभिन्न प्रकारके सौ श्लोक हैं। इसका एक नाम सिन्दूरप्रकर भी है क्योंकि इसके प्रथम श्लोकका प्रथम शब्द सिन्दूरप्रकर ही है। जैनोंमें इस ग्रन्थकी बहुत प्रसिद्धि है और बहुतसे स्त्री-पुरुष इसे कंठस्थ करते हैं। इसकी रचनाशैली भर्तृहरिके नीति

> एकार्थानेकार्था देश्या निर्घंट इति च चत्वारः
> विहिताश्च नामकोशा भुवि कवितानट्युपाध्यायाः।
> स्फुटरचयित्वा द्वात्रिंशिका नरेन्द्र तव पुष्टि सत्त्व विचारे
> अभ्यासयोगशास्त्रं विदधे जनानुपकृति विधित्सुः।
> लक्षण साहित्यगुणं विदधे च द्व्याश्रयं महाकाव्यम्
> चक्रे विंशतिमुच्चैः स वीतराग स्तवानां च
> इति तद्विहित ग्रन्थसंख्यैव हि न विद्यते
> नामापि न विदन्त्येषां मादृशा मन्दमेधसः।
>
> —सुमतिनाथचरित।

शतकके समान है। इसमें हिंसाके विरुद्ध, सत्य, अस्तेय पवित्रता तथा सन्तोषके सम्बन्धमें छोटे किन्तु गंभीर अर्थवाले श्लोक हैं। इसकी रचनाशैली अत्यन्त सुस्पष्ट सरल और बोधमय है।

सोमप्रभाचार्यकी तीसरी रचनाका नाम है शतार्थकाव्य। संस्कृत भाषापर उसके आश्चर्यजनक अधिकारका पता उसकी इस रचनासे चलता है। इस रचनामें वसन्ततिलका छन्दमें केवल एक ही श्लोक है और उसे सौ प्रकारसे समझाया गया है। इसी कृतिसे उसका नाम "शतार्थिक" पड़ा और इसी नामसे बहुतसे बादके ग्रन्थकारोंने उसका उल्लेख किया है।[1] सोमप्रभाचार्यने इस ग्रन्थमें अपने समसामयिक लोगोंका उल्लेख अत्यन्त काव्यात्मक रूपमें किया है। इनमें देवसूरि तथा हेमचन्द्राचार्य जैसे जैनधर्मके आचार्योंका वर्णन है तो क्रमसे हुए गुजरातके चार राजा जयसिंहदेव कुमारपाल, अजयदेव तथा मूलराजका भी विवरण है। इनके अतिरिक्त इसमें अपने समयके सर्वश्रेष्ठ नागरिक कवि सिद्धपाल और उसके दो पुत्रों अभयदेव तथा विजयसिंहकी भी चर्चा आती है। सोमप्रभाचार्यकी चार रचनाओंमें "सुमतिनाथचरित्र"की रचना कुमारपालके शासनकालमें हुई थी।

राजसभामें विद्वान मण्डली

कुमारपालके महामात्य तथा सचिव विद्वान थे। उसने अपनी राजसभामें विद्वान विशेषतः संस्कृत भाषाके कवियोंको रखनेकी परम्परा बनाये रखी। उस समय दो प्रमुख विद्वान रामचन्द्र और उदयचन्द्र थे। ये दोनों ही जैन थे। रामचन्द्रका उल्लेख गुजराती साहित्यमें बारम्बार

---

[1] "सोमप्रभोमुनिपतिर्विदितः शतार्थी"—मुनिसुन्दर सूरिकृत गुर्वावली
ततः शतार्थिकः ख्यातः श्रीसोमप्रभसूरिराट्।
—गुणरत्नसूरिकृत क्रियारत्न समुच्चय।

माना है। वह अपने समयका श्रेष्ठ विद्वान था। उसने "प्रबन्धशत"की रचना की है। उदयनकी मृत्युके पश्चात् कपर्दी कुमारपालका महामात्य नियुक्त हुआ। कपर्दी विविध शास्त्रोंका ज्ञाता होनेके अतिरिक्त संस्कृत भाषाका कवि भी था। कुमारपालके शासनकालमें उस युगका सबसे महान जैन पंडित हेमचन्द्र उसका प्रधान परामर्शदाता था। कपर्दीकी विद्वत्ताकी एक अत्यन्त मनोरंजक कहानी है। इसके अनुसार कुमारपालके दरबारमें सपादलक्षके राजाके दूतके आनेपर राजाने उससे सांभर अधिपके राजाकी कुशलता पूछी। जब दूतने उत्तर दिया कि "उनका नाम विश्वल (संसारकी शक्ति) है फिर भला उनकी दशा कुशलतामें क्या सन्देह है? इसपर राजाके पास खड़े कपर्दी मन्त्रीने जो कुमारपालका प्रिय पात्र विद्वान कवि था "वृश" और "शुवक" धातुका अर्थ बीघ्रवाला बताते हुए कहा—वह है विस्वल, जो (भी) चिड़ियाके समान शीघ्र उड़ जाता है। दूत जब स्वदेश लौटा तो उसने इसकी चर्चा की। इसपर सपादलक्षके राजाने विद्वानोंसे परामर्शकर विग्रहराजकी उपाधि ग्रहण की। दूत कपर्दीने इस नामका भी ऐसा हास्यास्पद अर्थ किया कि इसके बाद राजाने कपर्दीके भयसे अपना नाम कवि बान्धव रख लिया।[1]

भाषा, साहित्य और शास्त्रोंकी रचना

इस समय हेमचन्द्र व्याकरणशास्त्रका सर्वप्रथम तथा सर्वश्रेष्ठ प्रणेता हुआ। संस्कृतमें लिखे गये व्याकरणोंकी पांडुलिपियां प्राप्त हुई हैं इनमें विक्रम संवत् १०८०का 'बुद्धिसागर'[2] नामक ग्रन्थ जो जावालीपुर आधुनिक जालोरमें लिखा गया था मिला है। हेमचन्द्रने प्राकृत तथा संस्कृत दोनोंमें रचनाएं की हैं। प्राकृत भाषामें उसकी सर्वप्रसिद्ध कृति

[1] रासमाला, अध्याय ११, पृ० १९०।
[2] आर्केलाजी आव गुजरात अध्याय १२, पृ० २५०।

पद्यानुशासन है। इसमें ११वीं १२वीं सदीके अपभ्रंश तथा आधुनिक प्राचीन गुजराती भाषाके पारस्परिक प्रभाव और सम्बन्धका अध्ययन किया जा सकता है। हेमचन्द्रका द्व्याश्रय काव्य व्याकरणशास्त्र होनेके साथ-साथ कुमारपाल तक चौलुक्यकालीन राजाओंका इतिहास भी है।

चौलुक्योंके समय नाटकके क्षेत्रमें दो प्रमुख नाटककार दृष्टिगत होते हैं। इनमें एक जयसिंह और दूसरे यशपाल हैं। पहलेकी कृति हम्मीरमदमर्दन है और दूसरेकी मोहराजपराजय।[1] नाटककार यशपालने अपनेको कुमारपालके उत्तराधिकारी चक्रवर्ती अजयपालके चरणकमलमें विचरण करनेवाला हंस कहा है। अजयदेवने सन् १२२९से १२३२ तक शासन किया। इसलिए नाटकके प्रणयनकी तिथि इसीके मध्यमें निश्चित की जा सकती है। मोहराजपराजय पांच अंकोंका एक रूपक है। इसमें कुमारपालके द्वारा जैनधर्मकी दीक्षा ग्रहण करनेका चित्रण किया गया है। हम्मीरमदमर्दन तथा मोहराजपराजय दोनों नाटकोंका ऐतिहासिक महत्त्व है। इस समयके नाटकोंकी जो पांडुलिपियां प्राप्त हुई हैं उनमें कालिंजरके परमर्दिदेव (सन् ११६५–१२०३)के मन्त्री वत्सराजके छः नाटक हैं।[2] इनसे गुजरातके अन्तःप्रान्तीय साहित्यिक सम्पर्कका परिचय होता है।

कविताके क्षेत्रमें इस समयकी सर्वाधिक महत्त्वकी रचना संस्कृत भाषामें रचित उदयसुन्दरी कथा है।[3] इसका रचयिता लाटदेशका निवासी सोड्ढल है। इसमें तत्कालीन इतिहास तथा साहित्य सम्बन्धी उपयोगी जानकारी है।

तर्कशास्त्र दर्शनशास्त्र तथा वेदान्त सम्बन्धी पांडुलिपियां भी प्राप्त

---

[1]गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज़में प्रकाशित। संख्या ९, १०।
[2]आर्केलाजी आफ गुजरात अध्याय १२, पृ० २५०।
[3]गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज़ : संख्या ११।

हुई हैं। इनमेंसे हेमचन्द्रका योगशास्त्र अथवा अध्यात्मोपनिषद् तथा कुछ अन्य कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। इनमें सर्वाधिक महत्त्वकी ताड़ लिपि शान्तारक्षितकी तत्त्वसंग्रह' रचना है। इसके साथ ही इसकी कमलशील तथा तर्कभाष कृत पञ्जिका टीका भी है जो पूर्वी भारतके नालन्दा और राजगृह नामक स्थानोंमें लिखी गयी थी। इससे नालन्दाका गुजरात पर प्रभाव ही नहीं परिलक्षित होता है, अपितु यह भी विदित होता है कि भारतकी दूसरी सीमापर रचित दार्शनिक ग्रन्थोंके प्रति गुजरातकी कैसी भावना थी। बारहवीं शताब्दीमें सांस्कृतिक एकताने देशके विभिन्न छोरोंको किस प्रकार एक सूत्रमें आबद्ध किया था, यह इससे स्पष्ट है।

इस कालके ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें कुमारपालचरितोंके विभिन्न लेखक हैं। 'वसन्तविलास' सुकृतकल्लोलिनी तथा वस्तुपाल तेजपाल प्रशस्ति भी ऐतिहासिक रचनाके अन्तर्गत आती हैं। कीर्ति-कौमुदी, प्रबन्धचिन्तामणि विचारश्रेणि, थेरावली, प्रभावकचरित्रका तो इतिहासकी दृष्टिसे अत्यधिक महत्त्व है।

इस कालके बाद ही नागरीका जन्म होता है और प्राकृत एवं संस्कृत साहित्यमें प्रचुर रचनाएं होती हैं। कुछ लोग नागरीका सम्बन्ध 'नागरसे जोड़ते हैं। नागर ब्राह्मणोंका मूलस्थान गुजरातमें है। साहित्यके विभिन्न अंगोंकी समुन्नतिका श्रेय इसकालमें राज्यसंरक्षण तथा विद्वानोंकी शान्त एकान्त साहित्य-साधनाको ही है।

कला

कुमारपाल तथा उसके पूर्व शासक जयसिंहसिद्धराज ललित और वास्तुकलाके प्रेमी तथा संरक्षक थे। समाजकी आर्थिक स्थिति अत्यधिक सम्पन्न और समृद्ध थी। चौलुक्य राजाओंके शान्ति और सम्पन्नताके

---

[1] आर्कलाजी आव गुजरात अध्याय १२, पृ० २५१।

चालुक्यकालमें इन परिस्थितियोंके अन्तर्गत विभिन्न कलाके विकास और उन्नति क्रममें बड़ी सानुकूलता थी। सोमप्रभाचार्यका कथन है कि कुमार पालने महान् निर्माण किया था। उसने पाटनमें मन्त्री बाहड़ तथा वाग्भट परिवारके नगरसेठके दो पुत्रों सर्वदेव तथा धनासेठके निरीक्षणमें "कुमारविहार" का विशाल तथा भव्य मन्दिर बनवाया। इसके केन्द्रीय मन्दिरमें श्वेत संग मरमरकी पार्श्वनाथकी विशाल मूर्ति प्रतिष्ठापित है। इसके साथके अन्य चौबीस मन्दिरोंमें उसने चौबीस तीर्थंकरोंकी स्वर्ण रजत तथा पीतलकी मूर्तियां स्थापित कीं। इसके पश्चात् कुमारपालने पहलेसे भी विशाल और भव्य "त्रिभुवनविहार" का निर्माण कराया जिसके बहत्तर मन्दिरोंमें बहत्तर तीर्थंकरोंकी मूर्तियां स्थापित कीं। इन मन्दिरोंके शिखर मात्र स्वर्णमंडित थे। मध्यके मन्दिरमें तीर्थंकर नेमिनाथकी अत्यन्त विशाल मूर्ति स्थापित है। केवल पाटनमें ही कुमारपालने चौबीस मन्दिर बनवाये। कुमारपालके अनेकानेक मन्दिरोंमें "त्रिविहार" नामक मन्दिर विशेष उल्लेखनीय है।

वास्तु कला

चौलुक्यकालीन वास्तुकलाको धार्मिक तथा लौकिक दो भागोंमें विभाजित किया जा सकता है। लौकिकके अन्तर्गत पाटनमें रही काष्ठ-पर अंकित कलात्मक वस्तुएं हैं। नगरकी दीवारें तथा नगरद्वार भी इसीके अन्तर्गत आते हैं। संभवत उस समय गुजरातमें निवास योग्य भवन लकड़ीके ही बनते थे। काष्ठ बहुत जल्दी नष्ट हो जाता है इसीलिए चौलुक्यकालीन काष्ठके भवनोंके ध्वंसावशेष भी नहीं मिलते। नाटककार यशपालने लिखा है कि चौलुक्य राजे उसी राजप्रासादमें रहते थे जिसमें चावड़ा राजा रहते थे।[1] फोर्बसने राजमहलका वर्णन करते हुए लिखा

---

[1] "इह चावड़ेषु स्थिरं चालुक्यराज्य स्थितिर्मो वर्तिनो"।
—मोहराजपराजय अंक ४. पृ० ४७।

है कि राजाका भवन "राजधावीक" कहा जाता था जहाँ राजप्रासादके अतिरिक्त अन्य राजकीय भवन भी थे। यह कीर्ति स्तम्भोंसे अलंकृत किया जाता था। घटिका द्वार ही नगरद्वार था। यह नगरकी दिशामें खुलता था। मुख्य गलीमें तीन द्वारोंकी त्रिपोलिया होती थी।[1]

चौलुक्योंके कालकी दैनिक इमारतोंमें किलोंके ध्वंसावशेष ही अब बच गये हैं। ये और कुछ नहीं अपितु नगरके चतुर्दिक विशाल दीवालके रूपमें हैं। उस समय जैसा एक शिलालेखमें कहा गया है इन्हें "प्रकार" कहते हैं। वडनगर प्रशस्तिमें लिखा है कि एक ऐसा "प्रकार" कुमारपालने आनन्दपुर (आधुनिक वडनगर) नगरके चतुर्दिक बनवाया था।[2] वडनगरकी उक्त दीवारका अवशेष भी अब नहीं मिलता क्योंकि बर्जेसने भी इसका उल्लेख नहीं किया है। हाँ उसने नगरके उत्तरकी बाहरी दीवारोंका उल्लेख अवश्य किया है।[3]

चौलुक्यकालीन ध्वंसावशेषोंमें दभोई तथा झिन्झुवाड़ाके किले अध्ययन करने योग्य हैं। दभोईकी दीवारें प्रायः ध्वस्त होकर गिर गयी हैं किन्तु मुख्यद्वारके अवशेषसे उसकालके द्वारोंकी सजावट तथा कलात्मक योजनाका अनुमान किया जा सकता है। सम्भवतः सर्वप्रथम दभोईके चतुर्दिक दीवार जयसिंह सिद्धराजने बनवाई। बर्जेसका कथन है कि चार मुख्य द्वारोंमें बड़ोदा द्वार सबसे कम क्षतिग्रस्त है। इसमें तत्कालीन वास्तुकलाका स्वरूप देखा जा सकता है। बर्जेसने झुनझुवाड़ामें एक ऐसे और द्वारका उल्लेख किया है जो सम्भवतः उस पहाड़ी किलेका होगा जिसे चौलुक्योंने सौराष्ट्रसे होनेवाले आक्रमणोंके प्रतिरोध निमित्त निर्मित

---

[1]रासमाला : अध्याय ११ पृ० २३७।

[2]इपि० इंडि० : खंड १, पृ० २९३।

[3]बर्जेस ए० एस० डब्लू० आई० : ९, ८९-८६।

किया होगा।[1] इस द्वारपर अंकित कला भी अबोलिसे प्राय साम्य रखती है। हां इसमें कतिपय भिन्न वस्तुएं भी हैं जो अबोलिमें नहीं मिलती। वे हैं बरवर सवार मनुष्य शार्दूल तथा नृत्य करती हुई मूर्तियां।[2]

इस कालके इतिहासों तथा शिलालेखोंसे भील तालाब वापी कूप आदिके निर्माणका पता लगता है। ये राजकीय संरक्षणमें भी बनते थे और जनता द्वारा भी। भीमप्रथमकी रानी उदयमतिने अनहिलवाड़ामें रानी वाव बनवाया। कर्णने मोढेरा तथा दधिपद्रके निकट दशम नदीपर कर्णसागरका निर्माण कराया। इसीप्रकार सिद्धराज जयसिंहने सहस्रलिङ्ग नामक विशाल तालाब बनवाया।[3] जयसिंहकी माता रानी मीनलदेवीने लगभग सन् ११००में वीरमगांवमें मानसूर भील बनवायी।[4] इसका आकार कुछ वक्र प्रतीत होता है और यह शंखाकार प्रतीत होती है।[5] इसमें जल तक पहुंचनेके लिए सीढ़ियां तथा घाट भी बने हैं। घाटपर प्राचीन समयके १२० मन्दिरोंमेंसे अब केवल १७ ही छोटे मन्दिर रह गये हैं।[6] इन्हीं मन्दिरोंके अवलोकनसे इस बातकी कल्पना सम्भव हो सकती है कि सहस्रलिङ्ग तालाबमें एक हजार एक शिवलिङ्गकी स्थापना की हुई।

सोमनाथका मन्दिर

गुजरातके चौलुक्य सोलंकी राजाओंके समय सोमनाथ मन्दिरके निर्माणकी घटना इतिहासकी चिरस्मरणीय घटना है। प्रबन्धचिन्तामणिमें

---

[1] बर्जेस : ए० के० के०, पृ० २१७।
[2] वही।
[3] ए० एस० डब्लू० आई० : ९, पृ० ११।
[4] आर्किआलॉजिकल सर्वे आव इण्डिया वेस्टर्न सर्किल : अध्याय ९, पृ० ११०
[5] वही, अध्याय ८ पृ० ११।
[6] वही।

मेरुतुंगने लिखा है कि जब कुमारपालने हेमाचार्यके गुरु श्रीदेवसूरिसे अपना सुयश चिरस्थायी बनाये रखनेके सम्बन्धमें पूछा तो श्रीदेवसूरिने कहा सोमनाथका एक नया मन्दिर पत्थरका बनवाओ जो युगोंतक स्थायी रहे। लकड़ीका बना मन्दिर समुद्रकी लहरोंसे क्षतिग्रस्त हो गया है।

कुमारपालने इसे स्वीकार किया तथा एक मन्दिर निर्माण समिति नियुक्त की जिसे पंचकुल कहा जाता था। इस पंचकुल अथवा समितिके अध्यक्ष सोमनाथ स्थित राज्याधिकारी ब्राह्मण गंडभाव बृहस्पति थे। सोमनाथ मन्दिरका अब नवनिर्माण हुआ है। उसके पूर्व समुद्रतटपर लहरोंसे क्षत-विक्षत जिस मन्दिरका गर्भागार मसजिदके रूपमें परिवर्तित कर दिया गया था तथा जिसका शिखर भाग छिन्न-भिन्न हो गया था, यह उसी मन्दिरका अवशेष था जिसे कुमारपालने बनवाया था। यहांकी वास्तुकला तथा शिल्पकला कुमारपालकालीन अन्य भवनों एवं मन्दिरोंमें पायी जानेवाली कलासे भी साम्य रखती थी। कुमारपालके बनवाये सोमनाथ मन्दिरको बादके मुसलिम शासकोंने अनेकानेक बार पुनः क्षति पहुंचायी। इसके स्पष्ट विवरण मिलते हैं। १३०० ईस्वीमें अलफखांने १३९ में मुजफ्फर द्वारा, १४९ के लगभग महमूद बेगडा, तथा मुजफ्फर द्वितीय द्वारा सन् १५३०में इस मन्दिरको क्षति पहुंचायी गयी।

कुमारपालके बाद खेंगार चतुर्थ (१२७९ १३३३में) द्वारा सोमनाथ का पुनर्निर्माण बहुत प्रसिद्ध है। अलाउद्दीन खिलजीने जब सोमनाथ मन्दिर ध्वस्त किया था उसके पश्चात् ही उक्त नामके जूनागढ़के यादव राजाने जिसका दो गिरिनारके शिलालेखोंमें उल्लेख मिलता है सोमनाथ मन्दिरका पुनर्निर्माण किया। गिरिनार शिलालेखमें जूनागढ़का उक्त राजा सोमनाथ मन्दिरके पुनर्निर्माताके रूपमें उल्लिखित है।

सोमनाथके मन्दिरके निर्माणका वर्णन प्रभासपाटन शिलालेखमें मिलता है। यह भद्रकाली मन्दिरके निकट एक पत्थरपर अंकित है। पाटनमें भद्रकालीका एक छोटासा प्राचीन मन्दिर है। इसी भद्रकाली

मन्दिरके द्वारके निकट दीवारकी ओर एक ओरसे खंडित शिलामें आदिकालसे सोमनाथ मन्दिरके निर्माणकी कहानीका उल्लेख है। इस शिलालेखमें हमें सोमनाथके ऐसे विवरण प्राप्त होते हैं जिनका अन्यत्र कहींसे पता नहीं लगता। इस शिलालेखके दाहिनी ओरके पत्थरका कोना टूटा हुआ है, इससे लेखकी कतिपय पंक्तियाँ अस्पष्ट हैं। इसके अतिरिक्त शिलालेख सुरक्षित तथा एकदम सुस्पष्ट है।

यह शिलालेख सन् ११६९ तथा वलभी संवत् ८५०का है। इसमें सोमनाथ मन्दिरके निर्माण विषयक प्राचीन गाथाका जो उल्लेख है वह इस प्रकार है—सोमेश्वर (सोमनाथ)का मन्दिर सर्वप्रथम स्वर्णका था और इसे चन्द्रमाने बनवाया था। इसके पश्चात् रावणने चाँदीका सोम मन्दिर निर्मित कराया। श्रीकृष्णने इसे लकड़ीका बनवाया। सम्राट कुमारपालके समय सोमनाथका यह मन्दिर भाव बृहस्पतिके निरीक्षणमें निर्मित हुआ था।

कुमारपालने बहुतसे जैन चैत्य और मठ भी बनवाये। स्तम्भतीर्थ या खम्भातमें उसने सालिग वसहिकाके मन्दिरका जीर्णोद्धार कराया जहाँ हेमचन्द्रने दीक्षा ली थी। जिस महिलाने विपत्तिकालमें उसे चौका भात तथा दही खिलाया था उसकी स्मृतिमें उसने पाटनमें "करम्बकविहार" नामक एक मन्दिर निर्मित कराया। इतना ही नहीं प्रारम्भिक जीवनके पर्यटन कालमें मूषककी जो हत्या हो गयी थी उसका प्रायश्चित करनेके लिए उसने "मूषकविहार" नामक मन्दिर बनवाया। हेमचन्द्रके जन्मस्थान धन्धूकमें उसने "झोलिका विहार" निर्मित कराया। इन मन्दिरोंके अतिरिक्त कुमारपालने एक हजार चार सौ चौवालिस मन्दिरोंका निर्माण कराया था।[1]

---

1. देखिये प्रबन्धचिन्तामणि तथा कुमारपालचरित।

शिल्पकला

भारतीय शिल्पकला वास्तुकलासे मिश्रित है और इसमें मुख्यतः अलंकरण वास्तुका प्राधान्य होता है। चौलुक्यकालकी शिल्पकलाके उत्कृष्ट निदर्शन आबूके मन्दिरोंमें जैन तीर्थंकरोंके जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रसंग हैं। इनमें वस्तुपाल और तेजपालके पूर्वजों परिवार तथा विमल मन्दिरके सामने हस्तिशालामें हाथी और घोड़ेपर सवार मनुष्यों-की आकृतियाँ अध्ययनकी विशेष सामग्री प्रस्तुत करती हैं। आबू मन्दिरों-की आकृतियोंसे हमें विदित होता है कि उस समय लोगोंका पहिनावा कैसा होता था। इन आकृतियोंसे ज्ञात होता है कि लोग उस समय लम्बी और बड़ी-बड़ी मूछें रखना पसन्द करते थे। कलाई और बाहोंमें आभूषण कानमें एरन तथा गलेमें हार पहननेकी उस समय प्रथा थी। मन्दिरमें दर्शनके समयका पहिनावा एक ऊंची धोती तथा उत्तरीय होता था। उत्तरीयको कन्धेके अनुचित डाल देते थे और हाथसे उसके छोर पकड़े रहते थे। स्त्रियाँ कंचुकीके अतिरिक्त दो वस्त्र पहनती थीं। ऊपरका वस्त्र आधुनिक ओढ़नी जैसा था। स्त्रियाँ कानोंमें बड़े कुंडल बांह तथा हाथमें कड़े अथवा कंगन जैसे आभूषण धारण करती थी।[1]

आबूके विमल तथा तेजपाल मन्दिरोंमें अनेक तीर्थंकरोंके जीवनकी विशेष घटनाओंकी आकृतियाँ भी निर्मित की गयी हैं। एक बड़े पट्टमें नेमिनाथके विवाह तथा संन्यासकी घटना शिल्पमें चित्रित की गयी है। पट्टमें कुल मिलाकर सात खंड हैं। इनमेंसे चार अधोमुखी हैं और तीन ऊर्ध्वमुखी। प्रथम खंडमें नेमिनाथके विवाहका जलूस नृत्य एवं गायकों सहित निकल रहा है। अन्य खंडोंमें युद्ध, सेना वधके लिए पशुओंका बाड़ा विवाहमंडप तथा नानवाद्य आदिके दृश्योंके अंकन हुए हैं।[2]

---

[1]आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय ४ पृ० ११८।
[2]आर्कलाजी आव गुजरात। अध्याय ४ पृ० ११८।

बौद्धकर मन्दिरोंके ऊपरी भागका निर्माण हाथी अथवा घोड़ोंकी पंक्तिके सहारेको शिखामें अंकित कर होता था। अश्वोंकी पंक्तिका उत्खनन विशाल मन्दिरोंकी विशेषता मानी जाती थी। हस्ति आकृतिका उत्खनन इस कालके मन्दिरोंकी निर्माणकलामें विशिष्ट रूपरेखा मानी जाती थी। तनजाब मन्दिरमें सिंह, मानवी बन्दरकी भी आकृतियां मिलती हैं।[1] यहां ये आकृतियां मन्दिरके स्तम्भोंमें धार्मिक रूपमें प्रयुक्त हुई हैं। इनमें शिल्पका सर्वोत्कृष्ट नमूना उस मानवीका है जो विजय मुद्रामें अपना एक पैर फैलाकर बैठा है।[2]

चित्रकला

बौद्धयुग शासकोंके राज्यकालमें चित्रकलाका पूर्ण विकास तथा उपयन हुआ था। बौद्धधर्मराजाओंके दरबारमें प्रायः चित्रकार आया करते थे। इस तथ्यका समर्थन धोयीक्के कथनसे भी होता है। उसने लिखा है कि दरबारमें चित्रकारोंकी कलाकृतियों सहित उनका परिचय कराया जाता था।[3] कर्णदेव सोलंकीके समय भी चित्रकारका उल्लेख मिलता है। एक दिन जब राजाको सिंहासनस्थ हुए बहुत दिन नहीं हुए थे सूचना दी गयी कि बहुतसे देशोंका परिभ्रमण कर चलनेवाला एक चित्रकार राजदरबारमें उपस्थित होनेकी आज्ञा चाहता है। राजाके आदेश पर चित्रकारको सभामें उपस्थित होनेकी अनुमति दी गयी। अभिवादनके बाद चित्रकारने कहा "आपका यश बहुतसे देशोंमें फैल गया है और बहुतसे लोग आपके दर्शनाभिलाषी हैं। मैं भी बहुत दिनोंसे आपके

---

[1] बर्जेस ए० स० वे०, आकृतियां। क्रमशः ८, ११ ८, १०, ११।
[2] आर्कलाजी आव गुजरात : अध्याय ४ पृ० १२१।
[3] रासमाला : अध्याय ११ पृ० २१०।
[4] वही, अध्याय ७ पृ० १०५ १०६।

दर्शनका इच्छुक था।" इसके पश्चात् चित्रकारने राजाके सम्मुख चित्रोंका समूह रखा। उन चित्रोंमेंसे एकमें राजाके सम्मुख नर्तकी नृत्य करती हुई दिखायी गयी थी और राजाके पार्श्वमें उससे भी एक सुन्दरी खड़ी चित्रित की गयी थी। कर्णदेवने जब इस चित्रका परिचय पूछा तो चित्र कारने बताया "दक्षिणमें चन्द्रपुर नगरका राजा जयकेशी है। यह उसीकी राजकुमारी मीनलदेवीका चित्र है। यह राजकुमारी सौन्दर्यकी प्रतिमूर्ति है। बहुतसे राजकुमारोंने उससे विवाहका प्रस्ताव किया। किन्तु राजकुमारीने सभी प्रस्ताव अस्वीकार कर दिये। बौद्ध भक्तियोंने भी राजकुमारीके सम्मुख बहुतसे राजाओंका चित्र रखा। कुछ समयके उपरान्त एक चित्रकार आपका चित्र लेकर वहाँ उपस्थित हुआ। राज कुमारीने जब यह चित्र देखा तो प्रसन्न होकर आपको अपना पति चुना। यह कहानी चित्रकारोंकि सौन्दर्यमय और यथातथ्य चित्रणकी कलाके अस्तित्वकी पुष्टि करती है। ऐसे आकर्षक चित्र बनाये जाते थे जो हृदयहारी और मनोमोहक होते थे।

इसके अतिरिक्त यशपालके नाटक मोहराजपराजयमें भी चित्रकलाका उल्लेख आया है। लक्षाधिपतियोंके विशाल भवनोंकी दीवारोंपर जैन तीर्थंकरोंकी जीवन घटनाके चित्रांकन किये जाते थे।[1]

नृत्य और संगीत

कुमारपालके शासनकालमें नृत्य तथा गायनवादनके अनेकानेक प्रसंगोंकी चर्चा आती है। राज्यारोहण समारोहपर जब वह सिंहासनपर आसीन हुआ तो सुन्दरी नर्तकियाँ अपनी नृत्य तथा संगीतकलाका प्रदर्शन करने लगी। राजप्रासादका प्रांगण मोतीके टूटे हुए हारोंसे भर गया था। चारा वसार मंगलमय गानवाद्यसे प्रतिध्वनित हो उठा।[2] कुमारपालकी

---

[1]मोहराजपराजय : अंक ३, पृ० ६०-७०।
[2]कुमारपालप्रतिबोध : पृ० ५।

शिवभक्तिके अन्तर्गत भी नाच-गान मुक्तिका उपाय माना जाता है। सन्ध्या समय राजप्रासादके देवमन्दिरमें धूपोंसे पूजन-अर्चनके उपरान्त नर्तकियाँ दीप प्रज्वलित कर देवताके सम्मुख नृत्यकलाका प्रदर्शन करती थीं। पूजनके पश्चात् वह चारण तथा कलाकारोंसे नाच-गान सुनता। समारोह तथा महोत्सवके समय नागरिक संगीतका आनन्द लेते और सुसज्जित रंगमंचपर वेश्याएं नृत्य करतीं। इस समय प्रकट रंगमंच तथा नाटक अभिनीत करनेका भी उल्लेख मिलता है। सिद्धराज जयसिंह को वेष परिवर्तन कर, कर्ण मेरुप्रासादमें नाटक अवलोकन करते हम देख चुके हैं। एक और अन्य अवसरपर एक उद्योगपति द्वारा आयोजित नाटक अभिनयमें भी जयसिंह सिद्धराजकी उपस्थिति हमें विदित है। इन विवरणोंसे स्पष्ट है कि नृत्य और नाट्यकलाके प्रयोग और आयोजन समय-समयपर हुआ करते थे और जनसाधारणके अतिरिक्त राजभवन भी उनमें दिलचस्पी लेता था। वस्तुतः नृत्य और संगीतकी कलाका समाजमें बड़ा आदर था और इसकी दिनोंदिन उन्नति हो रही थी।

महान
चौलुक्य कुमारपाल

गुजरात और भारतके इतिहासमें सम्राट् चौलुक्य कुमारपालका व्यक्तित्व और कृतित्व असाधारण एवं अभूतपूर्व है। जब वह (विक्रम संवत् ११९९ सन् ११४२)में सिंहासनारूढ़ हुआ तो सिद्धराजकी मृत्युसे शोक सन्तप्त जनतामें प्रसन्नताकी लहर दौड़ गयी।[1] इस कालके सर्वश्रेष्ठ और महान् विद्वान हेमचन्द्रने अपनी रचना महावीरचरित्रमें कुमारपालको चौलुक्य वंशका चन्द्रमा कहा है और कहा है कि वह महान् शक्तिशाली और प्रभावशाली होगा।[2] तत्कालीन विद्वानोंके ये वर्णन, उनके संरक्षककी कवित्वमय प्रशस्ति मात्र ही नहीं अपितु उसकी महत्ता और सत्ता, शिलालेखों, ताम्रपत्रों तथा अभिलेखोंसे भी प्रमाणित होती है। कुमारपालके एक-दो नहीं बारह शिलालेख एकमत होकर एक स्वरसे उसके महान् व्यक्तित्व शौर्य-वीर्य और प्रभुत्वका विशिष्ट उल्लेख करते हैं। इन सभी शिलालेखोंमें इस

---

[1] एको यः सकलं कुतूहलितया चक्राम भूमण्डलम्
मैत्र्या यत्र पतिंवरा समभवत्साम्राज्य लक्ष्मीः स्वयम् ।
श्रीसिद्धाधिपविप्रयोगविधुरामप्रीणयद्यः प्रजां
कस्यासौ विदितो न पुर्जरपतिश्चौलुक्य वंशध्वजः ।

—मोहपराजय अंक १, पृ २८ ।

[2] कुमारपालो भूपालश्चौलुक्य चन्द्रमाः
भविष्यति महाबाहुः प्रचण्डाखण्ड शासनः ।

—महावीरचरित्र, १२ सर्ग, श्लोक ४६ ।

बातका उल्लेख मिलता है कि कुमारपाल सर्वगुणसम्पन्न तथा 'उमापति-वरलब्ध' था।[1]

महान् विजेता

कुमारपालके इतिहासका अनुशीलन और विशेषतः उसके प्रारम्भिक जीवनका अध्ययन करनेपर विदित होता है कि वह अपने भाग्यका स्वयं निर्माता और विधाता था। प्रारम्भमें वह निरन्तर सात वर्षों तक शत्रुओंके मध्य मित्रहीन और साधनहीन होकर यत्रतत्र-सर्वत्र भटकता था। उसके अदम्य साहस और दृढ़ निश्चयका ही यह परिणाम था कि वह शक्तिशाली जयसिंह सिद्धराजका उत्तराधिकारी हो सका। राजकीय सत्ता ग्रहण करनेपर उसने न केवल चौलुक्य साम्राज्यके सुदूर प्रदेशोंपर अधिकार बनाये रखा अपितु स्वयं अनेक राज्योंपर विजय प्राप्त कर अपने साम्राज्यको भी सुदृढ़ बनाया। वह महान् योद्धा पराक्रमी और सफल सेनानायक था। कुमारपालने चौहान अर्णो राजाको युद्धमें ऐसा पराजित किया कि "स्वभुज विक्रम रणांगण विनिर्जित शाकंभरी भूपाल" उसके नामका एक अंग बन गया।[2] कुमारपालने जिन महत्त्वपूर्ण युद्धोंमें विजय प्राप्त की उनमें कोंकणराज मल्लिकार्जुन तथा मालवाधिप बल्लालकी पराजय उल्लेखनीय है।[3] 'वसन्तविलास'[4] तथा 'कीर्तिकौमुदी'[5] में भी इस तथ्यकी

---

[1] परमेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज उमापतिवरलब्ध प्राप्त राज्य प्रौढ़प्रताप लक्ष्मी स्वयंवर स्वभुज विक्रम रणांगण विनिर्जित शाकंभरी भूपाल श्रीकुमारपालदेव पादानुध्यात　　इंडि० ऐंटी० : खंड ११, पृ० १८१।

[2] "स्वभुज विक्रम रणांगण विनिर्जित शाकंभरी भूपाल श्रीकुमारपालदेव"।

[3] इंडि० ऐंटी० खंड ४ पृ० २६८।

[4] वसन्तविलास, ३ २९।

[5] बम्बई गजेटियर : खंड १ उपखंड १, पृ० १८५।

पुष्टि होती है। इससे ही विवरणसे स्पष्ट है कि कुमारपाल एक महान् योद्धा था और उसने अपने पर्युविकके सभी प्रदेशोंपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। युद्धमें उसे सदा विजय ही प्राप्त हुई। उसका जीवन सैनिक विजयोंकी शृंखलासे अलंकृत था। उसकी नीति आक्रमणात्मक न होकर रक्षात्मक थी। साम्राज्य विस्तार उसका अभिप्रेत न था किन्तु सिद्धराज जयसिंह द्वारा छोड़े हुए प्रदेशोंपर अधिकार और प्रभाव बनाये रखना अनिवार्यतः आवश्यक था। इसीलिए शाकंभरी और मालवाके विरुद्ध उसे बाध्य होकर युद्ध करना पड़ा था।

महान् निर्माता

कुमारपाल न केवल युद्धकी कलामें पारंगत था, अपितु शान्तिके महत्त्वको भलीप्रकार समझता और उसके लिए प्रयत्नशील भी रहता था। जब देशमें शान्ति स्थापित हो गयी तो वह उत्साहपूर्वक रचनात्मक कार्योंमें प्रवृत्त हुआ। प्रसिद्ध सोमनाथ मन्दिरके पुनर्निर्माताके रूपमें वह प्रख्यात है।[1] पाटनमें उसने कुमार विहारके विशाल मन्दिरकी स्थापना की।[2] इसके पश्चात् उसने अपने पिता त्रिभुवनपालकी स्मृतिमें और अधिक विशाल तथा भव्य "त्रिभुवन विहार"का बहत्तर छोटे मन्दिरों सहित निर्माण कराया।[3] कुमारपालप्रतिबोधके रचयिताका कथन है कि कुमारपालने पाटनमें जिन चौबीस जैन मन्दिरोंकी प्राणप्रतिष्ठा करायी उनमें त्रिविहारका मन्दिर सबसे भव्य था। उसने केवल मन्दिरोंका निर्माण ही न किया अपितु इसका भी ध्यान रखा कि उनकी समुचित व्यवस्था

---

[1] इंडि० एंटी० खंड ४ पृ० २६९।
[2] एपि० आई० खंड ११, पृ० ५४-५५।
[3] कुमारपालप्रतिबोध।
[4] वही।

होती रहे। पाटनके बाहर उसने जो सैकड़ों मन्दिर बनवाये उनमें तारंगा पहाड़ीपर स्थित अजितनाथका मन्दिर उल्लेख्य है। इस व्यापक विशाल और भव्य निर्माणकी प्रेरणा कुमारपालको केवल जैनधर्ममें दीक्षित होनेसे ही नहीं प्राप्त हुई थी बल्कि कला कौशल और वास्तुकलाके प्रति उसका सच्चा प्रेम ही बहुत अधिक अंशतक इन कार्योंका प्रेरक था।

युगप्रवर्तक समाज सुधारक

गुजरातके इतिहासमें अपने समयके महान् समाजसुधारकके रूपमें कुमारपालका नाम स्वर्णाक्षरोंमें अंकित रहेगा। कुछ विद्वान यह कह सकते हैं कि कुमारपालने जो समाज-सुधार किये वे शुद्ध समाज-सुधारकके रूपमें नहीं अपितु जैनधर्मकी श्रद्धाभावनासे अनुप्राणित होकर किये गये थे। किन्तु यह कभी विस्मरण न किया जाना चाहिये कि इतिहासकारके लिए ठोस परिणाम एवं निष्कर्ष ही सब कुछ है। इस समय गुजरातका समाज पशुवध द्यूत मांसाहार, मद्यपान वेश्यागमन तथा लूटपाटके बुरे परिणामोंसे अभिशप्त हो गया था।[1] इस समय राज्यका एक नियम अत्यन्त ही निन्दा जनक था। यह था निस्सन्तान मरनेवालोंकी सम्पत्तिपर राज्य द्वारा अधिकार कर लेना। राज्यके अधिकारी बिना उत्तराधिकारीके मृत व्यक्तिके घरकी जब सभी सम्पत्ति और वस्तुओंपर अधिकार कर लेते थे तभी शवको अन्तिम संस्कारके लिए ले जाने देते थे। इससे जनताको बहुत कष्ट होता था।[2] कुमारपालने राज्यमें कुछ विशेष तिथियोंपर पशुवधपर प्रतिबन्ध लगा दिया था। इसका उल्लंघन करनेवालोंको भारी आर्थिक दंड और मृत्युदंड तक दिया जाता था।[3] कुमारपालने निस्सन्तान

[1] मोहराजपराजय अंक ३ तथा ४।
[2] वही।
[3] एपि इंडि० : खंड ११ पृ० ४४ बी० पी० एस० आई० २०५-७।

व्यक्तियोंकी सम्पत्तिपर राज्याधिकारकी नीतिका परित्याग कर दिया।[1] हेमचन्द्रने अपने महावीरचरित्रमें भी इस घटनाका उल्लेख किया है।[2] जिनमण्डनने कुमारपालप्रबन्धमें लिखा है कि निस्सन्तान मरनेवालोंकी सम्पत्तिपर राज्याधिकारकी नीतिका परित्याग कर कुमारपालने वस्तुतः 'राज पितामह' उपाधिके लिए अपनेको योग्य सिद्ध किया।[3] यद्यपि यशपालने लिखा है कि जूआ, मद्य और वध उसके राज्यमें नहीं था। इससे यह समझा और स्वीकार किया जा सकता है कि कुमारपालके राज्य कालमें इनपर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था और इनके निवारण और निर्मूलीकरणके मार्गमें बहुत ही कड़ाई कर दी गयी थी। हिंसा, द्यूत, और मद्यपर प्रतिबन्ध लगानेके साथ ही उसने निस्सन्तान मरनेवालोंकी सम्पत्ति पर राज्य अधिकारकी, प्राचीन परम्पराको समाप्त कर राज्यमें सुधार किये तथा प्रभावित करायी। वस्तुतः कुमारपालके ये साहसपूर्ण सामाजिक सुधार देशमें नये युगका समारम्भ करते हैं।

साहित्य और कलासे प्रेम

कुमारपाल साहित्य, विद्या और कलाका महान् प्रेमी था। शिल्पकला, और वास्तुकलाके प्रति उसके स्वाभाविक प्रेमके निदर्शन उसके बहुसंख्यक मन्दिर हैं जिनका निर्माण उसने जैनधर्मकी दीक्षाके उपरान्त कराया।

---

[1] मोहपराजय, चतुर्थ अंक।

[2] अपुत्रमृतस्वं स द्रविणं न ग्रहीष्यति
विवेकस्य वर्ष त्रेतायुगस्य ह्य विवेकिनः।
—महावीरचरित सर्ग १२, श्लोक ६४।

[3] कुमारपाल देवगुरुः पूतो बाल्ये पदैः
त्वं तु सन्तोषतो मुंचन सत्यं राजपितामहः।
—[illegible]

सोमप्रभाचार्यका कथन है कि भोजनोपरान्त वह विद्वानोंकी परिषद्में पंडितोंसे मिलता और उनसे धार्मिक एवं दार्शनिक विषयोंपर विचार विमर्श करता था। इनमें कवि सिद्धपालका दल राजाको सुन्दर कहानियों और कथा-प्रसंगोंके कथन-श्रवण द्वारा प्रसन्न किया करता था।[1] कवि सिद्धपालकी उस स्थानमें भी चर्चा आयी है, जहां कुमारपाल सेठ अभयकुमार को दातव्य संस्थाओंका व्यवस्था भार सौंपता है। कहते हैं कि कुमार पालके इस सुन्दर और सुविचारित चुनावपर कवि सिद्धपालने उसकी प्रशंसा की।[2] कवि सिद्धपालके अतिरिक्त उस युगके विद्वान समाजका सबसे महान् व्यक्तित्व आचार्य हेमचन्द्र उसकी राजसभाकी शोभा बढ़ाते थे। कुमारपालकी राजसभामें उसका महामात्य कपर्दी भी प्रसिद्ध विद्वान और कवि था। हेमचन्द्र द्वारा प्राकृत व्याकरणकी रचना तथा प्राकृतका प्रादुर्भाव इस युगकी साहित्यिक प्रगतिकी वो महान् देन है, जिनका ऐतिहासिक महत्त्व है।

कुमारपालका निधन

कुमारपालका शासनकाल भारतीय इतिहासका एक महत्त्वपूर्णकाल था और गुजरातके इतिहासका तो स्वर्णकाल ही था। प्रबन्धचिन्तामणिके अनुसार जब वह सिंहासनारूढ़ हुआ तो उसकी अवस्था पचास वर्षकी थी। इकतीस वर्ष पर्यन्त राज्य करनेके बाद इक्यासी वर्षकी अवस्थामें सन् ११७४ (वि० सं० १२३०)में उसका निधन हुआ। अंग्रेज इतिहास लेखक टीटाने कुमारपालके सम्बन्धमें एक विचित्र कथन यह किया है कि मृत्युके पहले कुमारपाल तथा हेमचन्द्रने इस्लाम ग्रहण कर लिया था। और यदि इस्लाम न भी ग्रहण किया था

---

[1]मोहराजपराजय अंक ४।

[2]प्रबन्धचिन्तामणि : चतुर्थ प्रकाश।

तो कमसे कम उसकी ओर इनका झुकाव तो अवश्य ही हो गया था।[1] किन्तु ये सब बातें पूर्णतः निराधार और कपोलकल्पित हैं। इस असमाधित और अस्वाभाविक घटनाका समर्थन करनेवाले प्रमाणोंका सर्वथा अभाव है। आचार्य हेमचन्द्र और जैनधर्मके सच्चे श्रावक कुमारपालके सम्बन्धमें इस प्रकारकी किसी कल्पनाको भी स्थान देना उनके वास्तविक स्वरूपके अज्ञानका ही द्योतक है। कुमारपालप्रबन्धमें लिखा है कि कुमारपालके भतीजे तथा उत्तराधिकारीने उसे बन्दी बना लिया था। कुमारपाल प्रबन्धमें कुमारपालका शासनकाल ठीक तीस वर्ष आठ महीना सत्ताइस दिन लिखा है। यदि कुमारपालके शासनका प्रारम्भ संवत् ११९९ माघ शुक्ल चतुर्थी माना जाय तो उसके अन्तकी तिथि संवत् १२२९में भाद्रपद शुक्ल होगी। यदि गुजरातके पंचांगके अनुसार वर्षका प्रारम्भ आश्विनसे भी लिया जाय तो उसके राज्यकालकी समाप्ति भाद्रपद संवत् १२३०में होगी। यह सन्देहास्पद है कि संवत् १२२९ और १२३०में कौन सत्य है तथा कौन असत्य। कुमारपालके उत्तराधिकारी अजयपालके शासनकालका प्रारम्भ वैशाख शुक्ल तृतीया माना जाता है। इस गणनाके अनुसार कुमारपालका निधन वैशाख वि० सं० १२२९ अर्थात् सन् ११७२ ईस्वीमें होना स्वीकार किया जाना चाहिये। यह विदित है कि हेमचन्द्रकी मृत्यु चौरासी वर्षकी अवस्थामें संवत् १२२९ (सन् ११७२)में कुमारपालके निधनके ठीक छ मास पूर्व हुई थी। कुमारपालको अपने आध्यात्मिक गुरुके निधनका बहुत शोक हुआ। कहा जाता है कि इसके पश्चात् उसने समस्त सांसारिक कार्योंका परित्याग कर दिया और मृत्यु पर्यन्त गम्भीर अन्तःसाधनामें संलग्न रहा।

कुमारपालका उत्तराधिकारी

कुमारपालचरित्रमें जयसिंहने लिखा है कि मृत्युके पहले कुमारपालने

---

[1] टाड : वेस्टर्न इंडिया पृ० १८४।

हेमचन्द्रसे अपने भावी उत्तराधिकारीके विषयमें विचार-विमर्श किया था और अजयपालको ही सिंहासनाधिकारी चुना था।[1] मेरुतुंगने एक कहानीमें कुमारपालसे कहा है कि श्रीमालको एक पुत्र हुआ है। इसपर राजाने उत्तर दिया कि वह इस नगरका नहीं, गुजरातका राजा होगा।[2] कुमारपालप्रबन्धमें यह लिखा है कि वह अपने दौहित्र प्रतापमल्लको अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था किन्तु अजयपालने उसके विरुद्ध विद्रोह का षडयन्त्र कर उसे विष देकर छुटकारा पा लिया।[3] यह ध्यान देने योग्य बात है कि अजयपाल द्वारा राजाको विष देनेकी कहानीका अबुलफजल और मुहम्मदखाँने भी उल्लेख किया है। हेमचन्द्रकी यह भविष्यवाणी कि कुमारपाल मेरे अवसानके छः माससे अधिक जीवित न रहेगा अप्रत्याशित रूपसे सत्य की गयी-सी प्रतीत होती है। इस सम्बन्धमें कुछ न कुछ कुचक्र-की शंका उस समय और भी साधार तथा सबल हो जाती है जब हम देखते हैं कि कुमारपालके उत्तराधिकारी अजयपालके शासनकालमें धार्मिक नीतिमें भयंकर प्रतिक्रिया हुई थी।

कुमारपालका इतिहासमें स्थान

किसी शासकका इतिहासमें स्थान उस युग-विशेषमें उसकी सफलताओंसे ही अंकित और स्थिर किया जाता है। पहले व्यक्तिगत वीरता और युद्ध विजयपर ही राजाकी सत्ता एवं श्रेष्ठता मान्य होती थी। इस मानदंडसे कुमारपालके जीवनपर विचार किया जाय तो विदित होता है वह महान् योद्धा और विजेता था। उसने जितने भी युद्ध किये सबोंमें

---

[1] कुमारपालचरित : १० पृ० ११८।

[2] प्रबन्धचिन्तामणि : पृ १४९।

[3] बम्बई गजेटियर : खंड १ उपखंड १ पृ० १९४।

[4] ए० ए० के०, खंड २, प २६३ तथा एम० ए० दुग्गा , पृ० १४२।

इस तथ्योंके आधारपर निश्चितरूपसे कहा जा सकता है कि कुमारपाल भारतके महान् शासकोंमें प्रमुख हो गया है। हर्षवर्धनके पश्चात् कुमारपाल अन्तिम हिन्दू महान शक्तिशाली सम्राट् था जिसने पश्चिमोत्तर भारतको एकछत्रके अन्तर्गत करनेमें पूर्ण सफलता प्राप्त की। कुमारपाल निश्चय ही गुजरातका सबसे बड़ा चौलुक्य राजा था।[1] उसीके शासनकालमें चौलुक्य साम्राज्य उन्नति और उत्कर्षकी पराकाष्ठापर पहुँचा। विभिन्न शिलालेखोंमें कुमारपालके नामके साथ परमभट्टारक, पारमेश्वर आदिकी जो उपाधियाँ हैं वे उसके महान् राजकीय प्रमुखकी द्योतक हैं। प्राचीन भारतमें सभी महान् राजाओंने नवीन संवत्सरका प्रारम्भ किया है। हेमचन्द्रने भी सफल युद्धोंके बाद कुमारपाल द्वारा उसी प्रकारके संवत् प्रारम्भ करनेकी कल्पनाका उल्लेख किया है। ये समस्त तथ्य तथा परिस्थितियाँ इस बातकी सूचक हैं कि महाराजाधिराज सम्राट् कुमारपाल भारतके महान् शासकोंमें विशिष्ट था तथा गुजरातके चौलुक्य राजाओंमें सबसे महान् था।[2]

कुमारपाल और सम्राट् अशोक

प्राचीन भारतके विश्वविश्रुत और सबसे महान् मौर्यसम्राट अशोक तथा बारहवीं शताब्दीमें हिन्दू साम्राज्यके अन्तिम भारत प्रसिद्ध शक्तिशाली चौलुक्य कुमारपालके राजनीतिक धार्मिक और सामाजिक आदर्शोंमें

---

[1] महीमंडरा मार्तंडे तत्र लोकान्तर गते
श्रीमान्कुमारपालोऽथ राजा रञ्जितवाप्युजः।
—कीर्तिकौमुदी : सर्ग २, श्लोक ४० ।

[2] न केवलं महीपालाः सायकैः समरांगणे
गुर्णैरपि पर्यवमनिर्जिताः पूर्वजामपि।
—वही श्लोक ४१।

आश्चर्यजनक किन्तु तथ्यपूर्ण साम्य दृष्टिगोचर होता है। अशोकने ईसा पूर्व २१२ वर्षमें भारतको चरम उत्कर्षपर पहुँचाया तो कुमारपालने हिन्दू राज्यकालके अन्तिम समय बारहवीं शताब्दीमें स्वर्णकालकी अवतारणा की। अशोकने मगध और मौर्य साम्राज्यका प्रभुत्व स्थापित किया, तो कुमारपालने गुजरात एवं चौलुक्य साम्राज्यका आधिपत्य प्रतिष्ठित किया। जिस प्रकार अशोकके राज्यकालमें उससे कोई अधिक शक्तिशाली नृपति देशमें न थी ठीक उसीप्रकार बारहवीं शताब्दीके भारतीय मानचित्रपर कुमारपालसे अधिक समर्थ कोई दूसरा राजा न था।

प्रसिद्ध इतिहासकार श्री एच० जी० वेल्सने संसारके पाँच महान् राजाओं-की तुलना करते हुए अशोकको ही सबसे महान् स्वीकार किया है। रोमके सम्राट कान्स्टेनटाइन, मार्कस ओरिलियस सीजर और यूनानके सिकन्दर तथा मुगल सम्राट् अकबरकी तुलना करते हुए उनमें अशोककी महत्ता इसलिए स्वीकार की गयी है, कि उसने न केवल अपने प्रजावर्गका अपितु मानवमात्रके प्रति जिस उदारता सहिष्णुता एवं विश्वव्यापक कल्याण भावनाका प्रचार-प्रसार किया वैसी नीति कार्यान्वित करनेमें दूसरे सफल न हुए। प्रजाजनके हित सम्पादनकी जिस भावनासे अशोकको 'धर्मप्रचार' के लिए प्रेरित किया था वैसी ही अन्तर भावना कुमारपालके हृदयमें भी प्रजाजनके लिए उत्पन्न हुई थी। मानवसमाजके जिस भावने अशोकको जीवहिंसा त्याग, अहिंसाप्रचार, दया दान सत्य शौच मृदुता और साधुता का प्रचार कराया, प्रायः उसी प्रकार की प्रेरणा से कुमारपालके द्वारा सप्त व्यसनों—हिंसा मद्यपान, द्यूत मांसाहारादिका निषेध करा सब युगके सामाजिक और सांस्कृतिक जीवनमें नवीन युगका प्रवर्तन किया। कुमारपालने मद्य, द्यूत और मृतधनापहरणसे राजकोषमें करोड़ों रुपयोंकी होनेवाली आमदन त्याग कर, तत्कालीन सामाजिक जीवनमें सद्भावना सदाचार और सद्विचारका प्रचार किया।

भारतीय इतिहासमें अशोक बौद्धधर्मका महान् प्रचारक माना

जाता है तो कुमारपाल जैनधर्म और संस्कृतिका उतना ही बड़ा प्रसारक तथा पोषक रहा है। अशोक भी पहले शैव था और कुमारपाल भी। दोनोंने राजसिंहासनपर आसीन होकर क्रमशः आठ तथा सोलह वर्षोंके बाद बौद्ध और जैनधर्मकी दीक्षा ली तथा जीवनभर सच्चे साधकके रूपमें अपने-अपने धर्मोंका पालन किया। जिसप्रकार अशोकने बौद्ध होकर अन्य धर्मोंके प्रति सहिष्णु तथा आदरभाव रखा उसीप्रकार कुमारपाल भी जैन होकर शैव सम्प्रदायका समादर करता हुआ धार्मिक सहिष्णुताकी भावना रखता था। ब्राह्मण और श्रमणका दोनों ही आदर करते थे। अशोकने धर्म महामात्रोंकी नियुक्ति, धर्मकी रक्षा वृद्धि तथा धर्मस्मार्गोंके हित एवं सुखके लिए सभी सम्प्रदायोंमें कार्य करनेके लिए की थी। इससे जिसप्रकार उसकी धार्मिक सहिष्णुता और सर्वधर्म समादरकी भावना सुस्पष्ट है उसीप्रकार कुमारपाल भी 'उमापतिवरलब्ध प्रौढ़प्रताप' और 'परमार्हत' दोनों विरुद धारण करनेमें गौरव मानता था। बौद्धधर्मके प्रचारार्थ अशोकने प्रस्तरस्तम्भों और शिलालेखोंका उत्खनन कराया तो कुमारपालने भी जैनधर्म सिद्धान्त एवं संस्कृतिके निमित्त सहस्रों विहारों तथा मन्दिरोंका निर्माण कराया। अशोकने बौद्ध तीर्थस्थानोंकी श्रद्धापूर्वक धर्म-यात्रा की थी तो कुमारपाल भी जैनतीर्थोंके भक्तिपूर्वक नमनके लिए संघ सहित तीर्थयात्रा की।[1]

अशोकने सड़क और सड़कके किनारे शीतल छायाके लिए वृक्ष लगाये कुएं खुदवाये धर्मशालाएं बनवायी और अस्पताल खुलवाये ठीक उसी प्रकार चौलुक्य कुमारपालने 'सत्रागार'की स्थापना की। यहां दीन और असहायोंको भोजन वस्त्र दिया जाता था। यही नहीं उसने 'पौषधशाला' का निर्माण कराया जहां धार्मिकजनोंके शान्त एवं एकान्त निवासकी

---

[1] 'पत्थिओ कुमारवालो सत्तुंजय गिरिय नमणत्थं'—कुमारपालप्रतिबोध पृ० १७९।

समस्त सुविधाएं सुलभ थीं। कुमारपालने न केवल 'पौषधशाला' और 'सत्रागार'की ही स्थापना की अपितु इन धार्मिक संस्थाओंकी व्यवस्था एवं सुप्रबन्धके लिए विशेष तथा विशिष्ट अधिकारीकी नियुक्ति भी की थी।[1] सुप्रसिद्ध इतिहासकार विन्सेण्ट स्मिथने लिखा है कि पशुओंके वधका निषेध बारहवीं शताब्दीमें कुमारपालने बड़ी तत्परतासे अशोककी ही भांति किया था। इसका उल्लंघन करनेवालोंको चौलुक्य साम्राज्यकी राजधानी अनहिलवाड़ाके विशेष न्यायालयमें उपस्थित किया जाता था। कुमारपाल द्वारा निर्मित इस न्यायालयकी तुलना सहजमें ही अशोक द्वारा नियुक्त धर्ममहामात्रोंके उन न्याय अधिकारोंसे की जा सकती है जिनके अनुसार वे न्यायालयों द्वारा सुनाये गये निर्णयोंपर भी नियन्त्रण रखते थे।[2] जिस प्रकार अशोकने बौद्धधर्मके प्रसारके निमित्त धर्ममहामात्रोंकी नियुक्ति की थी उसी प्रकार कुमारपालने जैन तथा शैव तीर्थों के पुनरुद्धार एवं निर्माण के लिए विशेष अधिकारियोंको नियुक्त किया था। हमें विदित है कि गिरनार पर्वतपर सीढ़ियोंके निर्माणके लिए उसने श्रीमदार को सौराष्ट्रका सूबेदार नियुक्त कर उक्त कार्य विशेषरूपसे सौंपा था। इसीप्रकार भारतीय संस्कृतिके प्रतीक सोमनाथ मन्दिरके निर्माणकार्य भी उसने 'पंचकुल'का संगठन किया था, जिसके निरीक्षण एवं निर्देशनमें मन्दिरके निर्माणका कार्य सम्पन्न हुआ था।

अशोकने कलिंग विजयके बाद कोई युद्ध न करनेका संकल्प किया था। कुमारपालने भी साम्राज्यविस्तारके लिए आक्रमणात्मक युद्ध न किये अपितु सिद्धराज जयसिंह द्वारा छोड़े गये साम्राज्यकी रक्षाके लिए केवल रक्षात्मक युद्ध किये। इसी प्रसंगमें जिन राजाओंने उसके शत्रुओंका पक्ष ग्रहण किया था उनका मुकाबला उसे राजनीतिकी दृष्टिसे बाध्य

---

[1] वही।

[2] विंसेन्ट स्मिथ : भारतका इतिहास, पृ० १६१-२।

होकर करना पड़ा। दोनों ही शान्तिप्रिय धर्मप्रिय तथा विद्या एवं कलाके अनन्य प्रेमी थे। जिसप्रकार चन्द्रगुप्तके समय मौर्यसाम्राज्य अपने चरम उत्कर्षको प्राप्त हुआ उसीप्रकार सिद्धराज जयसिंह द्वारा विस्तृत चौलुक्य साम्राज्य सम्राट् कुमारपालके शासनकालमें समृद्धि एवं सम्पन्नताके सर्वोच्च शिखरपर पहुंच गया था।

इसप्रकार सम्राट् कुमारपाल गुजरातकी गरिमाका सर्वोपरि शिखर था। 'उसके समयमें गुजरात विद्या और विपुलता शौर्य और सामर्थ्यमें समृद्धि और सदाचारमें धर्म और कर्ममें उत्कृष्टतापर पहुंच गया था। उसके राज्यमें प्रकृतिकार वैश्य भी महान् सेनापति हुए, द्रव्यलोलुप वणिकजन भी महाकवि हुए और ईर्षापरायण ब्राह्मण तथा निन्दापरायण श्रमण भी परस्पर मित्र हुए। व्यसनासक्त क्षत्रिय भी संयमी साधक बने और हीन जाति शूद्र धर्मशील बने। सम्राट् अशोकसे इतनी अधिक समानताके गुण रखनेवाला चौलुक्य सम्राट् कुमारपाल और उसका युग वस्तुतः भारतीय इतिहासमें सुवर्णाक्षरोंमें अंकित करने योग्य है।
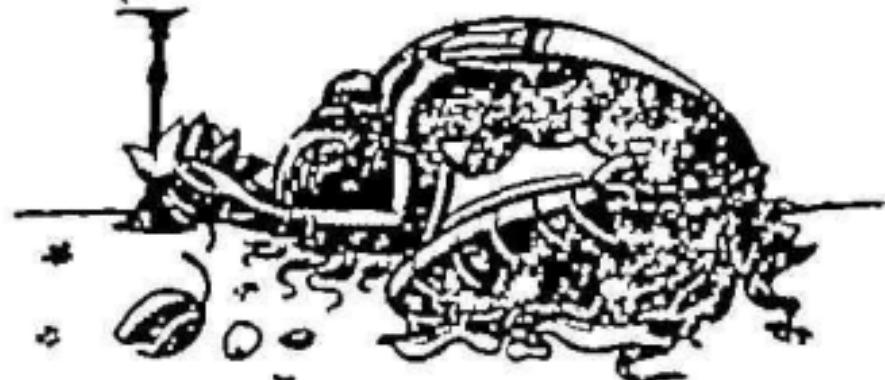
सहायक ग्रन्थोंकी सूची

मूलग्रन्थ

हेमचन्द्र द्याश्रयकाव्य पी एल वैद्य पूना द्वारा सम्पादित।
हेमचन्द्र महावीरचरित।
सोमप्रभाचार्य कुमारपालप्रतिबोध गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज संख्या १४
जयसिंह कुमारपाल चरित कान्ति विजय शास्त्री बम्बई द्वारा सम्पादित।
मेरुतुंग प्रबन्ध चिन्तामणि सम्पादक जिनविजय मुनि कलकत्ता।
मेरुतुंग विचारश्रेणी ज० बी० आर० ए० एस० खंड ६, पृ० १४७।
यशपाल मोहराजपराजय गायकवाड़ ओरियन्टल सिरीज संख्या ६, १९१८
उदयप्रभा सुकृत कीर्ति कल्लोलिनी गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज परिशिष्ट २, पृ० ६७, ७०।
सोमेश्वर कीर्तिकौमुदी सम्पादक ए० वी० कथावटे, बम्बई संस्कृत सिरीज संख्या २५।
बालचन्द्र वसन्तविलास गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज संख्या ७ १९१७।
जयसिंह हम्मीर मदमर्दन गा ओ सिरीज संख्या १०, १९२०।
चरित्र सुन्दर कुमारपाल चरित आत्मानन्द ग्रन्थमाला भावनगर।
चन्द्रप्रभा प्रभावक चरित सम्पादक जिनविजय मुनि।
पुरातन प्रबन्ध संग्रह सपादक जिनविजय मुनि।
जिनमंडन कुमारपाल प्रबन्ध।

मुसलिम इतिहास

जियाउद्दीन तारीख ए फिरोजशाही इलियट खंड ३ पृ० १३।

निजामुद्दीन तबकात ए अकबरी बिबलिओथिका इन्डिका।
तारीख ए फिरिश्ता ब्रिग्स्, खंड १।
आइन ए अकबरी ब्लोचमन एंड जैरेट, खंड २।
जफरुल वली वी मुजफ्फर वा अलीह गुजरातका अरबीमें इतिहास।
तबकात ए नसीरी रावर्टी कृत अनुवाद खंड १।
मीरात ए अहमदी सैयद नवाब अली गा० ओ० सिरीज खंड ११।
किताब जैनुल अखबार अबू सईद सम्पादक नाजिम बरलिन।
तजुल मासीर आफ हसन निजामी इलियट खंड २, पृ० २२६।

आधुनिक ग्रथ

फोर्बस् रासमाला सम्पादक रौलिन्सन आक्सफोर्ड १९२४ खंड १।
टाड एनल्स एंड एंटीक्युटीज आफ राजस्थान सम्पादक क्रूक आक्सफोर्ड।
बेली हिस्ट्री आफ गुजरात १८८६, लन्दन।
कमिसरियट हिस्ट्री आफ गुजरात।
कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया खंड ३ अध्याय २, ३ ५ तथा १३।
बर्जेस एंड कज़न्स आर्किआलॉजिकल सर्वे आफ इंडिया। उत्तरी गुजरात।
बर्जेस एंड कज़न्स आर्किटेक्चरल एंटीक्वीटीज आफ नारदरन गुजरात।
डाक्टर ब्रूहलर ए कन्ट्रीब्यूशन टू दी हिस्ट्री आफ गुजरात।
डाक्टर ब्रूहलर उबर दस लेबन दस जैन मौंक्स हेमचन्द्र।
एच० डी० सांकलिया आर्कियालॉजी आफ गुजरात नटवरलाल बम्बई।
के० एम० मुन्शी गुजरात नो नाथ खंड १ से ५, बंबई।
के० एम० मुंशी ग्लोरी दैट वाज गुजरात।
एच० सी० रे डाइनैस्टिक हिस्ट्री आफ नार्दर्न इंडिया खंड १ २।
कज़न्स चालुक्यन आर्किटेक्चर ए० एस० आई० १९३१।
विन्सेंट स्मिथ जैन स्तूप एंड अदर एंटीक्वीटीज आफ मथुरा।
विन्सेंट स्मिथ : ए हिस्ट्री आफ फाइन आर्ट इन इण्डिया एण्ड सिलोन।

जेम्स फर्ग्यूसन   हिस्ट्री आव इण्डियन एण्ड ईस्टर्न आर्किटेक्चर।
डाक्टर मोतीचन्द्र   जैन मिनिएचर फ्रौम वेस्टर्न इण्डिया।
साराभाई एम० नवाब   जैन चित्र कल्पद्रुम।
साराभाई एम नवाब   जैन तीर्थज आव नर्दर्न इण्डिया।
मुनि श्री जिनविजय   राजर्षि कुमारपाल।

गजेटियर

गजेटियर आव बाम्बे प्रसिडन्सी।
राजपूताना गजटियर।
इम्पीरियल गजटियर।
गजटियर आव नार्थ वेस्टर्न फ्रान्टियर प्राविन्स।

जर्नल

एपिग्राफिया इंडिका।
इंडियन एंटीक्वरी।
जर्नल आव रायल एशियाटिक सोसायटी।
जर्नल आव बाम्बे ब्रांच रायल एशियाटिक सोसायटी।
पूना ओरियंटलिस्ट।

अनुक्रमणिका

विशिष्ट व्यक्ति

ग्रन्थ

ग्रन्थ

ब

म

य

र

व

श

स

ह

त्र